

सामाजिक सरोकार

अनुक्रमाणिका

1. महावीर के चार उपदेश
2. महावीर के सिद्धान्त अधिक प्रासंगिक
3. महावीर के अनुपम उपदेश
4. भ्रष्टाचार हमें कहां ले जाएगा
5. कितनी महंगी है हमारी विधायिका
6. छद्म मुद्दे, झूठे वादे नारे, भ्रमित मतदाता
7. चुनौतियां ही चुनौतियां-भ्रष्टाचार, राजनीति का अपराधीकरण-
कुछ उपाय
8. भारत रत्न पुरस्कार - अविवादित रहने दीजिए
9. महिला जगत प्रगति की ओर
10. लिंग आधारित असमानता समाप्ति आवश्यक
11. कन्या भ्रूण हत्या - समस्या की विकरालता - निराकरण क्या संभव है
12. जनसंख्या वृद्धि नहीं संतुलन की आवश्यकता
13. हम खुद का मूल्यांकन करते चलें
14. शिक्षा-शिक्षक स्थिति-परिवर्तन की अपेक्षा
15. औषधि व्यसन
16. औषधि का दुरुपयोग
17. बाल श्रमिकों का उत्पीड़न कैसे कम किया जाए
18. महान उद्देशीय रेडक्रास-जानिए, पहचानिए
19. मृत्युदंड समाप्ति-उचित या अनुचित
20. पानी की समस्या-निराकरण कब होगा
21. आतंकवाद का इतिहास
22. जम्मू कश्मीर का इतिहास
23. भारतीय लेखक संघ - परिचय
24. World Standard Day

महावीर के चार उपदेश

डॉ. एम.सी. नाहरा

- (1) झूठ मत बोलो ।
- (2) चोरी मत करो ।
- (3) शुद्धता का जीवन जीओ ।
- (4) बाह्य सुखों का परित्याग करो ।

महावीर दर्शन के अनुसार मानवीय शरीर में एक आत्मा है एवं जीवन आत्मा तथा वातावरण के बीच होने वाली पारस्परिक क्रिया का परिणाम है। जो अत्यधिक सूक्ष्म कण के समान कर्म से जन्म तथा पुनर्जन्म करता है। जैन धर्म के मौलिक सिद्धांतों में महत्वपूर्ण तथ्यों का समावेश किया गया है, जिनके पालन करने से वैश्विक शांति स्थापित की जा सकती है, जिसके लिए पूरा विश्व प्रयासरत है—इस दृष्टिकोण से जैन धर्म के सिद्धान्तों को पूरे मानव समाज के हित हेतु प्रेरणा स्रोत माना जा सकता है। इन सिद्धांतों के विश्लेषण तथा भारत के संविधान की मूल भावना (उद्देशिका) में समानता परिलक्षित होती है। इन्हीं सिद्धांतों के अंतर्गत पर्यावरण की सुरक्षा की सशक्त पैरवी भी की गई है जिनके बारे में वर्तमान समाज चिंतित भी है।

जैन धर्म के सिद्धांत वर्तमान वातावरण के लिए संजीवनी का काम कर सकते हैं, जो पूरे मानव समाज के हित में है तथा निम्नांकित रूप से वर्णित भी है—

- (1) जैन धर्म ऐसा जीवन जीने की प्रेरणा देता है जो शुद्ध, पवित्र व अपमिश्रण रहित हो, दुखी प्राणियों के दुखों पर मरहम का कार्य करे तथा उसे सुसंगत जीवन जीने की राह दिखाए।

(2) यह धर्म विचारों में प्रजातंत्र स्वतंत्र व्यक्तिगत विश्वासों का प्रणेता है। कितने भी छोटे जीव हों उनके अस्तित्व के अधिकार को मान्यता देता है तथा न सिर्फ जीओ और जीने दो में विश्वास करता है वरन् एक कदम आगे जाकर दूसरे जीवों की जिंदगी में यथासंभव सहायता करने का उपदेश देता है।

(3) जैन धर्म पर्यावरण संरक्षण की बात भी करता है तथा पेड़ों की कटाई को हतोत्साहित करता है। साथ ही वस्तुओं के अपव्यय को रोकने के लिए उपभोग को सीमित करने की चेतना उत्पन्न करता है।

(4) यह धर्म कर्मों की निर्जरा में विश्वास करता है अर्थात् कम से कम गतिविधि को प्रोत्साहन देता है, ताकि नए दुष्कर्मों का निर्माण न हो। जैन धर्म के अनुसार हत्या चाहे मनुष्य की हो या छोटे जीव की हो, हत्या ही कहलाएगी व करने वाला हत्यारा।

महावीर के सिद्धांत अधिक प्रासंगिक

डॉ. एम.सी. नाहटा

जैन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द जीन से हुई है, जिसका अर्थ है विजेता जो कि पार्श्विक प्रवृत्तियों पर विजय का द्योतक है। जैन धर्म की उत्पत्ति 5-6 शताब्दी के लगभग हुई थी और उसके मुख्य नायक 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म 599 ईसा पूर्व में एक राजकुमार के रूप में हुआ था। विश्व का पूरा जैन समाज इस जन्म महोत्सव को प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल 13 को महावीर जयंती के रूप में पूरे उत्साह तथा उमंग से मनाता है।

जैन धर्म प्राचीन है, परंतु महावीर उसके संस्थापक नहीं हैं। महावीर उन परम पुरुषों में से हैं जिनके उपदेशों तथा सिद्धांतों की सार्थकता वर्तमान में पहले से भी अधिक है। महावीर जीवन की प्रारंभिक अवस्था से ही पराक्रमी तथा कुशाग्र बुद्धि के थे, जिसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। त्याग की भावना से ओतप्रोत महावीर ने राजसी ठाट-बाट छोड़कर 12 वर्ष से अधिक अवधि घोर तपस्या में बिताई, जो त्याग का अद्वितीय उदाहरण है। प्राकृतिक कठिनाइयां तथा समाज द्वारा दी गई यातनाओं ने उन्हें उद्वेलित किया- व्याप्त भ्रष्टाचार तथा जीव हिंसा जैसी विषमताओं ने भी महावीर को विरक्ति की ओर अग्रेषित किया और एक सामान्य संदेश किसी भी जीवित प्राणी को चोट नहीं पहुंचाई जाए से समाज को अत्यधिक प्रभावित कर अनुयायियों की संख्या में वृद्धि की थी।

मौलिक रूप से जैन धर्म रहस्यवाद तथा अलौकिकता का पक्षधर नहीं है। जैन धर्म सम्यक दर्शन, ज्ञान तथा सम्यक चरित्र पर आधारित है। जैन धर्म ईश्वरवादी नहीं है। जैन धर्म हमारी रक्षा करता है न कि हम धर्म की रक्षा करते हैं। जैन धर्म के अनुसार 'सिद्धा' पवित्र आत्मा है जो कि विश्व के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती है। जैन धर्म मोह तथा मिथ्यात्व में

विश्वास नहीं करता है। भगवान महावीर भारत में हुए शांति तथा सुधारवाद के महान पैगम्बरों में से एक है, जिन्होंने सदाचार तथा धर्मपराण्यता पर ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने 'यूनिटी ऑफ लाइफ' के सिद्धांत पर बल दिया। भगवान महावीर आर्थिक समानता तथा सहअस्तित्व के भी प्रबल समर्थक थे— चूंकि उनका विश्वास था कि आर्थिक विषमता ही भ्रष्टाचार का कारण है।

भगवान महावीर के प्रमुख संदेश

अहिंसा, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना

महावीर ने गृहस्थी तथा साधु-संतों के लिए भी आचार सहिंता प्रतिपादित की थी। गृहस्थियों से अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचार्य, अस्तेय व अपरिहग्रह की अपेक्षा की एवं साधु-संतों हेतु आचरण व्यवस्था निर्धारित की थी, जिसका परिणाम है कि 2500 वर्षों के बाद भी आज सफेद वस्त्रधारी साधु-साध्वी, नंगे पांव पैदल चलकर गांव-गांव भ्रमण कर महावीर स्वामी के शांति तथा अहिंसा का संदेश जन-जन तक पहुँचा रहे हैं। इस आचरण व्यवस्था को विश्व में सबसे अधिक कठोर माना जाता है और संभवतया इसी के परिणामस्वरूप 100 करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले देश में जैनियों की संख्या लगभग 30 लाख हैं।

जैन साहित्य अर्धमागधी, प्राकृत, कन्नड़, तेलुगु, तमिल भाषा में जैन साधु-संतों द्वारा लिखे गए हैं। पाश्चात्य देशों से जैन साहित्य का परिचय कराने का श्रेय जर्मनी के विद्वान हर्मन जेकोबी को जाता है, जिन्होंने जैन साहित्य का अनुवाद कर पुस्तकों की एक श्रृंखला सिक्रेट बुक्स ऑफ ईस्ट के रूप में 1884 में प्रकाशित की थी।

तीर्थंकर महावीर द्वारा प्रतिपादित समाज व्यवस्था आधुनिक भारत में भी उपयोगी है। महावीर ने नारी को उच्च स्थान प्रदान किया था, जो कि वर्तमान भारत के संविधान में भी है। वर्गभेद और जातिभेद के विषय को दूर

करने के लिए उनकी समाज व्यवस्था कर्मकांड, लिंग, जाति, वर्ग आदि भेदों से मुक्त थी जिसका आधार अध्यात्म, अहिंसा, नैतिक और धार्मिक नियम थे- जिनका संबंध किसी भी जाति, वर्ग या संप्रदाय से नहीं था। महावीर का सिद्धांत है कि विश्व के समस्त प्राणियों के साथ आत्मीयता, बंधुत्व और एकता का अनुभव किया जाए।

अहिंसा : अहिंसा द्वारा सबके कल्याण और उन्नति की भावना उत्पन्न होती है। इसके आचरण से निर्भीकता, स्पष्टता, स्वतंत्रता और सत्यता बढ़ती है। अहिंसा की सीमा किसी देश, काल और समाज तक सीमित नहीं है अपितु इसकी सीमा सर्वदेश और सर्वकाल तक विस्तृत है। अहिंसा से ही विश्वास, आत्मीयता, पारस्परिक प्रेम एवं निष्ठा आदि गुण व्यक्त होते हैं। अहंकार, दंभ, मिथ्या, अविश्वास, असहयोग आदि का अंत भी अहिंसा द्वारा संभव है। इसमें संदेह नहीं कि अहिंसा के आधार पर प्रतिष्ठित समाज सुख और शांति का कारण बन सकता है।

अपरिग्रह : अपरिग्रह भगवान महावीर के उपदेशों में प्रमुख स्थान रखता है। मनुष्य को अपने एवं परिवार के जीवन-यापन से अधिक साधनों का संग्रह नहीं करना चाहिए। क्योंकि हर व्यक्ति की पारिवारिक आवश्यकता एक समान नहीं होती इसलिए परिग्रह-परिणाम की बात कही गई है। आज समाजवाद के नारे के पीछे भगवान महावीर का समतावाद ही तो विद्यमान है।

अनेकांत : अनेकांत दृष्टि संसार से सभी झगड़ों और मतभेदों को समाप्त करने में समर्थ है। पश्चिमी देशों का अगुआ अमेरिका आज सहअस्तित्व में विश्वास प्रकट करता है। चीन के अत्यंत प्रभावशाली नेता माओ त्से तुंग ने एक बार कहा था कि उपवन में एक हजार पुष्प खिलते हैं, उनसे ही उपवन शोभायमान होता है। सहअस्तित्व अथवा सहजीवन का

सिद्धांत आज विश्व में चहुंओर मान्य है, इसके मूल में भी भगवान महावीर का अनेकांत सिद्धांत ही है।

वर्तमान में पूरा विश्व हिंसा, संघर्ष और सामांजस्य के अकाल-असामंजस्य से जल रहा है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी उन्नति के कारण आई आर्थिक समृद्धि के बावजूद आंतरिक सुख मानव जाति से दूर है— जिसका एक ही मौलिक कारण है— नैतिक मूल्यों का हास। इस विषम वातावरण में भगवान महावीर के मूल्य आधारित सिद्धांत तथा उपदेश, अहिंसा, समानता तथा विश्व बंधुत्व के लिए नई दिशा दिखा सकते हैं। आज के इस वातावरण में हमारा कर्तव्य है कि भगवान महावीर के संदेशों से पूरे मानव समाज को अवगत कराकर एक नया वातावरण स्थापित करने का कर्तव्य निभाएं तथा महावीर द्वारा बताए गए सुख, शांति तथा अमन के रास्ते पर अग्रसर हों।

महावीर के अनुपम उपदेश

डॉ. एस.सी. नाहटा

जैन धर्म का प्रारंभ किसी व्यक्ति विशेष से नहीं हुआ। इसका सही नाम जिन धर्म है, जिसका अर्थ मन और इंद्रियों को जीतने वाला अर्थात् आत्मजयी है।

जैन धर्म प्राचीनतम है, किंतु परम्परावादी नहीं है, उसकी वैचारिक ताजगी और निर्मलता आज भी उतने ही गौरव से विद्यमान है। उसकी चिंतन पद्धति, सहिष्णु कांतिनिष्ठ और प्रगतिशील है। जैन धर्म की विशेषता है कि उसने धार्मिक अंतर्विरोधों को सदैव एक रचनात्मक मोड़ दिया है और अपनी चिंतन प्रक्रिया द्वारा अहिंसा के तत्व चिंतन को स्थापित करने के साथ विश्व बंधुत्व का प्रेरणामय, अपरिग्रह तथा सेवा का उपदेश दिया, ताकि समाज में समरसता बनी रहे।

भारत अन्य धर्मों की तरह जैन धर्म का भी उद्गम स्थान है। जैन का अर्थ है जिन का अनुयायी। जिन उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है जिन्होंने अपनी अपार प्रकृति मनोविकारों, घृणा आदि पर विजय प्राप्त कर ली है। मनोविकार आत्मा के लिये अशुभ माने जाते हैं। वे आत्मा के नैसर्गिक धर्म को कलुषित करते, सम्यक दर्शन को आच्छादित करते तथा मिथ्या ज्ञान और असम्यक चरित्र को जन्म देते हैं। जैन मत विवेक मूलक है। यह सम्यक दर्शन, ज्ञान, चरित्र पर आधारित है। जैन धर्म ईश्वरवादी नहीं है। तीर्थंकर शब्द का अर्थ है जैन गुरु। महावीर का अहिंसावाद कायरता का परिचायक नहीं है वरन उनके उपदेश समस्त दर्शन तथा निष्ठा के प्रति आदर तथा विश्वास का परिचायक है।

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का जन्म पूरे विश्व में महावीर जयंती के रूप में उत्साह तथा उमंग के साथ मनाया जाता है। महावीर जैन

धर्म के संस्थापक नहीं थे अपितु उन्होंने जैन धर्म को पुनर्जीवित किया। संस्थापक की अपेक्षा वो सुधारक तथा सक्रिय प्रचारक थे। आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व ई.पू. 599 में 19 मार्च शनिवार के दिन महावीर का जन्म विदेह देश (वर्तमान-बिहार) के कुण्डनपुर नगर के क्षत्रीय राजा सिद्धार्थ की रानी तथा वैशाली नरेश चेटक की सर्वगुण संपन्न पुत्री त्रिशला के गर्भ से हुआ था। गर्भवती माता ने 14 सपने देखे थे जिनका ज्योतिषियों के अनुसार जन्म लेने वाला बालक या तो यशस्वी, शक्तिशाली राजा बनेगा या 24वां तीर्थंकर होगा। उनका जन्म भी प्रातः 4 बजे हुआ था तथा प्रसव के समय रानी त्रिशला को किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं हुई थी।

महावीर के गर्भ में आने के साथ ही उस राज परिवार की प्रत्येक क्षेत्र में अप्रत्याशित प्रगति हुई परिणाम स्वरूप माता-पिता ने उनका नाम वर्धमान रखा था।

राज परिवार में सुख समृद्धि के वातावरण में जन्म लेने के बावजूद आरंभ से ही उन्होंने सांसारिकता के प्रति अलगाव का प्रदर्शन किया था। अन्ततः 30 वर्ष की आयु में महावीर ने सांसारिकता का परित्याग कर 12 वर्षों तक मनन, चिंतन किया तथा 42 वर्ष की आयु में सर्वज्ञ केवली हो गए। इस काल में जैन धर्म की शिक्षा दी, अहिंसा, अपरिग्रह विश्व प्रेम व बंधुत्व तथा सेवा के उपदेश देकर ई.पू. 527 में निर्वाण प्राप्त किया। महावीर अहिंसा, विश्वबंधुत्व तथा तपस्या में विश्वास करने वाले पक्के निष्ठावान तथा त्याग पूर्ण जीवन व्यतित करने वाले आदर्श व्यक्ति थे।

तीर्थंकर महावीर की संवेदना, सहानुभूति, करुणा तथा अनुकंपा ने सामान्य जनमानस को अत्याधिक प्रभावित किया जिससे मांसाहारी वर्ग शाकाहारी बनता गया। महावीर ने उचित अवसर तथा समय देखकर लोगों को अहिंसा का उपदेश देना प्रारंभ किया। अहिंसा परमो धर्म: कहकर

अहिंसा को धर्म तथा हिंसा को अधर्म बतलाया। यज्ञों में होने वाली पशुबलि को अधर्म कहा।

लगातार तीस वर्षों तक उन्होंने अहिंसा का प्रभावशाली प्रचार किया तथा अहिंसा के अपरिमित लाभ बतलाए। महावीर ने ही अहिंसा के अभूतपूर्व सिद्धांत की सर्वश्रेष्ठ परंपरा स्थापित की जिसका प्रयोग राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कर भारत को स्वतंत्रता दिलाने का अभूतपूर्व कार्य किया।

महावीर के अहिंसा, अपरिग्रह, विश्वबंधुत्व तथा शाकाहार के उपदेश भारत में ही नहीं देश देशांतरों में भी अलख ज्योति प्रकाशित कर रहे थे। 580 ई.पू. में यूनानी दार्शनिक विद्वान पेथागोरस ने महावीर के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अपने देशवासियों को पुर्नजन्म एवं कर्मसिद्धांत की शिक्षा दी थी और उन्हें बताया था कि वनस्पति में भी जीव होते हैं इसलिए हिंसा और मांसाहार से दूर रहना चाहिए। स्वयं पेथागोरस अहिंसा धर्म का पालन करते थे। इसी तरह यूनान के राजा डेमेट्रियस भी महावीर के अनन्य भक्त थे। फिलिस्तीन के महात्मा मूसा के जीवन पर भी महावीर की शिक्षाओं का प्रभाव बताया जाता है। उनका अहिंसा का संदेश फिलिस्तीन, मिस्र और यूनान तक पहुँच गया था। फिलिस्तीन के एस्सेन लोग कट्टर अहिंसावादी थे। मिस्र में शाकाहार का प्रचलन था। इरान का राजकुमार आर्दक महावीर का अनुयायी था। उस युग में इरान में अहिंसा तथा अपरिग्रह का व्यापक प्रचार था।

महावीर के अन्य 4 अति महत्वपूर्ण उपदेश भी थे—

1. झूठ मत बोलो।
2. चोरी मत करो।
3. शुद्धता का जीवन जियो।
4. बाह्य सुखों का परित्याग करो।

महावीर दर्शन के अनुसार मानवीय शरीर में एक आत्मा है एवं जीवन आत्मा तथा वातावरण के बीच होने वाली पारस्परिक क्रिया का परिणाम है। जो अत्यधिक सूक्ष्म कण के समान कर्म से जन्म तथा पुर्नजन्म करता है।

जैन धर्म के मौलिक सिद्धांतों में महत्वपूर्ण तथ्यों का समावेश किया गया है जिनके पालन करने से वैश्विक शांति स्थापित की जा सकती है जिसके लिए पूरा विश्व प्रयासरत् है- इस दृष्टिकोण से जैन धर्म के सिद्धांतों को पूरे मानव समाज के हित हेतु प्रेरणा स्रोत माना जा सकता है। इन सिद्धांतों के विश्लेषण तथा भारत के संविधान की मूल भावना (उद्देशिका) में समानता परिलक्षित होती है। इन्हीं सिद्धांतों के अंतर्गत पर्यावरण की सुरक्षा की सशक्त पैरवी भी की गई है जिनके बारे में वर्तमान समाज चिन्तित भी है और प्रयासरत भी है।

जैन धर्म के सिद्धांत वर्तमान वातावरण के लिए संजीवनी का काम कर सकते हैं जो पूरे मानव समाज के हित में है तथा निम्नांकित रूप से वर्णित भी है-

(1) जैन धर्म एक ऐसा जीवन जीने की प्रेरणा देता है जो शुद्ध पवित्र व अपमिश्रण रहित हो साथ ही जो अन्य दुःखी प्राणियों के दुखों पर मरहम का कार्य करे तथा उनको सुसंगत जीवन जीने की राह दिखाए।

(2) यह धर्म विचारों में प्रजातंत्र, स्वतंत्र व्यक्तिगत विश्वासों का प्रेणता है। कितने भी छोटे जीव हो उनके अस्तित्व के अधिकार को मान्यता देता है तथा न सिर्फ जीओ और जीने दो में विश्वास करता है वरन् एक कदम आगे जाकर दूसरे जीवों की जिंदगी में यथासंभव सहायता करने का उपदेश देता है।

(3) जैन धर्म पर्यावरण संरक्षण की भी बात करता है तथा पेड़ों की कटाई को हतोत्साहित करता है साथ ही वस्तुओं के अपव्यय को रोकने के लिए उपभोग को सीमित करने की चेतना उत्पन्न करता है।

(4) यह धर्म कर्मों की निर्जरा में विश्वास करता है अर्थात् कम से कम गतिविधि को प्रोत्साहन देता है ताकि नए दुष्कर्मों का निर्माण न हो जैन धर्म के अनुसार हत्या चाहे मनुष्य की हो या छोटे जीव की हो हत्या ही कहलाएगी व करने वाला हत्यारा ।

(5) जैन धर्म का सर्वाधिक क्रांतिकारी प्रजातांत्रिक पहलू इस उपदेश में निहित है सभी जीवन जीना चाहते हैं अतः हमें कोई अधिकार नहीं है कि हम अपने जीवन में सुख सुविधा के लिए उनकी हत्या करें ।

महावीर हर किस्म के भेदभाव, आडंबर और कर्मकांड का विरोध करते थे। उनका प्रयास रहा कि मनुष्य आवश्यक तथा अनावश्यक में अंतर करना सीखे लेकिन आज समूची दुनिया अनावश्यक के जाल में फंसी हुई है। एक समय आवश्यकता को आविष्कार की जननी माना जाता था। आज स्थिति विपरीत है ।

अतः मनुष्य और पृथ्वी को बचाने के लिए चुनौतियों का शांत, संयत और स्थायी मुकाबला महावीर को याद कर ही किया जा सकता है । आज महावीर जयंती के पावन पर्व पर उनके विचारों की ओर लौटने का प्रण करें। महावीर के मार्ग पर चलने की उन्हीं की तरह मुक्त होने का निरंतर प्रयास करें ताकि महावीर जयंती की सार्थकता सिद्ध हो सके तथा पूरे मानव समाज का कल्याण हो- यही तीर्थंकर महावीर चाहते थे ।

भ्रष्टाचार हमें कहां ले जाएगा

डॉ. एम.सी. नाहटा

Although it is good to have money and things that money could buy but it is good too, to check-up once in a while and make sure that we have not lost that money could not buy.

देश के वर्तमान परिवेश में भ्रष्टाचार सर्वाधिक चर्चित विषय बन गया है। समय-समय पर भ्रष्टाचार संबंधी खबरें समाचार पत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित होती रहती है। वो सामान्य रूप से व्यक्ति विशेष तथा राजनैतिक दलों से संबंधित कार्यकर्ता तथा नौकरशाही की ओर इंगित होती है। इसका कदापि यह तात्पर्य नहीं कि अन्य वर्ग इस विषमता में लिप्त नहीं है। इसकी व्यापकता को देखते हुए तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय पर चर्चा निरर्थक है तथा इसे शिष्टाचार के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। स्व. राजीव गांधी ने 1980 में कहा था कि विकास तथा अन्य सार्वजनिक कार्य हेतु आवंटित राशि का 85 प्रतिशत बिचौलिये तथा भ्रष्ट नौकरशाहों की जेब में चला जाता है - विचार कीजिए कितना कटु सत्य था, उनका कथन।

अभी हाल ही में गरीबों के लिए अनाज हेतु आवंटित 915 मिलीयन डालर की अनुदान राशि का 50 प्रतिशत अंश बीच में ही उड़ा लिया गया और लाभ हितग्राहियों को नहीं मिल पाया। कुछ ही समय पूर्व एक अन्य शर्मनाक घटना और घटित हुई, जिसने हमारे मुँह पर कालिख पौत दी। विश्व बैंक ने भारत को पोलियो तथा क्षय रोग के लिए टिकाकरण हेतु भारत सहित तीन देशों (भारत, बांग्लादेश तथा केन्या) को एक बिलियन डालर की सहायता ऋण पर रोक लगा दी है। सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसा क्यों हुआ। इसके अतिरिक्त हरियाणा में पूर्व मुख्यमंत्री द्वारा किया गया 1500 करोड़ का घोटाला अभी-अभी प्रकाश में आया है। खेद है कि उपरोक्त तथा पूर्व में घटित इसी प्रकार की अनेक घटनाओं ने भी देश को आंदोलित नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि हम भ्रष्टाचार

रूपी रोग से प्रतिरक्षित हो गए हैं। इसी मानसिकता का परिणाम है कि हमें विश्व के भ्रष्ट प्रथम 10 देशों की सूची में स्थान दिया जाता है। स्पष्ट झलकता है कि लालच हमें पूरी तरह लील चुका है और हमारा एकमात्र उद्देश्य है कि येन-केन प्रकरण अधिक से अधिक धन एकत्रित किया जावे।

इस विषय पर इतिहास के पन्ने खंगालने से पता चलता है कि भ्रष्टाचार हमें विरासत में मिला है। भ्रष्टाचार के उदाहरण चाणक्य तथा मुगलकाल में भी उपलब्ध थे। किंतु संख्या वर्तमान के अनुपात में नगण्य थी। भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित करने में अहम भूमिका निभाने वाले लार्ड क्लाइव पर भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण ब्रिटिश संसद में महाभियोग चलाया था। वो मानसिक रूप से इतने प्रताड़ित हुए कि उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। उनके उत्तराधिकारी वारेन हेस्टिंग का भी लगभग ऐसा ही हश्र हुआ था। भ्रष्टाचार एक विश्वीय समस्या है, इसके उदाहरण जापान, फीलिपिंस, इंडोनेशिया, जर्मनी, फ्रांस तथा अमेरिका में क्रमशः मोरी इस्ट्रेडा, सुहार्तो, हेलमेट कोल, जेकस चिराग तथा बिल एवं हिलेरी क्लिंटन ने प्रस्तुत किए थे, किंतु इन उदाहरणों से संतोष नहीं किया जा सकता है तथा सिक्के का दूसरा पहलु भी है कि भारत वर्ष को आध्यात्मिक मान्यताओं वाला देश माना जाता है, यहां अनेक मंदिर, मस्जिद तथा गिरजाघर विद्यमान हैं। वहां जाने वालों की कतारें भी छोटी नहीं होती हैं। प्रत्येक धर्म, भ्रष्टाचार, बेईमानी तथा अनैतिकता विरोधी उपदेश देता है और आचरण की अपेक्षा भी करता है। किंतु सब बेमानी है, चूंकि भ्रष्टाचार हमारी रग-रग में समा गया है। विचारणीय है कि भ्रष्टाचार हमें कहां ले जा रहा है ?

भ्रष्टाचार के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान के अनुसार भ्रष्टाचार गरीबों के विकास हेतु आरक्षित धन की दिशा बदल देता है, जिससे सरकार का जनता की मौलिक आवश्यकता पूर्ति तथा भरण-पोषण का संकल्प क्षतिग्रस्त होता है तथा असमानता तथा अन्याय का

वातावरण निर्मित करता है, परिणाम स्वरूप विदेशी सहायता तथा निवेश पर बंदिश लगने का मार्ग प्रशस्त होता है, जैसा विश्व बैंक को पोलियो तथा क्षय रोग निराकरण हेतु दी जाने वाली आर्थिक सहायता को लंबित करने को बाध्य होना पड़ा।

भ्रष्टाचार लोकतांत्रिक व्यवस्था को ध्वस्त कर आर्थिक विकास के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर गति को धीमी करता है। सरकारों के स्थायित्व पर प्रश्नचिन्ह लगता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था की नींव कमजोर तथा चुनावी व्यवस्था को विकृत करता है। यहां तक कि कानून व्यवस्था बनाए रखने में भी कठिनाई होती है। देश के अंदर छोटे व्यवसाय प्रारंभिक परेशानियों से ही उभर नहीं पाते हैं। पूर्व में भ्रष्टाचार नौकरशाही की निजी आवश्यकता पूर्ति का उपाय था, किंतु आज तो स्थिति है कि कितना और कितनी जल्दी बना सकता हूँ। अब भ्रष्टाचार राजनेताओं तथा नौकरशाहों तक सीमित नहीं रह गया है। न्यायपालिका का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रह गया है जैसा कि उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश वी.एन. खरे ने श्री जीवराज सिंधी द्वारा संकलित उत्कृष्ट पुस्तक 'यह कैसी आजादी है', में उल्लेख किया है। उसी पुस्तक में भारत के पूर्व मुख्य सतर्कता आयुक्त एन. विठ्ठल ने स्पष्ट लिखा है कि हमारे देश में राजनेता, नौकरशाह, एन.जी.ओ. तथा व्यवसायी भ्रष्टाचार की मूल जड़ है। रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर विमल जालान के अनुसार भ्रष्टाचार का असंगत बिन्दु है कि देश तथा देशवासी भ्रष्टाचार सहन करने के आदि हो गए हैं। स्पष्ट है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था के चारों स्तंभ भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे हुए हैं। स्थिति यहां तक विषम हो गई कि देश में कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय सेवा संगठन भी भ्रष्टाचार के मामले में किसी से कम नहीं है और आश्चर्य नहीं होगा कि किसी भी समय इन संस्थाओं की भी उच्च स्तरीय (सीबीआई) जांच की मांग उठ जाए। हम सोचने पर बाध्य है कि इन सबका परिणाम क्या होगा ? क्या यह कुंठा,

अव्यवस्था, अशांती, विद्रोह तथा रक्तचाप का कारण नहीं बनेगा ? क्या अनेक तथाकथित अपराधी आंतकवादी तथा नक्सलवादी की उत्पत्ति निरंकुश भ्रष्टाचार का परिणाम नहीं है ? यह बेमानी है कि कौन कितना भ्रष्ट है, भ्रष्टाचार तो सर्वत्र व्याप्त है ।

विश्व बैंक द्वारा स्वास्थ्य के क्षेत्र में पोलियो उन्मूलन तथा क्षय रोग हेतु टीकाकरण के लिए दिए जाने वाली आर्थिक सहायता-ऋण पर लगाए गए प्रतिबंध से स्पष्ट रूप से उजागर होता है कि भारत सरकार के विशेषकर स्वास्थ्य तथा औषधी निर्माण क्षेत्र भी अत्यधिक लालची, स्वार्थी, घूसखोर तथा भ्रष्टाचारी है । यह बताना सामयिक होगा कि स्वास्थ्य क्षेत्र की दयनीय स्थिति जैसे-भारत में शिशु मृत्युदर 1000 में 63 (जबकि हरेटा जैसे देश में 1000 में 45, प्रसव के समय मरने वाली महिलाओं की संख्या 408 प्रति 1,00,000 जबकि बोत्सवाना जैसे देश में 100 प्रति, 1,00,00 तथा तीन वर्ष से कम आयु के शिशुओं में कुपोषण का प्रतिशत 47 जैसे महत्वपूर्ण बिंदु को इन स्वार्थी तत्वों ने अनदेखा कर दिया है । इसके बावजूद हमारा खून बर्फ की तरह ठंडा ही रहा तथा चिंता की लकीरें दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रही है । विचार कीजिये हम कैसे आर्थिक तथा तकनीकी सहायता की अपेक्षा कर सकते हैं ?

यह शाश्वत सत्य है कि वर्तमान हालात में भ्रष्टाचार उन्मूलन संभव नहीं है, किन्तु इसका प्रतिशत तथा गंभीरता को तो कम किया जा सकता है, जिसके लिए भी प्रयास आरंभ करने हेतु शुभ मुहूर्त की प्रतिक्षा की जा रही है । इसके विपरीत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्रसंघ इस विभीषिका को कम करने हेतु एक समझौते के अंतर्गत सतत् प्रयत्नशील है ।

जब जागो तब सवेरा की कहावत को चरितार्थ करते हुए सरकार भ्रष्टाचार उन्मूलन हेतु कठोर कार्यवाही के संकेत दे अन्यथा देशवासियों का सोच 'भ्रष्टाचार एक सरकारी कार्यक्रम है' की पुष्टि होगी । यह भी इतना

ही सत्य है कि सारा दोष शासकों पर डालकर हम इससे मुक्त नहीं हो सकते हैं। भ्रष्टाचार में दोनों पक्ष ही समान रूप से दोषी होते हैं। हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि पिछले 10-15 वर्षों में किए गए आर्थिक सुधार जैसे मूल्यों पर नियंत्रण, आयात व औद्योगिक लायसेंस प्रणाली की समाप्ति से भ्रष्टाचार के ये स्रोत समाप्त हुए हैं, किन्तु प्रतिक्रियात्मक रूप से ऐसे अनेक नए क्षेत्र तथा तोर-तरीके ढूँढ लिए गए हैं कि किए गए आर्थिक सुधारों के परिणाम अदृश्य हो गए हैं।

आज हमारे सामने लाख टके का सवाल है, हम क्या करें ? संसार को प्राथमिकता के आधार पर सर्वाधिक भ्रष्टाचार के क्षेत्रों को चिन्हित करना चाहिए। प्रथम चरण में रक्षा सामग्री, पेट्रोलियम पदार्थों का मूल्य, टेलीकम्यूनिकेशन विस्तार हेतु लायसेंस तथा तेल की खोज (oil exploration) सार्वजनिक उपक्रम, गैर कानूनी रूप से चुनावी चंदा, प्रशासकिय अव्यवस्था तथा विलंब, विदेशी सहायता से चलने वाले कार्यक्रम तथा डिज्रेस्टर मैनेजमेंट की ओर ध्यान देना आज की महती आवश्यकता है। सुधार हेतु हांगकांग मॉडल की तरह भ्रष्टाचार निरोधक, स्वतंत्र आयोग का गठन, सीबीआई तथा प्रवर्तना संचालतायल जैसी संस्थाओं को कार्यपालिका के हस्तक्षेप से मुक्ति केंद्रीय सतर्कता आयोग न्याय पालिका तथा लेखा संस्थानों को स्वतंत्र संवैधानिक दर्जा देने हेतु, कानून नियम बनाने से राजनीतिक हस्तक्षेप से छुटकारा मिल सकेगा।

उपरोक्त सुझावों पर कार्यवाही प्रबल राजनैतिक इच्छा शक्ति के बगैर संभव नहीं है। अतः प्रधानमंत्रीजी को प्रमुख राजनैतिक दलों से तत्काल-विचार-विमर्श कर पहल करना चाहिए। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह सार्थक तथा परिणामजनक होगा, अन्यथा हमारे सामने अंधेरा ही अंधेरा रहेगा। ऐसा न होने पर अराजकता की स्थिति निर्मित हो सकती है, जो हमारी अपेक्षा नहीं है।

कितनी मंहगी है हमारी विधायिका

डॉ. एम.सी. नाहटा

15 अगस्त 1947 को भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात दिनांक 26 नवम्बर 1949 को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पथं निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के पवित्र उद्देश्य तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए संविधान सभा में संविधान को अंगीकृत अधिनियमित किया। इसके पूर्व भारत के लाखों पुरुष तथा महिलाओं ने स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु एक लंबी तथा कठिन लड़ाई लड़कर त्याग, तपस्या तथा बलिदान के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए। उसका प्रतिफल स्वतंत्र भारत जो कि पुराने स्वरूप में नहीं वरन विभाजित होकर हमारे सामने आया। स्वतंत्र भारत के निर्माण हेतु हमने मानवाधिकार युक्त लोकतांत्रिक व्यवस्था स्वीकार की। हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने राष्ट्र के पुनः निर्माण हेतु जनभागीदारी तथा सहयोग की कल्पना की जिसके लिए लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को सर्वाधिक उपयुक्त माना। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को स्वीकार करने के पीछे अटूट विश्वास था कि हमारे जन प्रतिनिधि सत्ता का दुरुपयोग नहीं करेंगे और राष्ट्र निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाने के साथ केन्द्र तथा राज्यों में गठित सरकारें जनता के उत्तरदायी तथा प्रभावनीय होंगी। इस उद्देश्य हेतु संविधान के अनुच्छेद 79 से 123 से संसद के गठन, समायोजन, अवधि, अर्हता, सत्रावसान और विघटन, राष्ट्रपति का विशेष अभिभाषण, मंत्रियों और महान्यायवादी के अधिकार, राज्य सभा के सभापति, उपसभापति तथा लोकसभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष से संबंधित समस्त बिंदु, संसद, सचिवालय, कार्य संचालन,

सदस्यों की निर्हरताएं, सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियां, विधायी प्रक्रिया, वित्तीय विषय प्रक्रिया इत्यादि विषय का समावेश कर व्यवस्था की है। इसी प्रकार राज्यों के संबंध में भी संविधान के अनुच्छेद 135-177 में प्रावधान किए हैं। जिनमें राज्यपाल, मंत्री परिषद्, महाधिवक्ता, सरकारी कार्य का संचालन, विधान मंडल, कार्य संचालन, सदस्यों के निर्हरताएं, विधायी प्रक्रिया, वित्तीय विषय इत्यादि पर व्यवस्था बनाई है।

इस कठिन परिश्रम तथा दूरदर्शिता का एकमात्र उद्देश्य रहा है कि इस देश की जनता का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक शोषण न हो तथा देश में खुशहाली एवं समृद्धि हो। आज प्रश्न है कि क्या हम संविधान निर्माताओं तथा देश को स्वतंत्रता दिलाने वाले पूर्वजों की अपेक्षाओं को पूरा करने में सफल हुए हैं या उस दिशा में अग्रसर हुए हैं तथ्य तो विपरीत दिशा की ओर इंगित करते हैं। अतः हमें वर्तमान स्थिति का आंकलन करना चाहिये। एक ओर स्वतंत्रता के 58 वर्षों बाद देश की 100 करोड़ से अधिक आबादी का 30 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है और 8 करोड़ से अधिक नौजवान बेरोजगार हैं। केन्द्र सरकार पर आंतरिक तथा बाह्य कर्ज 2003-2007 में क्रमशः 1134025.35 तथा 47407.41 करोड़ है, जिसके उपर प्रतिवर्ष 1,24,554 करोड़ ब्याज के रूप में देना पड़ रहा है। राज्यों की स्थिति भी कम दयनीय नहीं है, उनके उपर 791400 का कर्ज वर्तमान में है।

केन्द्र पर कर्ज का विवरण

	आंतरिक कर्ज	बाह्य कर्ज
1950	2054.33	32.03
2003.04	1181427.46	47407.41

	अन्य देयता	
	1950-51	2003-2004
राष्ट्रीय अल्प बचत निधि	811.07	54071.60
राष्ट्र प्राविडेंट निधि	336.87	23287.68
अन्य लेखा	16.10	1674115.26

गैर शासकीय विशेष जमा प्राविडेंट निधि

	-----	120125.00
अन्य	16.10	47290.26
सुरक्षित निधि तथा		
जमा	263.05	87152.64
बेअरिंग इंटेरेस्ट	266.85	43501.32
नाट बेअरिंग इंटेरेस्ट	102.20	43651.32
कुल देयता	2685.40	1724498.82

इस चिंताजनक स्थिति के बावजूद हमारे जनप्रतिनिधि सांसदों के वेतन तथा भत्ता संबंधी कानून में 1954 से 2002 के बीच 25 बार परिवर्तन कर उनके वेतन, पेंशन तथा अन्य सुविधाओं में वृद्धि की गई। यहां यह कहना सामयिक होगा कि शासकीय कर्मचारियों के वेतन, मानदेय इत्यादि में 10 वर्ष में एक बार वेतन आयोग बैठाने का प्रावधान है, किंतु हमारे जनप्रतिनिधियों के लिए न तो ऐसा कोई प्रावधान है न ही व्यवस्था है। प्रतिदिन हम संसद में पक्ष तथा विपक्ष को आपस में विवाद तथा हाथापाई तक करते देखते हैं। पक्ष और विपक्ष किसी भी मुद्दे पर एकमत नहीं होता है। इसका एकमात्र अपवाद है उनकी सुविधाओं में वृद्धि जिस पर कोई विवाद नहीं होता है यह सच है कि पिछले 50 वर्षों में सांसदों के वेतन मानदेय तथा सुविधाओं में 90 गुना वृद्धि हुई है। एक सांसद को प्रतिमाह

लगभग 36,000/- वेतन तथा दैनिक भत्ते के रूप में प्राप्त होता है जिसमें वेतन का अंश केवल 12,000/- है—जिस पर शासकीय योजना में निवेश करने पर आयकर में छूट प्राप्त की जा सकती है। हमारे जन प्रतिनिधियों को नाम मात्र के किराये पर रहवासी भवन, निःशुल्क दूरभाष, मोबाइल फोन, बिजली, पानी, चिकित्सा सुविधा, हवाई तथा रेल यात्रा के प्रावधान हैं जिनका पूरा उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त अनेक लिखित तथा अलिखित सुविधाएँ तथा प्रभाव के क्षेत्र हैं— जिनका उपयोग भी होता ही है जो सर्वविदित हैं। एक संतुलित आंकलन के अनुसार यह आकार लगभग 3 लाख प्रतिमाह का आँकड़ा छूता है। आज देश में भूतपूर्व व वर्तमान विधायकों की संख्या 5269 है इन पर होने वाले खर्च का अनुमान भी सरलता से लगाया जा सकता है। निष्कर्ष है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था पर होने वाले खर्च में हम शीर्ष स्थान पर हो सकते हैं। जिस आधार पर श्रीमती इंदिरा गाँधी ने अनुपयोगी मानकर पूर्व शासकों (राजा महाराजा) के प्रीविपर्स की समाप्ति की थी— क्या हम विधायिका पर होने वाले व्यय को उसके समकक्ष मानें। यहाँ यह भी बताना सामयिक होगा कि गत वर्ष प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल पर 122.52 करोड़ खर्च हुआ था जो कि लोकसभा पर होने वाले खर्च का 50 प्रतिशत है और राज्यसभा के खर्च से 30.29 करोड़ अधिक है। विशेष सुरक्षा दल पर होने वाला 79.46 करोड़ इसके अतिरिक्त है।

सांसदों को मिलने वाली सुविधा

	1-6-1954	1-12-2004
1. वेतन	400.00	12,000.00
सांसद क्षेत्र भत्ता	—	10,000.00
प्रेकिंग व्यय	—	1,500.00
कार्यालय व्यय	—	2,500.00

निजी सचिव	—	10,000.00
2. यात्रा सुविधा		
रेल	द्वितीय श्रेणी 1 व्यक्ति तृतीय श्रेणी 1 व्यक्ति	प्रथम श्रेणी 1 व्यक्ति द्वितीय श्रेणी 1 व्यक्ति
हवाई यात्रा	टिकिट का 1¼ गुना	टिकिट का 1¼ गुना
सड़क	आठ आना प्रति माइल गंतव्य स्थान रेल से जुड़े होने पर रेल किराये के समकक्ष	8.00 प्रति कि.मी. बशर्ते गंतव्य स्थान दिल्ली से 300 किमी से कम दूरी पर हो।
3. दैनिक भत्ता	21.00 प्रतिदिन	500.00 प्रतिदिन
4. अन्य सुविधाएँ		
हवाई यात्रा	संसद अधिवेशन के समय एक बार यात्रा	एक वर्ष में 32 एकल यात्राएँ
रेल पास	एक व्यक्ति के लिये निःशुल्क पास	पति-पत्नी के साथ प्रथम श्रेणी, वातानु- कूलित या एक्सी- क्युटीव श्रेणी में निःशुल्क यात्रा।
रेल पास (पति-पत्नी के लिये)	पति-पत्नी के लिये अधिवेशन के समय एक बार निःशुल्क यात्रा (प्रथम श्रेणी) 21.8.69 से प्रभावी)	सहयोगी की वातानु- कूलित द्वितीय श्रेणी में प्रथम वातानुकूलित एक्सीक्युटिव श्रेणी में एक बार निःशुल्क यात्रा

दूरभाष दिल्ली में एक टेलीफोन
1800 निःशुल्क फोन
संसदीय क्षेत्र में एक फोन
(5.8.1964) से प्रभावी

दिल्ली में एक फोन
50000 काल
निःशुल्क संसदीय क्षेत्र
में एक फोन 50000
निःशुल्क फोन
दिल्ली में इंटरनेट काल
के समकक्ष।

एक चलित फोन-
निःशुल्क पंजीयन,
किराया नहीं राष्ट्रीय
रोमींग सुविधा
(1,50,000 फोन की
सुविधा के अन्तर्गत
समावेश की व्यवस्था।
1000 कि.मी. से दूर
रहने वाले सदस्यों को
10000 अतिरिक्त
निःशुल्क काल।

यदि निःशुल्क काल का
उपयोग पूरा न हो तो
निजी फोन पर
स्थानांतरण की सुविधा
प्रति वर्ष निःशुल्क पानी
4000 किलो लीटर
बिजली 50000 युनिट

बिजली, पानी 300 रु. प्रतिमाह भत्ता
(1986) से कार्यान्वित

निवास	किराये में 25% की कमी फर्नीचर भी इसमें शामिल है।	फ्लेट-निःशुल्क बंगला-सांकेतिक किराया फर्नीचर तथा अन्य सामग्री पर 25% कम किराया।
चिकित्सा	प्रथम श्रेणी अधिकारियों के समकक्ष सांकेतिक मासिक अंशदान देय।	प्रथम श्रेणी अधिकारियों के समकक्ष सांकेतिक मासिक अंशदान देय।
पेंशन	9.9.1976 से प्रभावी 500 प्रतिमाह + 50 रु. अतिरिक्त रूप से प्रत्येक पूर्ण वर्ष पर।	न्यूनतक 3000.00 प्रतिमाह अतिरिक्त रूप 600.00 प्रतिमाह पाँच वर्ष से अधिक अवधि वाले समय के लिये।
परिवारिक पेंशन	20.8.1998 से प्रभावी 1000/- प्रतिमाह मृत्यु के दिनांक से पाँच वर्ष के लिये।	1500/- प्रतिमाह मृत्यु के दिनांक से पाँच वर्ष के लिये।
रेल यात्रा	18.1.99 से प्रभावी द्वितीय श्रेणी वातानुकूलित में एक सहयोगी के साथ	अकेले यात्रा करने की स्थिति में प्रथम श्रेणी वातानुकूलित/एक्सी- क्यूटिव क्लास। द्वितीय श्रेणी वातानु- कूलित एक सहयोगी के साथ।

चिकित्सा	बड़े शहरों में सांकेतिक मासिक देय पर- जहाँ सी.जी.एच.एस. योजना हो।	बड़े शहरों में सांकेतिक मासिक देय पर-जहाँ सी.जी.एच.एस. योजना हो।
----------	---	---

विशिष्ट व्यक्तियों पर व्यय का ब्यौरा

	2002-2003	2003-2004
राष्ट्रपति तथा उनका सचिवालय	9.94 करोड़	14.55
उपराष्ट्रपति तथा उनका सचिवालय	0.97	1.07
लोकसभा अध्यक्ष उपाध्यक्ष लोकसभा नेता, मुख्य विपक्षी सदस्य, सचिवालय	222.78	244.90
राज्यसभा सभापति उप सभापति	77.90	92.25
प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल	74.33	122.52
विशेष सुरक्षा दल	60.09	77.46
पूर्व राष्ट्रपति पेंशन	0.05	0.09
पूर्व राष्ट्रपति अन्य सुविधाएँ	0.19	0.20
पूर्व सांसद पेंशन योग	4.76	5.64
	451.01	558.68

इस विषय पर आज तक उल्लेखनीय चर्चा नहीं हुई है। परिणामस्वरूप अंकुश के अभाव में निरकुंशता में वृद्धि हुई है और जन सेवक सुविधाभोगी बन गये राजनीति में आई गिरावट, अनैतिक आचरण भी इसी का परिणाम है तथा विकास के अवरूद्ध होने का कारण भी बना है। राजनीति सहज सरल रूप से धन कमाने का माध्यम बन गया है। इस असंयमित वातावरण ने अन्य शासकीय तथा अशासकीय उपक्रमों को भी प्रभावित किया है- यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय सेवा संगठनों में भी ऐसी ही दयनीय स्थिति निर्मित हो गई है और राजनीति क्षेत्र के समकक्ष गुटबाजी, लालच तथा स्वार्थी तत्व हावी हो गये हैं- आश्चर्य नहीं होगा राजनीतिक क्षेत्र के समकक्ष इन संगठनों की उच्चस्तरीय जाँच की माँग उठ जावे।

आज की महती आवश्यकता है राजनीति के शुद्धिकरण की। जिस प्रकार देश की आजादी प्राप्त करने में कठिनाइयाँ आई उससे अधिक कठिनाई वर्तमान दूषित व्यवस्था को ठीक करने में आवेगी-उसके लिये मार्ग भी ढूँढने पड़ेंगे तथा परिश्रम भी मुस्तेदी के साथ करना पड़ेगा। जनजागरण तथा सार्वजनिक चर्चा एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो कि पर्याप्त तथा आवश्यक सुधार कर सकता है। अतः मेरा विनम्र सुझाव है कि सार्वजनिक चर्चा तत्काल प्रारम्भ की जावे जिसमें विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका, सामाजिक संगठन तथा मिडिया के प्रतिनिधियों को आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जावे। शरारती तथा स्वार्थी तत्व इस प्रयास को असफल करने का प्रयास करेंगे- इन तत्वों को दूर रख कर हम अपना कार्य सरलता से कर सकते हैं और सफलता भी प्राप्त कर सकते हैं ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। हम सरकार को आवश्यक कार्यवाही के लिये बाध्य भी कर सकते हैं ताकि स्थिति अनियंत्रित न हो जिसकी आशंका प्रबल है।

छद्म मुद्दे, झूठे वादे नारे, भ्रमित मतदाता

डॉ. एम.सी. नाहटा

पिछले कुछ वर्षों से न्यायपालिका ने अभूतपूर्व साहस दिखाकर समय-समय पर बिगड़ती हुई राजनीतिक व्यवस्था को सही दिशा दिखाने का कार्य किया है - इसके कई उदाहरण हमारे समाने हैं - उदाहरणार्थ उच्चतम न्यायालय ने एक आश्रम के संबंध में आदेश पारित कर भूमि वापस लौटाने का निर्णय दिया था। पटना उच्च न्यायालय के बिहार की प्रशासनिक तथा राजनीतिक परिदृश्य पर की गई टिप्पणी ने पूरे देश को झकमोर दिया था। वैसे न्यायपालिका के निर्णय को हस्तक्षेप का रूप देकर, सक्रियतावाद की संज्ञा भी दी गई है। किंतु आज पूरा देश बिगड़ी हुई व्यवस्था से परेशान है और इसका उत्तरदायित्व राजनेताओं द्वारा दिए गए नारों तथा उठाए गए मुद्दों को देने को विवश है। इस संदर्भ में अमेरिकी राजनीतिक वेंडेल विल्की की टिप्पणी - एक सुहावना नारा अगले 40 वर्षों तक एक विश्लेषण को अस्पष्टता के कुहासे से ढक सकता है यह टिप्पणी भारतीय परिदृश्य पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है क्योंकि इस देश में नारे तथा मुद्दों पर ही आधारित राजनीति चली आई है।

नारों की राजनीति नई नहीं है। नारे भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के मूल आधार थे। स्वतंत्रता पूर्व के राजनेताओं ने आजादी प्राप्त करने के पवित्र उद्देश्य से देशवासियों को नए - नए नारे दिए, उद्देलित किया, स्वतंत्रता प्राप्ति की लड़ाई लड़ी और अंत में उद्देश्य भी प्राप्त किया। उस काल के नारों में स्व. महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, मौलाना आजाद, सरदार पटेल, सुभाष बोस, जयप्रकाश नारायण, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक तथा अन्य व्यक्तियों ने स्वदेशी, नमक सत्याग्रह, तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा, भारत छोड़ो, स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है इत्यादि नारे दिए जो त्याग, तपस्या, बलिदान पर आधारित थे। गांधीजी के अहिंसा

के मुद्दे ने सारे विश्व को चकित कर दिया जो भारत की आजादी का मूलमंत्र भी रहा है।

आजादी के प्रारंभिक वर्षों में प्रथम प्रधानमंत्री ने पंचशील का नारा दिया। संभवतया इसके पीछे भारतीय सामरिक शक्ति की कमी का एहसास तथा अहिंसा में अटूट विश्वास का ही आधार रहा होगा। इसे कार्यान्वित करने का प्रयास भी निष्ठापूर्वक किया गया। तत्कालीन केन्द्रीय कृषि मंत्री ने हरित क्रांति का नारा देकर, भारत को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने का अभूतपूर्व कार्य भी किया है। आनन्द गुजरात से सफेद क्रांति का उदय हुआ। नए भारत में ब्ल्यू रिन्होल्युशन स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है - इससे एक नए भारत की छवि दिखती है, अब बारी है भारत की 10 प्रतिशत विकलांग जनसंख्या की, जिनका विकास ब्राउन रिन्होल्युशन के माध्यम से हो सकता है - 14वीं लोकसभा के चुनाव की पूर्व संध्या पर जो कि विकास के मुद्दे पर लड़े जा रहे हैं - राजनीतिक दल अपने-अपने घोषणापत्र में इसका समावेश कर सकते हैं। नारों का यह क्रम सतत है। समय के साथ सब बदल गया। नैतिक मूल्यों में शेयर मार्केट से भी अधिक गिरावट, भ्रष्टाचार का आलम, अनुशासनहीनता का तांडव, इस देश को प्राप्त हुआ है। जिसका मूल आधार समय-समय पर दिए गए नारे तथा उठाए गए मुद्दे ही हैं। स्वतंत्रता के बाद के 40 वर्षों में इस देश पर कुछ अपवादों को छोड़कर, कांग्रेस पार्टी ने ही राज्य किया है। भारत की वर्तमान दुःखद स्थिति के निर्माण का श्रेय इसी राजनीतिक दल को प्राप्त होगा, सच तो यह है कि अन्य राजनीतिक दल भी उसी का अनुसरण कर रहे हैं।

आज सर्वत्र चर्चा अनुशासन की होती है। देश का वातावरण राजनीतिक वातावरण की छाया में है। अनुशासनहीनता के दृश्य प्रतिदिन राजनीतिक दलों के टूटने में देखे जा रहे हैं। जिसका प्रभाव पूरे देश को प्रभावित कर चुका है। वैसे तो अनुशासनहीनता एक विश्व व्यापी समस्या

है किंतु भारत वर्ष आज सर्वोच्च स्थान पर स्थापित है। जिसकी नींव 1966 के राष्ट्रपति चुनाव में एक नारे आत्मा की आवाज के माध्यम से रखी गई। 1967 में सामूहिक दलबदल ने बहुमत प्राप्त कांग्रेस पार्टी के विधान मंडलों को अल्पमत में बदल दिया। भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिसमें उच्च न्यायालय का निर्णय अस्वीकार किया गया और आपातकाल की घोषणा हुई। जिस पर राष्ट्रपतिजी ने भी मोहर लगा दी। इस संदर्भ में विधी आयोग की 14वीं रिपोर्ट में की गई टिप्पणी सटीक बैठती है। एक राष्ट्र अपने सांसदों में अविश्वास रख सकता है, कार्यपालिका में अविश्वास उत्पन्न कर सकता है, किंतु जिस दिन वह न्यायालय में अविश्वास करने लगा, उस दिन देश का अधःपतन अवश्यंभावी हो जाएगा। आज न्यायालय के निर्णय अस्वीकार करने के नए-नए तरीके अपनाए जा रहे हैं जैसे सुश्री जयललिता के प्रकरणों में न्यायाधीश बदल कर किया गया था। इस दूषित तथा अनुशासनहीनता के वातावरण में देशवासियों से अनुशासन की अपेक्षा बेमानी है। आज तो स्थिति यहां तक बिगड़ी की अनुशासन नामक वस्तु संग्रहालय में भी रखने के लिए उपलब्ध नहीं है।

देश की गरीबी हटाओ, देश बचाओ का मनभावक नारा भी मिला था। सचमुच आज कोई राजनेता गरीब नहीं है। मंत्रियों, सांसद, विधायक तथा आला अफसरों की उद्देश्यहीन विदेश यात्राओं, बिजली, टेलीफोन के बिल, आवासों की साज-सज्जा, मोटरगाडियों की लंबी कतारों से उडते हुए धुएं तथा पेट्रोल के मोटे बिलों को देखकर कौन कह सकता है - गरीबी नहीं हटी-यह बात अलग है कि आज भी शासकीय आंकड़ों के अनुसार देश की जनसंख्या का 40 प्रतिशत से भी अधिक भाग, गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है।

समय-समय पर सुविधानुसार दिए गए नारे तथा उठाए गए मुद्दे जैसे प्रिवीपर्स की समाप्ति जिससे देश के सामान्य नागरिक का कोई सीधा संबंध

नहीं होते हुए भी सामान्य नागरिक को प्रभावित कर, चुनाव में विजयी बना दिया। वैसे ही बैंकों का राष्ट्रीयकरण जिसका प्रतिफल आज देश का नागरिक बैंकों की दुर्दशा के रूप में देख रहा है और उसके परिणाम भोगने को बाध्य हुआ है फलस्वरूप निजी बैंकों की स्थापना अबाध गति से बढ़ रही है।

समय और आवश्यकताओं के अनुसार नारों के संदर्भ तथा मुद्दों के विषय भी बदले जा रहे हैं। आज के आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित राजनेताओं ने समयानुसार विचार शैली भी बदल डाली। आज नारे उठाए जा रहे हैं - स्थानीयता, प्रांतीयता तथा धर्मनिरपेक्षता के। स्थानीयता की बात इस देश के लिए नई नहीं है। पूर्व देशी रियासतों के समय किसी एक राज्य का निवासी दूसरे राज्य में शैक्षणिक संस्था, शासकीय सेवा में प्रवेश एवं इस प्रकार के लाभ पाने के लिए प्रतिबंधित था। इस शर्त को पूरा करने के लिए झूठे - सच्चे प्रमाण पत्र भी प्राप्त किए जाते थे। राजा महाराजा तथा देशी रियासतों के समाप्त होने के साथ ही हमारे राजनेताओं ने स्थानीयता के नारे का आधुनिकरण कर, नए रूप में परिभाषित कर दिया। उसकी प्रासंगिकता भी चुनावों के समय उजागर की जाती है। चुनाव के समय राजनैतिक दल के प्रत्याशी बनने के लिए प्रतिस्पर्धी को मैदान से बाहर करने की प्रत्यशा में इसका खुलकर, उपयोग कर, चरित्रहनन भी निःसंकोच किया जाता है। खेद है कि राष्ट्रीयता का नारा देने वाले राजनीतिक दलों ने इस प्रकार के स्थानीयता तथा प्रांतीयता के नारे देकर, देश में एक विषम वातावरण निर्मित करने में अहम भूमिका निभाई है। फलस्वरूप कांवेरी जल विवाद, चंडीगढ़ का मसला, वर्तमान में उद्यमनगर का प्रश्न, नए प्रांतों की संरचना इत्यादि हमारे सामने है जिन्हें ये राष्ट्रप्रेमी राजनेता हल ही नहीं होने देते। 90 वर्ष पुराने कांवेरी विवाद का हल निकालने के लिए प्रधानमंत्री बाजपेयीजी को देश के नागरिकों का साधुवाद।

इसके विपरीत आज राष्ट्रीयता की बात प्रत्येक राजनेता करने से नहीं रुक रहा है - कुछ संगठन तो राष्ट्रों की भौगोलिक सीमा के पार भी अंतराष्ट्रीयता की बात कर रहे हैं जिसमें भौगोलिक सीमा बाधक नहीं होने का विचार का प्रदर्शन होता है - इसका आधार केवल मानवीय दृष्टिकोण रखा गया है और इस दृष्टिकोण में दम भी है क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र आज स्वतंत्रता, सुख, शांति के लिए मानव जाति के कल्याण के लिए प्रयासरत है - फिर इस तरह के प्रयासों में भाषा, जाति, धर्म, मूलवंश, संस्कृति इत्यादि के से बाधक हो सकती है। इस तरह के प्रयासों के अंतर्गत तो प्रकृति द्वारा उपलब्ध कराए गए संसाधनों - पानी, जमीन, खनीज तथा अन्य चीजों का अधिकतम दोहन होना चाहिए ताकि अधिक उत्पादन हो और इसका उपयोग भी।

सतही तौर पर तो कोई भी समझदार व्यक्ति इन मौलिक बातों से असहमति व्यक्त नहीं करेगा किंतु असलियत में क्या हो रहा है, इस पर भी विचार मंथन आवश्यक है। हम इस पर वर्तमान में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में ही विचार करना चाहेंगे।

भारत वर्ष की आजादी के स्वर्ण जयंती वर्ष में देश ने क्या-क्या देखा है या यों कहिए क्या नहीं यहां तक की गांधीजी द्वारा उपदेशित उपदेश को भी उकारने का बहुत बड़ा प्रयास किया गया है जिसमें संभावतया उन तत्वों की सफलता भी प्राप्त हुई है। मेरा मंतव्य है छूत से। गांधीजी ने मानवीय एवं सामरिक आधार पर एक मूलभूत बात हरिजनों के संदर्भ में कही थी जिन्हें समूह माना जाता था, इस हीन भावना को मिटाने का भरसक प्रयास भी करने किया, सफलता भी मिली - इसके लिए कानून भी बने - वातावरण भी निर्मित हुआ। न चाहने वाले लोगों ने भी इसे स्वीकार किया। जो कि आवश्यक ही था और है भी किंतु हमारे राजनेताओं ने अछूत शब्द का पुनः पुनः दुरुपयोग किया। विभिन्न तर्कों के आधार पर इस शब्द का

राजनैतिक क्षेत्र में अर्थ ही बदल डाला। इस देश के किसी भी धर्म, जाति विचारधारा के व्यक्ति या राजनैतिक दल को अछूत कैसे माना जा सकता है किंतु ऐसा हुआ। यह खेदजनक है और राष्ट्र के हितों के विपरीत भी है। यह एक ऐसा नारा है जिसने राष्ट्र की एकता पर कुठाराघात किया जो कि एक अक्षम्य अपराध की श्रेणी में आता है।

यहां यह स्मरण दिलाना होगा कि 1905 में हिंदू बंगाल तथा मुस्लिम बंगाल की चर्चा की गई थी, 1952 में केरल के संदर्भ में पंडित नेहरू ने कहा था कि मुस्लिम लीग पुरानी मुस्लिम लीग नहीं है। 1986 में हिन्दू औरत, मुस्लिम औरत की चर्चा की गई, यहां तक की हिन्दू पानी, मुस्लिम पानी भी कहा गया। शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश फार्म में भी धर्म के उल्लेख के लिए स्थान रखा गया। भारत ही एक देश है जहां दो राष्ट्रगीत तथा दो राष्ट्र भाषा की बात की जाती है। यह कैसी धर्म निरपेक्षता है। उपरोक्त संदर्भित व्यक्ति कभी भी साम्प्रदायिक नहीं माने गए फिर आज धर्म निरपेक्षता का ढोल बजाने की आवश्यकता कैसे आई। इस छद्म धर्म निरपेक्षता को समाप्त करने का दायित्व इस देश के नागरिकों पर है। इसकी अविलंब समाप्ति पर ही यह एक सेक्लुयर स्टेट माना जा सकेगा।

पूर्व प्रधानमंत्री व्ही.पी. सिंह ने सत्ता प्राप्ति के लिए बोफोर्स का मुद्दा उठा डाला - जिसमें उन्हें सफलता भी मिली और अन्ततः एक मासूम, निष्कपट, मृदुभाषी नौजवान प्रधानमंत्री राजीव गांधी की जघन्य हत्या में परिणित हो गई। वर्तमान प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने रोटी, कपड़ा और मकान का वादा किया और नेशनल एजेंडा के रूप में वायदों का पुलिंदा उपलब्ध कराया जिसमें भ्रष्टाचार का मुद्दा प्रमुखता के साथ जोड़ा। रोटी, कपड़ा और मकान बिगड़ी अर्थव्यवस्था के वातावरण में एक दिन में तो नहीं मिल सकते - इसके लिए समय तो देना ही पड़ेगा। अन्य प्रमुख नारों में एक सद्पुरुष स्व. लालबहादुर शास्त्री द्वारा दिया गया - जय जवान

जय किसान का नारा, वर्तमान प्रधानमंत्री द्वारा परमाणु परीक्षण के समय दिया गया नारा - जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान के नारे भी है। स्व. नेहरू द्वारा मुस्लिम समुदाय के संदर्भ में स्थापित अल्पसंख्यक का मुद्दा उठाया गया जिसका अब विस्तार हो चुका है। कुछ अन्य जातियां भी इसमें सम्मिलित कर दी गई है और कुछ सम्मिलित होने के लिए लालायित है। इस मुद्दे ने देश को बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक वर्ग की भावना में विभाजित कर दिया जिसे दूर करना कठिन कार्य है। पंडित नेहरू का सोच भारत की स्वतंत्रता तथा विभाजन के अवसर पर जातीय संघर्ष पर आधारित रहा होगा। किंतु इसके आज के विभत्य रूप की कल्पना तो उन्होंने भी नहीं की होगी। आज के परिपेक्ष्य में तो यह मुद्दा तुष्टीकरण पर आधारित प्रतीत होता है और इसकी अविलम्ब समाप्ति, आज की आवश्यकता भी है।

वर्तमान में राजनीतिक लाभ प्राप्त करने हेतु अनेक प्रकार के मुद्दे, नारे पड़े जा रहे हैं - अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के बाद, अगड़ा-पिछड़ा वर्ग, लिंग आधारित तथा अब तो युवा और प्रौढ़ का नारा भी सुनने में आ रहा है क्या यह सब विकास हेतु किया जा रहा है या अन्य लाभ प्राप्ति हेतु यह कैसा राष्ट्र है जिसमें देश के नागरिकों के लिए एक समान कानून की स्थापना कठिन है जो धारा 370 की समाप्ति के बारे में कही जाती है। देश के वर्तमान वातावरण का श्रेय राजनेताओं को ही जाता है। जैसे-जैसे राजनीतिक दल टूटे, जिसकी पहल सर्वप्रथम कांग्रेस पार्टी के विभाजन से ही हुई और आज तो लगभग सारे राजनीतिक दल एक बार नहीं कई बार टूट चुके हैं। स्थिति यहां तक पहुंच गई कि एक सांसद की भी राष्ट्रीय पार्टी हमारे देश में है जिसका नेतृत्व पूर्व प्रधानमंत्री कर रहे हैं। इस प्रकार के वातावरण से अनगिनत क्षेत्रीय तथा स्थानीय दल भी उभरे हैं फलस्वरूप सरकार बनाते समय या उसके बाद ब्लैकमेलिंग कर रहे हैं। जो दृश्य हमने श्री देवगौड़ा, श्री गुजराल के प्रधानमंत्रित्व काल में देखे और आज वाजपेयी

सरकार में देख रहे हैं। किंतु वर्तमान में राजग सरकार के सफल संचालन तथा 13वीं लोकसभा द्वारा कार्यकाल पूरा करने के परिणाम स्वरूप कांग्रेस पार्टी जो गठबंधन का सतत विरोध करती रही आज गठबंधन करने का लालायित दिख रही है।

इस परिदृश्य के विश्लेषण से एक ही बात स्पष्ट रूप से उजागर होती है कि केवल नारा बुंद करने से काम नहीं चलेगा न ही किसी की जय हो सकेगी। हर नारे के पीछे आग्रह छुपा होता है, नारे की सार्थकता के लिए नए प्रकार के नारे बनाने होंगे - नारे गढ़ना तो सरल है किंतु नए नर गढ़ना उतना ही दुष्कर है। वर्तमान वातावरण तथा परिदृश्य को बदलने के लिए आवश्यकता है जागरूकता की आवश्यकता है जयप्रकाश जैसे व्यक्ति की जो दिख नहीं रहा है। ऐसे व्यक्तित्व के अभाव में 100 करोड़ जनता में से कम से कम 100 व्यक्तियों के आगे आने की आवश्यकता है जो जनजागरण के माध्यम से नए भारत के निर्माण का वातावरण बना सके।

नारे और मुद्दे तो अनेक हैं। सब पर चर्चा न तो संभव है, न ही आवश्यक है। हमें विचार करना चाहिए उन बिन्दुओं पर जिन्होंने देश के वातावरण को दूषित किया है और जिनसे अखंडता भी प्रभावित हुई है। पूर्व में घटित घटनाओं से सबक लेकर, कुछ नए उपायों के माध्यम से इस भ्रष्ट वातावरण को बदलने के उपाय करना होंगे। मेरे मत में तीन स्तरीय प्रयासों से सुधार की प्रक्रिया कम से कम प्रारंभ तो हो ही सकती है।

(1) चुनावी प्रक्रिया में आवश्यक एवं अविलंब संशोधन।

(2) राजनीतिक दलों के संविधान में आमूल परिवर्तन - येन केन प्रकारेण राजनेता अपने मूल दल को छोड़कर नया दल गठित कर रहे हैं - इसको प्रतिबंधित करना अति आवश्यक है। सार्वजनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार संबंधी आरोपों के निराकरण, की प्रक्रिया इतनी लंबी है कि कभी तो आरोपित व्यक्ति के जीवनकाल में भी इनका निराकरण नहीं हो पाता है। अतः

आवश्यकता है ऐसे कानून की जिसके अंतर्गत भ्रष्टाचार संबंधी प्रकरण पर अंतिम निर्णय एक साल से कम अवधि में होना अनिवार्य हो जाए।

(3) राजनीतिक दलों की सदस्यता देने के पूर्व यह आवश्यक बनाना चाहिए कि उस सदस्य ने समाज सेवा के क्षेत्र में कम से कम एक दशक तक कार्य किया हो। यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि जो व्यक्ति राजनीतिक दल की सदस्यता स्वीकार कर रहा है, कहीं आर्थिक लाभ के लिए तो नहीं कर रहा हैं, अतः इस बिंदु पर विचारोंपरांत सदस्यता के मापदंड निर्धारित करना आज की सर्वोच्च आवश्यकता है।

(4) राज्यसभा में सदस्यता के लिए भी मापदंड होना चाहिए - जिन पर पूर्व में कई बार विचार व्यक्त किए जा चुके हैं किन्तु क्रियान्वयन आज तक नहीं हुआ है। राज्य सभा तथा विधानमंडलों को अनाथालय के रूप में देखने की मानसिकता को बंद करने की सोच आवश्यक है।

उपरोक्त सोच तथा अन्य संबंधित विषय पर विचार, निर्णय तथा क्रियान्वयन की जिम्मेदारी आज प्रधानमंत्री पर है जिनके उपर देश की निगाहें टिकी हैं जो आज के भारत के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ भी है और सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति है जिनकी और पूरे राष्ट्र की निगाहें है और अपेक्षाएं भी हैं।

चुनौतियां ही चुनौतियां-भ्रष्टाचार राजनीति का अपराधीकरण आदि कुछ उपाय

डॉ. एस.सी. नाहटा

नवंबर 1994 में देश के चार राज्य आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, गोवा तथा सिक्किम तथा फरवरी 1995 में महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, केरल, मिझोरम, नागालेण्ड तथा अरुणाचल प्रदेश विधान सभाओं के चुनाव होने को हैं। मुख्य चुनाव आयुक्त श्री टी.एन. शेषन ने इस वर्ष में होने वाले चुनावों को तो हरी झंडी भी दिखाकर इन राज्यों के मतदाताओं को परिचय पत्र की बाध्यता की परिधि के बाहर रख दिया है। मार्च 1996 में लोकसभा के चुनाव भी संभावित हैं। अगले चुनावों के लिये गणित, पृष्ठभूमि तैयार होने लगी है और चुनावी मुद्दों पर भी सोच विचार तथा प्रारंभिक प्रचार-प्रसार हुआ है। वैसे देखा जाये तो हर चुनाव के समय नये-नये मुद्दे ढुंढे जाते हैं- बनाये जाते हैं जो कि इस समय पिछले मुद्दों से भिन्न ही होंगे। फिर भी इस चुनाव में भी भ्रष्टाचार को अहम मुद्दा बनाने के प्रयास प्रारंभ हो गये हैं और कुछ राजनेताओं के राजनितिक भविष्य के समाप्त करने की दिशा में प्रयास भी होने लगे हैं। भ्रष्टाचार के मुद्दे को लेकर श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने सत्ता प्राप्ति का लक्ष्य पूरा किया था किन्तु सत्ता सुख ने अधिक समय तक उनका साथ नहीं दिया। जिस बोफोर्स कांड के घोड़े पर सवार होकर उन्होंने सत्ता प्राप्त की थी- अपने 11 माह के प्रधानमंत्री काल में चाहते हुवे भी उस काण्ड में भ्रष्टाचार का आरोप सिद्ध न कर सके। फलस्वरूप एक शालिन निर्विवाद रूप से ईमानदार, तथा देश को नई दिशा देने की इच्छाशक्ति से भरपूर नौजवान को न केवल सत्ता से अलग कर दिया वरन् उनकी नृशंस हत्या भी हो गई और देश का एक उदयीमान व्यक्ति काल के गाल में समा गया। यह वही बोफोर्स हैं जिसे श्री व्ही.पी.सिंह शायद कभी के भूल गये हैं। उसी प्रकार के मुद्दे पुनः उठने लगे हैं- अन्तर इतना है कि इस समय यह

मुद्दा नौकरशाही के माध्यम से उठाया हैं। सामान्य जनता भी इसके प्रति अति उत्साहित होने लगी हैं। राजनेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप नये नहीं हैं पूर्व में भी ऐसे आरोप लगे हैं चूंकि कांग्रेस पार्टी सबसे अधिक समय तक सत्ता में रही है अतः भ्रष्टाचार के आरोप का सबसे अधिक बोझ भी उसे ही झेलना पड़ा है। किन्तु अल्प समय तक शासन करने वाले अन्य दलों के नेताओं पर भी इसी प्रकार के आरोप लगे हैं। कई लोगों के राजनीतिक भवष्य भी समाप्त हुए हैं या लम्बी छुट्टी पर जाने के बाद पुनः सत्ता में आने के लिए प्रयासरत हैं। फिर भी चूंकि कांग्रेस देश का सबसे पुराना तथा बड़ा राजनीतिक दल है और पुनः सत्ता प्राप्ति का इच्छुक तथा प्रबल दावेदार है। अतः उसे भ्रष्टाचार के मुद्दे को हल्के-फुल्के ढंग से नहीं लेना होगा, अपितु इसका उत्तर देने के लिए कुछ प्रासंगिक कड़े कदम भी उठाने होंगे, ताकि सामान्य जनता यह विश्वास कर सकें कि यह दल भ्रष्टाचार उन्मूलन में जन आंदोलन में सहभागी हैं- अन्यथा इन आरोपों के तहत जो बहुत लोगों पर लगे हैं, कितने खेत रहेंगे, आज कहां नहीं जा सकता।

आज देशवासी भ्रष्टाचार से तंग है और इस विषय पर प्रचलित किस्सों से विचलित भी। इस मुद्दे से जुड़ा हुआ अन्य मुद्दा होगा, चुनाव सुधार का- जिसके माध्यम से भ्रष्टाचार उन्मूलन चाहा जा रहा है, आज चुनाव सुधार के प्रणेता है नौकरशाही के अंग श्री टी.एन. शेषन- चुनाव सुधार तथा चुनावों में धन बल तथा अन्य भ्रष्ट तरीकों के उपयोग को समाप्त करने के प्रयासों के बारे में अच्छा खासा प्रचार करने में सफल हुए हैं- उन्हें जनता का स्नेह तथा विश्वास भी मिला है, आज के नौकरशाहों में सर्वाधिक लोकप्रिय भी हैं- यह बात अलग है कि चुनाव आयुक्त के पद पर पदासीन होने के पूर्व उन्होंने प्रशासकीय सुधार की कोई बात नहीं की। यहां यह भी प्रासंगिक होगा कि चुनाव सुधार की प्रक्रिया प्रारंभ करने का श्रेय स्व. राजीव गांधी को क्यों नहीं दिया जा रहा है, जो इसके मूलजनक है। अपने

अल्प प्रधानमंत्रित्व काल में दल बदल कानून तथा मतदाता को फोटोयुक्त परिचय पत्र संबंधी कानून सन् 1988 में उन्होंने ही लोकसभा में पारित कराया था। राजीव तो राजनीति में शुद्धिकरण के भी पक्षधर थे और इस आशय की घोषणा उन्होंने कांग्रेस के बंबई अधिवेशन में की भी थी, किंतु मिशन की पूर्ति के पूर्व ही उनकी नृशंस हत्या कर दी गई, जिसका खामियाजा देश भुगत रहा है। इसके बावजूद भी श्री शेषन जन आकर्षण का केन्द्र बने हैं। इस मुद्दे से दलिय लाभ या हानि का आज आंकलन निरर्थक होगा। हाल ही प्रधानमंत्री की मतदाताओं को परिचय पत्र देने की मांग को सिद्धांत रूप से स्वीकार करने की घोषणा का स्वागत ही होगा, दलिय लाभ भी मिलेगा एवं शेषन का दबाव भी कम होगा। हालांकि पूर्व घटनाओं से यह स्पष्ट है कि कोई भी राजनीतिक दल चुनाव सुधार के प्रति न तो गंभीर था न है, वो तो इसका उपयोग राजनीतिक हथियार के रूप में करना चाहते हैं- सत्ता के बाहर वाले दल इससे राजनीतिक लाभ प्राप्ति के लिए प्रयासरत अवश्य हैं।

अत्यंत महत्वपूर्ण विषय तो इन चुनावों में जन आकर्षण का केन्द्र बनेगा वह है दलित पिछड़ा वर्ग तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए 47 वर्षों की स्वतंत्रता के बाद भी सरकार द्वारा ठोस कार्य न करना। इसका भी पूरा उपयोग मंडल कमीशन की रिपोर्ट के माध्यम से पुनः सत्ता प्राप्ति के लिए श्री वि.प्र. सिंह ने भरपूर किया, इससे पूरे देश में विभाजन का वातावरण तथा अन्य प्रकार का जहर भी खूब फैला। इससे नए दल उभरे, अल्प समय में उन्हें अप्रत्याशित सफलता भी प्राप्त हुई। प्रत्येक राजनीतिक दल का यह कर्तव्य है कि पूरी निष्ठा के साथ इस वर्ग से सलाह मशवरा के बाद इनके विकास तथा भलाई के कार्यक्रम पेश करें, राज्य या केन्द्र में किसी भी पार्टी का शासन हो किन्तु इन कार्यक्रमों का अविलंब अमल करें। यह कार्य वोट प्राप्ति के लिए नहीं वरन् उनके सार्थक विकास के लिए किया

जाए। इस मुद्दे की सफलता-असफलता से भी राजनीतिक दलों का भविष्य प्रभावित होगा।

देश के बुद्धिजीवी वर्ग को अल्प संख्यक शब्द ने आहत किया है, आज इसको परिभाषित करने की आवश्यकता है या इसे शब्दकोष के बाहर करने की। यह शब्द कांग्रेस पार्टी की देन है और मुस्लिम समाज के तुष्टीकरण के लिए अपनाया गया है। इस वर्ग की आज देश में आबादी 17 करोड़ है, अन्य कई वर्ग हैं, जो 1-2 करोड़ के करीब ही है, जो अल्प संख्यक नहीं माने जाते। किन आधार पर 17 करोड़ वाले वर्ग को अल्पसंख्यक माना गया है और अन्य को नहीं विवेचना का विषय है। तुष्टीकरण की इस नीति का लाभ आजादी के तुरंत बाद वाले वर्षों में तो कांग्रेस को अवश्य मिला है, किंतु अब न तो मिलता है, न मिलेगा। समानाधिकार के आधार पर इस भेदभाव को मिटाना होगा। इससे प्राप्त हो रही नाराजगी से कांग्रेस को बचाना होगा।

आज के वातावरण के परिपेक्ष में राजनीतिक दलों में अपराधी तत्वों के सम्मिलित होने के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। वर्तमान में इसकी पुष्टि भारत में गृह मंत्री के उनके दिनांक 26 अगस्त को लोकसभा में दिए गए भाषण से भी होती है। चुनावों को दृष्टिगत रखते हुए तथा अन्य कारणों से राजनीतिक दल विशेषकर कांग्रेस तथा भारतीय जनता पार्टी ने सदस्यता अभियान चला रखा है, इसमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती, बशर्ते कि सदस्यता देने के पूर्व इस बात की पुष्टि कर ली जावे की मनोनित सदस्य परोक्ष या अपरोक्ष रूप से अपराधी नहीं है- ऐसा न करना प्रत्येक दल के लिए लाभ के बजाए हानि का द्योतक ही बनेगा। यह भी होगा जन सामान्य का चुनावी मुद्दा।

देश आज राजनेताओं की हत्याओं के दौर से गुजर रहा है। इनकी जितनी निंदा की जाए, कम है। इन हत्याओं से परिवारों का नुकसान तो होता है, समाप्त भी हो जाते हैं, इससे सहानुभूति तथा लाभ राजनीतिक

दलों को अवश्य होता है, एवं दूसरों दलों को नुकसान । इस तरह की राजनेताओं की हत्याओं की रोकथाम के लिए जो भी दल खुले रूप से प्रभावी कदम उठाएगा, न केवल प्रशंसा तथा स्नेह का पात्र होगा, बल्कि उन्हें सब प्रकार से लाभ भी मिलेंगे ।

आज भी एक संवेदनशील मुद्दा है देश में, मंदिर-मस्जिद विवाद । पूर्व में भारतीय जनता पार्टी को इससे लाभ तथा हानि दोनों हुए हैं । यह एक ऐसा अहम विषय है, जो देश के बहुसंख्यक वर्ग की भावनाओं से जुड़ा है । इसका प्रभाव अभी हिन्दी भाषी राज्यों तक सीमित है । इस समस्या का उचित समाधान करने वालों को देशवासियों से प्रशंसा ही प्राप्त होगी, अन्यथा भाजपा इससे लाभान्वित ।

देश आज विषम राजनीतिक वातावरण में है । स्थायित्व आज की महती आवश्यकता है । ऐसे वातावरण में क्या विपक्ष एक जुट होकर चुनावी संग्राम में कूद सकेगा । ऐसी संभावना क्षीण एवं नगण्य है । जो वातावरण 1977 में था वो अब निर्मित नहीं हो सकता । फिर भी हाल ही में विशेषकर ए.टी.आर. के लोकसभा में पेश होने के अवसर पर विपक्ष द्वारा दिखाई गई एकता पर भी नजर रखना होगी । विपक्ष की एकता के परिपेक्ष में (जो हो ही नहीं सकती) चुनावी युद्ध भीषण तथा विस्फोटक होगा- कई यौद्धा खेत रहेंगे । 1996 में होने वाले लोकसभा के चुनाव के परिणामों की छाया 1994 में होने वाले चुनावों से दिखने लगेगी, अगला लोकसभा चुनाव देश के भविष्य को अत्यधिक प्रभावित व निर्धारित भी करेगा । आज देश का नागरिक राजनैतिक भ्रष्टाचार से दुखी है । अतः इससे निजात पाने के लिए कुछ निर्णायक तथा कठोर कदम आज की प्राथमिक आवश्यकता है । यह भूमिका कांग्रेस दल के लिए सर्वाधिक महत्व की है । देश का नागरिक राजनैतिक अस्थिरता तथा उसके दुष्परिणामों से बचने के लिए देश की बागडोर पुनः कांग्रेस पार्टी को देना चाहेगा, बशर्ते कि भ्रष्टाचार रूपी भूत

जिसने कांग्रेसदल को लंबे समय तक शासन करने के कारण अत्यधिक ग्रसित किया है, अपने आपको अविलंब दूर करना होगा। इस मुद्दे को नकराने के लिए प्रभावी शल्य चिकित्सा आवश्यक है, रास्ता चुनोतिपूर्ण, कठिन, दुर्गम तथा जोखीम भरा है, किंतु सफलता के अवसरों से भरपूर। इसे नकराने के लिए पूर्व में इसी दल द्वारा कार्यान्वित कामराज योजना या श्री संजीवा रेड्डी द्वारा प्रयोजित 10 वर्षीय नीयम के समकक्ष योजना को मूर्तरूप देना होगा। इसके माध्यम से लम्बे समय तक सत्ता सुख भोग रहे भूमित तथा भ्रष्ट नेताओं को विश्राम प्रधानमंत्री रूपी चिकित्सक के माध्यम से देना होगी। काम कठिन नहीं तो आसान भी नहीं है। इस प्रकार की योजना से नेतृत्व का आभामंडल राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय क्षितीज पर बढ़ेगा। इसका लाभ स्वयंम उन्हें तथा उनके दल को अकल्पनीय रूप से मिलेगा। वैसे तो देश का वर्तमान नेतृत्व अनुभवी तथा सुझबुझ से परिपूर्ण है, किंतु यह कार्य वो अकेले नहीं कर सकेंगे, उनको सहयोग चाहिए ऐसे व्यक्ति का जो कांग्रेस के अंदर न सही किंतु कांग्रेस के लिए जन आकर्षण का केन्द्र है, सोनिया गांधी के अलावा और कोई नहीं हो सकता। राष्ट्रीयता के प्रश्न पर किसी भी भारतीय के आगे उनका व्यक्तित्व बौना नहीं है, वो देश के लिए दूसरी एनी बेसन्ट होगी। प्रधानमंत्री तथा उनके बीच संबंध भी मधूर है। प्रधानमंत्री की समय-समय पर उनसे भेट भी होती है, सलाह तथा विचार-विमर्श भी होता ही होगा। वैसे श्रीमती गांधी राजीवजी की हत्या के बाद एकांकी रह रही हैं, किंतु जैसे ही किसी सामाजिक रचनात्मक या अन्य प्रकार के कार्यक्रमों में सम्मिलित होती हैं, उनमें राजनीति पढ़ी जाने लगती है। ऐसा वातावरण पैदा करने वाले तत्व 10 जनपथ तथा 7, रेसकोर्स रोड में दूरी चाहते हैं, ताकि उनके स्वार्थ सिद्ध होते रहें। खेद है कि यह कैसी अपेक्षा है कि सोनियाजी किसी भी कार्यक्रम में सम्मिलित न हों। मान लिया जाए की वो राजनीति में सक्रिय होगी तो इसमें आपत्ति क्या है ?

इसका तो स्वागत ही होगा, प्रत्येक भारतीय आज इस बात से परिचित है कि श्रीमती सोनिया गांधी को आज देश में तथा विदेश में अत्याधिक सम्मान से देखा जाता है। उनके राजनीति प्रवेश से देश तथा कांग्रेस पार्टी को लाभ भी होगा। उनके माध्यम से कांग्रेस छोड़े हुए व्यक्ति तथा ऐसे व्यक्ति जो कांग्रेस के समकक्ष नीतियों में विश्वास करते हैं, के कांग्रेस पुनः प्रवेश का रास्ता प्रशस्त होगा। इस श्रेणी में उत्तरप्रदेश के मुलायमसिंह, बिहार के लालूप्रसाद यादव, उड़ीसा के बिजु पटनायक तथा कर्नाटक एवं आंध्रप्रदेश के कुछ नेतागण हैं। उत्तरप्रदेश के कांग्रेस अध्यक्ष भी नारायणदत्त तिवारी भी उनके निर्देशन में काम करेंगे और उत्तरप्रदेश की गुटीय राजनीति कम होगी। देश की राजनीतिक अस्थिर स्थिति स्थिरता में बदल जाएगी। इसका स्वागत स्वयं प्रधानमंत्री भी करेंगे जो कि देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रयासरत् तथा समर्पित है।

आज के परिवेश में नेतृत्व के नजरीये में परिवर्तन की आवश्यकता है। देश विकास के कगार पर है। विकास के राष्ट्रीय कार्य के लिए पार्टी में सीमित दायरे के बाहर नजर दौड़ाना होगी। पार्टी से बाहर, इमानदार, अनुभवी विशेषज्ञों का उपयोग आज भी आवश्यक है। हमारे सामने उदाहरण है श्री सी.डी. देशमुख, शणमुखम चेट्टी, कृष्ण मेनन तथा वर्तमान में श्री मनमोहनसिंहजी का। इसके अलावा राज्यपाल पद के लिए भी पी.सी. अलेक्जेंडर, कृष्णराव, ओ.एन. श्रीवास्तव, पी.व्ही. दवे तथा स्व. सुरेन्द्रनाथ ने अच्छे प्रशासकिय कार्य किए हैं, राज्यपाल पद के लिए 1983 में गठित सरकारिया कमीशन में अपनी 1500 प्रष्ठिय रिपोर्ट पांच साल के अथक परिश्रम के बाद प्रेषित प्रतिवेदन में ऐसी ही सिफारिश की थी। इस पर अभी सरकार का संपूर्ण ध्यान आकर्षित होना बाकी है।

रोज-रोज की आयोजित रेलियां, प्रदर्शन तथा बंद से भी सामान्य जीवन, व्यापार, व्यवसाय अस्तव्यस्त होता है- हिंसा भी हो जाती है और

वर्च भी- यह भी जन आक्रोश का कारण है। ऐसे आयोजन से राजनीतिक विश्वास को प्रभावित नहीं किया जा सकता। ऐसे आयोजन सत्ताप्राप्ति के भौंडे प्रयासों की श्रेणी में आते हैं। इनसे न तो लोकप्रियता होती है न ही महत्वपूर्ण पद प्राप्त होने के अवसरों में इजाफा होता है। इस प्रकार के आयोजनों से राजनीतिक दलों के भविष्य भी विपरीत दिशा की ओर मुड़ते हैं। इन पर भी अविलम्ब विराम की आवश्यकता है- देखना है इन पुनित कार्यों में कौन अग्रणी होता है।

सारांश यह है कि देश के वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य में जबकि समस्त विरोधी दलों के 1989 की तरह एकजुट होने की संभावना नहीं है और भारतीय जनता पार्टी का राम मंदिर का नारा लगभग निष्प्राण हो गया है कांग्रेस को अपना पुराना वर्चस्व पुनर्स्थापित करने का अच्छा अवसर है परंतु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे अपनी छवि सुधारने के भागीरथ प्रयत्न करना होंगे। इस संबंध में निम्नलिखित उपाय सुझाए जाते हैं-

1. कामराज सरीखी योजना अपनाना चाहिए ताकि भ्रष्ट नेताओं से मुक्तकारा मिल सके। इसी संदर्भ में संजीवा रेड्डी का एक समय का सुझाव की जिन व्यक्तियों की उम्र 70 से अधिक हो चुकी है अथवा जिन्होंने किसी एक पद पर 10 वर्ष से अधिक कार्य किया है को राजनैतिक सन्यास ले लेना चाहिए।

2. पार्टी में जिन अपराधी तत्वों ने घुसपैठ कर ली है, उन्हें या तो निकाल बाहर करना चाहिए या उन्हें ऐसा निष्प्रभावी बनाया जाए कि वे पार्टी में कोई भूमिका नहीं निभा सके।

3. श्रीमती सोनिया गांधी को पार्टी में सक्रिय भाग लेने के लिए तैयार करना चाहिए। अन्य पुराने कांग्रेसी जो वर्तमान में किन्हीं कारणों से अन्य दलों से बेमन से जुड़े हुए हैं उन्हें कांग्रेस में पुनः लाने के प्रयास करना

चाहिए। साथ ही देश के ख्यातिनाम निर्दलीय बुद्धिजीवियों की प्रतिभाओं का भी लाभ उठाना चाहिए।

4. चुनाव प्रक्रिया में स्वच्छता लाने के लिए निष्ठापूर्वक कार्यवाही करना चाहिए।

5. अल्पसंख्यकों और दलित वर्गों के उत्थान के लिए निसंदेह हर प्रयत्न करना चाहिए परंतु इससे आम जनता में यह अहसास न हो कि वोट के लिए तुष्टिकरण की नीति अपनाई जा रही है।

भारत रत्न पुरस्कार, अविवादित रहने दीजिए

डॉ. एस.सी. नाहटा

देश के सैनिक-असैनिक वर्ग के व्यक्तियों को सम्मानित किए जाने की परंपरा नई नहीं है। स्वतंत्रता के पूर्व राजा-महाराजा भी अपने-अपने तर से विशिष्ट व्यक्तियों को सम्मानित करते थे। वर्तमान में भी यह परंपरा चलित है। अनेक प्रकार के पुरस्कार दिए जाते हैं, जिनमें भारत रत्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जो कि संदर्भित क्षेत्र में की गई राष्ट्रीय सेवा को मान्यता देने हेतु दिया जाता है। इस पुरस्कार की स्थापना 2 जनवरी 1954 को प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने की थी। इस पुरस्कार हेतु भारतीय नागरिक होने की बाध्यता नहीं थी। संभवतया इस कारण से पुरस्कार को मरणोपरांत देने की व्यवस्था नहीं थी। संभवतया इस कारण से महात्मा गांधी को यह पुरस्कार नहीं दिया जा सका। इसमें 1955 में यह परिवर्तन कर मरणोपरांत देने की व्यवस्था की गई और 10 विशिष्ट व्यक्तियों को यह पुरस्कार मरणोपरांत दिया जा चुका है। आज तक 40 व्यक्ति यह पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। सर्वप्रथम प्रसिद्ध दार्शनिक द्वितीय राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन को गौरवान्वित किया गया था। अभारतीयों में Naturalized भारतीय मदर टेरेसा नाम से लोकप्रिय (Agnes Gonxha Bojaxhin) 1980, यान अब्दुल गफ्फार खान (पाकिस्तान) 1987 तथा नेलसन मंडेला (दक्षिण अफ्रीका) 1990 यह सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। दुर्भाग्य है कि यह भ्रमलंकरण भी अविवादित नहीं रह पाया है, क्योंकि इसके बारे में संविधान में कोई व्यवस्था नहीं है - अतः वाद का कारण बन जाता है और 13 जुलाई 1977 से 26 जनवरी 1980 की अवधि में ये राष्ट्रीय पुरस्कार स्थगित रखना पड़े थे। इसी के परिणामस्वरूप मरणोपरांत की श्रेणी में (भाषचंद्र बोस को दिए गए इस सम्मान को 1992 में वापिस लेना पड़ा था। इस सम्मान हेतु पीपल के आकार का स्वर्ण में बना पदक जिसका

व्यास 35 मिमि. होता है। सामने उपरी भाग में भारत रत्न तथा निचले भाग में फूलों का हार चित्रित होता है तथा पीछे आदर्श वाक्य एवं प्रतीक (Emblem) होता है, जिसे रिबिन द्वारा सम्मानित व्यक्ति को पहनाया जाता है। यह जानना सामयिक होगा कि भारत रत्न के अतिरिक्त असैनिक क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय जगत हेतु गांधी शांति पुरस्कार तथा राष्ट्रीय स्तर पर पद्म विभूषण, पद्म भूषण तथा पद्म श्री पुरस्कार उपलब्ध है। क्षेत्रानुसार साहित्य, संगीत तथा ललित कला के क्षेत्र में फेलोशिप तथा पुरस्कार दिए जाते हैं। उसी प्रकार सिनेमा के क्षेत्र में प्रसिद्ध दादा साहेब फालके तथा राष्ट्रीय पुरस्कार, खेल के क्षेत्र में राजीव गांधी खेल रत्न, अर्जुन तथा द्रोणाचार्य पुरस्कार दिए जाते हैं। देश की रक्षा करने वाली सेना हेतु युद्ध तथा शांति के समय क्रमशः परमवीर चक्र, महावीर चक्र, वीरचक्र एवं अशोक चक्र, कीर्ति चक्र तथा शौर्य चक्र पुरस्कारों का प्रावधान है। विशिष्ट सेवाओं हेतु सेना, नौसेना, वायु सेना तथा विशिष्ट सेवा पदक देकर सेना के जवान तथा अधिकारियों को सम्मानित तथा प्रोत्साहित किया जाता है।

इसका दूसरा पहलू भी है कि पुरस्कार पाने वालों की कतारें लंबी हो गई हैं और येन-केन प्रकारेण पुरस्कार पाना चाहते हैं। प्रतिस्पर्धा कड़ी है। किसी भी तरह होड़ में सफल होने के प्रयास किए जाते हैं, कुछ सफल, कुछ असफल। इस वातावरण में भारत रत्न जैसा पुरस्कार भी विवादित होता रहा है। न्यायालय हस्तक्षेप करने को बाध्य हो जाता है। दुर्भाग्य कि वर्तमान में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नाम के प्रस्तुतिकरण के तत्काल बाद अनेक नाम प्रस्तावित हो गए, इसका तात्पर्य कदापि नहीं कि अन्य नाम योग्यता की श्रेणी में नहीं आते हैं। इस हेतु कोई मापदंड निर्धारित नहीं है। सर्वविदित है कि श्री वाजपेयी अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय तथा आकर्षक का केन्द्र होने के अतिरिक्त कुशल प्रशासक, श्रेष्ठ राजनेता तथा मानवीय दृष्टिकोण वाले प्रखर वक्ता के रूप में अपनी अमिट छाप

छोड़ चुके हैं। उचित होता कि अन्य राजनेता भी उनके नाम का समर्थन कर इस पुरस्कार की गरिमा बढ़ाने में योगदान देकर श्री वाजपेयी के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए आगे आते-ऐसा अभी भी हो सकता है तथा अन्य प्रस्तावित व्यक्तियों को भविष्य में योग्यता के आधार पर भारत रत्न पुरस्कार देने की पेशकश की जा सकती है। ऐसा करने से इस पुरस्कार को विवादित होने से बचाया जा सकता है, जो हमारे राष्ट्र की गरिमा के अनुरूप होगा।

महिला जगत-प्रगति की ओर

डॉ. एम.सी. नाहटा

महिलाओं को समाज में उचित सम्मानजनक स्थान देने हेतु समय-समय पर अनेक स्तरों पर प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों में प्रदर्शन तथा आंदोलन के अतिरिक्त प्रस्ताव भी पारित किए गए हैं, कानूनी तथा संवैधानिक व्यवस्थाएं भी की गई हैं, किंतु परिवर्तन की गति धीमी होने के परिणामस्वरूप अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो पाया है।

भारत वर्ष की 120 करोड़ जनसंख्या का 46 प्रतिशत भाग महिलाओं का है। इतनी बड़ी संख्या में शिक्षा की कमी, आर्थिक तथा शारीरिक रूप से कमजोर तथा काम के अवसर प्राप्त न होने के कारण देश का विकास कैसे संभव हो सकता है—यह विचारणीय प्रश्न हमारे सामने है और इसका उत्तर खोजना प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है।

समाज में महिलाओं को उचित स्थान दिलाने हेतु प्रथम प्रयास अमेरिका में 8 मार्च 1857 को हुआ था, जब न्यूयार्क शहर में वस्त्र श्रमिकों में कार्य प्रणाली में सुधार हेतु प्रदर्शन किया था। तत्पश्चात् 1910 में द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सोशलिस्ट पार्टी सम्मेलन के समय जर्मनी की समाजवादी क्लेरा झटकीन (Clara Zaitkin) ने प्रतिवर्ष 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मान्यता देने का प्रस्ताव रखा था। चीन में इस प्रकार का आयोजन 1924 से आरंभ हुआ है।

भारत वर्ष में भी महिला प्रगति हेतु संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 15 के माध्यम से विधि के समक्ष समता का अधिकार प्रदान कर धर्म, मूलवंश जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद को वर्जित माना है। संविधान के उपरोक्त सिद्धांत विचार का समावेश।

सार्वभौमिक मानवाधिकार की समकालीन घोषणा का परिणाम भी माना जा सकता है। संविधान के इन्हीं प्रावधानों से स्त्री तथा पुरुषों के बीच किसी भी प्रकार के भेदभाव को अमान्य कर उन्हें शासकीय सेवा में पुरुषों के समान अवसर का अधिकार प्रदान किया है। उच्चतम न्यायालय ने भी समय-समय पर उचित दिशा निर्देश दिए हैं। सरकार ने महिला वर्ग की सहायता हेतु कानून भी बनाए हैं, उदाहरणार्थ— “For Monitoring increasing Projection of sex and Violence by the Indian Film Industry” अपहरण पुलिस गिरफ्तारी संबंधी नियम, 1973 में भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत बलात्कार जैसी घटनाओं के प्रकाशन पर नियंत्रण, 1976 में आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन, 1986 महिलाओं को अशिष्ट रूप, अभद्र रूप से दिखाने हेतु रोकथाम इत्यादि। भारत सरकार ने वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया था।

इतने प्रयासों के बावजूद महिला प्रगति का प्रतिशत अपेक्षा के अनुरूप नहीं है। परिणाम स्वरूप शासकीय तथा अशासकीय संस्थाओं में महिलाओं को पर्याप्त स्थान, पद प्राप्त नहीं हो पाए हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा में लगभग 8 प्रतिशत तथा पुलिस सेवा में 1 प्रतिशत स्थान प्राप्त हो सके हैं। राजनीतिक क्षेत्र का भी यही हाल है। 1994 में लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या 44 थी, 1989 में 27 और उसके बाद के सदन में 36 महिला सांसद थी। लोकसभा की तुलना में राज्यसभा में महिला सदस्यों की संख्या अधिक रही है।

आज समाज के सामने गंभीर प्रश्न है कि इस समस्या का समाधान कैसे किया जाए। संदर्भित समस्या के निराकरण हेतु समाज के प्रभावी वर्ग को आगे आना पड़ेगा, इस श्रेणी में रोटरी अंतर्राष्ट्रीय एक महत्वपूर्ण सेवाभावी संगठन है, जिसके सदस्य समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, वो इस समस्या के निराकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। रोटरी संगठन

द्वितीय शताब्दि के प्रथम वर्ष में है, इस संगठन को ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा रोजगार के लिए प्रशिक्षण हेतु एक विशेष कार्यक्रम बनाना चाहिए, इस कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं का बौद्धिक विकास हो सकेगा, आर्थिक कठिनाइयां दूर होगी और वर्तमान में उपेक्षित महिला वर्ग भविष्य में परिवार, समाज, देश तथा मानव जाति के विकास में अग्रणी भूमिका निभा सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है जो रोटरी का उद्देश्य भी है, आवश्यकता है, रचनात्मक पहल की जिसकी अभिलाषा है।

लिंग आधारित असमानता समाप्ति आवश्यक

महिलाओं की स्थिति से आप किसी भी देश के बारे में बता सकते हैं।

— जवाहरलाल नेहरू

मुझे बताया गया कि जब भारतीय महिला समानता के बारे में नहीं सोचती— मैं कहना चाहूंगा कि अगर वो नहीं सोचती तो उन्हें वास्तविक अवसर देने से ऐसा सोच सकती है।

— अमरत्या सेन

विश्व के प्रत्येक क्षेत्र के महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने समय-समय पर पुरुष और महिलाओं में असमानता समाप्त करने की पैरवी की है। जवाहरलाल नेहरू तथा अमरत्या सेन के अतिरिक्त वंदना शिवा तथा कोफी अन्नान ने भी इस विषय पर महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। वर्तमान की महत्ती आवश्यकता है कि इस विषय पर ठोस कदम उठाए जाएं ताकि देश के आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति में अधिक सुधार हो सके। प्रति वर्ष 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में देखा जाता है। यह एक अवसर प्रदान करता है जब हम वर्तमान स्थिति का आंकलन कर भविष्य के रूप में योजना बना सकते हैं। अतः आवश्यक है कि हम वर्तमान परिदृश्य पर नजर दौड़ाएँ। यह जानना सामयिक होगा कि जब महात्मा गांधी ने भारतीय नेतृत्व की कमान संभाली थी तब भारतीय महिला की औसत आयु 27 वर्ष थी एवं केवल दो प्रतिशत महिलाएं शिक्षित थीं। जो भी परिवर्तन हम आज देख रहे हैं उसकी आधारशिला 90 वर्ष पूर्व रखी गई थी। यह भी जानने लायक तथ्य है कि 1950 में स्वीकार किया गया भारतीय संविधान महिला तथा पुरुषों को समान अधिकार देता है। यह जानकर आश्चर्य हो सकता कि अत्यधिक विकसित राष्ट्र अमेरिका तथा ब्रिटेन में 75 वर्ष पूर्व मताधिकार का अधिकार महिलाओं को नहीं था।

वर्तमान में भारतीय जनसंख्या 120 करोड़ के लगभग है, जिसमें से 12 करोड़ महिलाएं गरीबी रेखा के नीचे हैं। भारत की आबादी विश्व की जनसंख्या का 16 प्रतिशत है, जबकि पूरे विश्व की भूमि की 2.4 प्रतिशत ही भारत के पास है। भारतीय आबादी का 70 प्रतिशत भूमि आधारित कार्यों पर निर्भर है। आबादी के अनुपात में अपर्याप्त भूमि की उपलब्धता अनेक विषमताओं का कारण है। यह स्थिति और भी अधिक विषम हो जाती है, जब जनसंख्या का बड़ा भाग भूमि पर निर्भर है। भारत उन गिने-चुने देशों में है जहां पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक है। इस अंतर में वृद्धि भी हुई है। भारत में प्रतिवर्ष मरने वाली युवा महिलाओं की संख्या इसी वर्ग के पुरुषों से 3 लाख अधिक है।

महिला तथा पुरुषों में असमानता के अंतर को पाटना देश का प्रत्येक नागरिक चाहता है। श्री मणिशंकर अय्यर के अनुसार The highest National Priority must be unleashing of women power in goverance. That is single most important Source of Societal energy that we have corked for half a century.

वैसे तो महिलाओं की वर्तमान विषम स्थिति के अनेक क्षेत्र हैं किन्तु कुपोषण, शिक्षा की कमी, काम का अधिक बोझ, उनके साथ हो रही हिंसा तथा दुर्व्यवहार, अधिकारों तथा रोजगार के अवसरों की अपर्याप्तता तथा अधिक मातृ मृत्यु दर प्रमुख है।

पूरा विश्व इस बात को स्वीकार करता है कि महिला तथा पुरुषों में असमानता समाप्त होना चाहिए। इस दिशा में राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रयास किए जा रहे हैं। इन प्रयासों की सफलता से ही विकास तथा असमानता समाप्ति संभव है।

प्राथमिकता के आधार पर शिक्षा, काम के अवसर तथा राजनीति के क्षेत्र में पर्याप्त अवसर आवश्यक हैं। इससे न केवल जीवन प्रणाली उच्च

स्तरीय तथा क्षमतावान होगी वरन् आर्थिक विकास और बेहतर हेल्थकेयर संभव है जिसका लाभ दशकों तक भविष्य की पीढ़ियों को मिलेगा। नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा था— मुझे अच्छी माता दीजिये मैं आपको अच्छा देश दूंगा। इस असमानता की समाप्ति हेतु विभिन्न देशों में आपसी समन्वय की आवश्यकता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की संपूर्ण भागीदारी से ही विकासशील देशों का विकसित देशों की श्रेणी में आना संभव है।

लिंग आधारित असमानता की समाप्ति के बगैर गरीबी उन्मूलन संभव नहीं है। इसे हेतु प्रत्येक स्तर पर प्रयास करना पड़ेगा। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सन् 2000 में आयोजित सम्मेलन में विश्व के नेताओं ने लिंग आधारित असमानता समाप्त करने तथा महिलाओं को अधिक समृद्ध बनाने का निर्णय लिया। लिंग आधारित समानता लाने हेतु पिछले 20 वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान अधिक आकर्षित हुआ है। किए गए प्रयासों के परिणाम स्वरूप 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में महिलाओं को नौकरी में अधिक स्थान, अनेक देशों में दोषयुक्त कानूनों में परिवर्तन, संपत्ति पर अधिकार तथा राजनीति में अधिक अवसर मिले। इसी अंतर्राष्ट्रीय संगठन ने एक अन्य सम्मेलन में भेदभाव समाप्ति तथा महिलाओं को अधिकार देने हेतु कदम भी उठाए।

विश्व आर्थिक फोरम के अनुसार नोरडिक देशों के अतिरिक्त, न्यूजीलैंड केनेडा, ब्रिटेन तथा ऑस्ट्रेलिया में लिंग आधारित असमानता दूर करने हेतु महत्वपूर्ण कार्य किए गए किन्तु अभी काफी कुछ होना शेष है। खेद है कि भारत, पाकिस्तान, कोरिया, जार्डन, टर्की, इजिप्त जैसे देश अधिक कुछ नहीं कर पाये। आश्चर्य की बात है कि इजिप्त में बलात्कार जैसे जघन्य अपराध के लिए भी आरोपियों को दण्ड नहीं मिल पाता है।

आज भी अरब देशों में चरमपंथी राजनीति के कारण धार्मिक आधार पर महिलाओं को राजनीति में जाने से रोका जाता है। अमेरिका जैसे विकसित देश सहित अनेक देशों में महिलाएं आज भी हिंसा की शिकार होती हैं।

एक अन्य प्रयास के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 2000 में लिए गए निर्णय के अनुसार 2005 तक प्राथमरी तथा सेकेण्डरी एवं 2015 तक शिक्षा से संपूर्ण क्षेत्र में लिंग आधारित असमानता समाप्त करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया है— परिणामों की प्रतिक्षा है। वर्तमान में भारत में महिला वर्ग की शिक्षा का प्रतिशत 39 है और पुरुषों का 64। हमारे सामने ईरान का उज्ज्वल उदाहरण है जहां शिक्षित महिलाओं का प्रतिशत 98 है और विश्व विद्यालयों में छात्राओं का प्रतिशत 65 है। सामाजिक क्षेत्र में भी महिला वर्ग अग्रिम पंक्ति में है।

यह सत्य है कि पिछले वर्षों में महिला वर्ग के रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाओं की शिक्षा के प्रतिशत में उत्साहवर्धक प्रगति हुई है जिसका श्रेय इस वर्ग की कटिबद्धता को ही जाता है, किन्तु हम लक्ष्य से दूर हैं। महिलाओं के शिक्षित होने से लिंग आधारित असमानता समाप्त करने को कोई रोक नहीं सकता है। उनका विशेषकर युवा महिला वर्ग का शिक्षित होना ही गरीबी उन्मूलन तथा श्रेष्ठ जीवनशैली का मूलमंत्र है। लक्ष्य प्राप्ति हेतु राजनीतिक इच्छाशक्ति आवश्यक है। वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य इसमें अवरोध है। अतः हमारे प्रयास संयुक्त रूप से शासकीय तथा अशासकीय—सामाजिक स्तर से किए जाना आवश्यक है। इस हेतु 5 सूत्रीय प्रयास हमें लक्ष्य की ओर शीघ्रता से ले जा सकते हैं:

1. महिलाओं हेतु उपलब्ध कानून का पालन।

2. शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएं।

3. रोजगार हेतु अवसरों में वृद्धि।

4. पुरुषों की रूढ़ीबद्ध धारणाओं में परिवर्तन।

5. सांस्कृतिक तथा परंपरावादी रिवाजों की समाप्ति।

आईये आज के महत्वपूर्ण दिन हम सब संगठित होकर एक समृद्ध भारत के लिए महिला/पुरुषों में समानता लाने हेतु प्रयास करने का संकल्प लें और महिला दिवस को सार्थक बनावें, यह मेरा निवेदन है।

कन्या भ्रूण हत्या – समस्या की विकरालता – निराकरण क्या संभव है

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में सर्वाधिक चर्चित विषयों में कन्या भ्रूण हत्या अग्रिम पंक्ति में है। समय-समय पर प्रकाशित खबरों से समाज आंदोलित, भयभीत तथा चिंतित तो होता है किन्तु परिणामजनक कार्यवाही के अभाव में समस्या यथावत् है। भारत के राष्ट्रपतिजी ने समस्या की भयानकता को दृष्टिगत रखते हुए 26 जनवरी 2002 के भाषण में महिलाओं की शौचनीय स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि (उनके लिए कोई स्थान यहां तक की माँ की कोख भी सुरक्षित नहीं है। जन्म से पहले ही उन्हें मार दिया जाता है।) इसी तारतम्य में माननीय उच्चतम न्यायालय ने जन्म से पूर्व निदान तकनीक (नियमन व रोकथाम) अधिनियम 1994 के संदर्भ में कठोर रुख अपनाते हुए 29 जनवरी, 2002 को पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्रप्रदेश, केरल, राजस्थान और पश्चिम बंगाल को तलब कर पूछा कि उनके राज्यों में कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम हेतु क्या कदम उठाए हैं? इस मामले में राज्यों की उदासीनता से आंदोलित होकर एक स्वयंसेवी संगठन द्वारा दायर जनहित याचिका पर दिए गए निर्देश में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अपंजीकृत अल्ट्रासाउण्ड मशीनों को जब्त कर सील कर दिया जाए। यहां तक कि पांच बहुराष्ट्रीय कंपनियों से पिछले पांच वर्षों में उपरोक्त मशीन खरीदने वाले व्यक्तियों तथा निजी चिकित्सालयों/क्लिनिकों की सूची भी मांगी था ताकि राज्य सरकारें यह तहकीकात कर सके कि खरीददारों ने पंजीयन कराया था या नहीं एवं अपंजीकृत क्लिनिकों की अल्ट्रासाउण्ड मशीनें जब्त कर सकें, किन्तु पंजीकृत क्लिनिकों में अजन्मे शिशु की जन्मजात विसंगति के निदान व रोकथाम के लिए यह सुविधा जारी रहेगी। इस बिन्दु

का लाभ उठाते हुए चिकित्सक जन्मजात विषमता का पता लगाने के नाम पर लिंग भी पता लगाता है— जिसमें संदर्भित महिला की भी सहमति होती है। इसे रोक पाना संभव नहीं है। 1994 में बने इस कानून से सकारात्मक परिणाम नहीं मिले हैं। एक अन्य समाचार के अनुसार एक अमेरिकी कंपनी ने जेन सिलेवट नामक उपकरण बनाया है जिससे गर्भधारण के पूर्व ही शिशु का लिंग निर्धारित हो सकता है। यदि यह सत्य है तो हमारी चिंता और बढ़ेगी। साथ ही 1994 के जन्म पूर्व निदान तकनीक कानून में कमियों के कारण हम उद्देश्यों की प्राप्ति से बहुत दूर है।

सामयिक होगा कि भ्रूण हत्या के विभिन्न बिन्दुओं के संबंध में उपलब्ध आंकड़ों पर भी दृष्टि डाले ताकि समस्या की भयानकता से अधिक अवगत हो सकेंगे तथा कारगर उपाय अधिक सक्रियता से करने का प्रयास करेंगे।

भारत वर्ष में प्रतिवर्ष 25 लाख गर्भपात होते हैं। जिनमें 20 लाख अवैधानिक हैं। एक अन्य रपट के अनुसार गर्भपात की संख्या अन्य देशों की तुलना में भारत वर्ष में सर्वाधिक होकर 11.2 मिलियन है और गर्भपात से प्रतिवर्ष मरने वाली महिलाओं की संख्या 20000 है। प्रति 2 जन्म लेने वाले बच्चों के साथ एक का गर्भपात होता है। देश में प्रमुख कारण है गर्भवती महिला का कमजोर स्वास्थ्य तथा परिवार द्वारा उपेक्षा। आश्चर्य की बात है कि देश के 1563 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा 21461 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में से केवल 1800 पर ही चिकित्सीय आधार पर गर्भपात की व्यवस्था उपलब्ध है।

फलस्वरूप अलग-अलग राज्यों में लड़के-लड़कियों का अनुपात भी विस्मयकारी है— उदाहरणार्थ राज्यस्थान में 1000 लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या 600 है वहीं केरल जैसे शिक्षित प्रदेश में 1000 लड़कों

की तुलना में 1050 लड़कियां हैं। जबकि पंजाब तथा हरियाणा जैसे समृद्ध प्रदेश के 4 जिलों में तथा मध्यप्रदेश एवं तमिलनाडू के एक-एक जिले में लड़के-लड़कियों का अनुपात 1000 : 869 है। स्मरण रहे राष्ट्रीय स्तर पर यह अनुपात 1000 : 929 है।

भ्रूण हत्या के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं तथा क्रियाओं का सहारा लिया जाता है-कई तो ऐसे उपाय हैं जिन्हें अपराधी प्रवृत्ति का द्योतक माना जा सकता है। चिकित्सक भ्रूण समाप्त करने के लिए डी. एण्ड सी, डी.एम.ई. इंजेक्शन, सलाइन पाइजनिंग, सक्शन विधि, सी सेक्शन तथा गर्भपात गोलियों के उपयोग जैसी प्रक्रिया अपनाते हैं।

हमारे सामने लाख टके का सवाल है कि समस्या से निजात पाने के लिए क्या किया जाए। इस बिन्दु पर विचार करने के पूर्व उचित होगा कि हम इस समस्या के मूल कारणों को भी उजागर करें कि प्रमुख रूप से लड़के की चाहत, शिक्षा की कमी तथा दहेज इसके लिए दोषी है। यह स्पष्ट हो चुका है कि सरकार तथा न्यायालय भी अकेले वर्तमान सामाजिक तथा भौतिकवादी वातावरण में समाज में परिवर्तन नहीं ला सकेंगे। अतः क्रांतिकारी उपायों पर विचार आवश्यक है जो कि चार स्तरीय होने चाहिए—

01. शासकीय/सरकार जन्य/कानूनी

02. सामाजिक-संगठन स्तर पर

03. धार्मिक मान्यताएं आधारित

04. व्यक्तिगत

शासकीय स्तर पर उपायों के अंतर्गत —

01. गर्भपात केवल शासकीय चिकित्सालयों में किया जाना कानूनी रूप से अनिवार्य बनाया जावे तथा गर्भपात के लिए आवश्यक व्यवस्था भी तत्काल प्रभाव से की जावे।

02. लड़कियों के लिए व्यावसायिक आधारित निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जावे तथा इसे अनिवार्य भी बनाया जावे, ताकि लड़कियां आत्मनिर्भर बन सकें।

03. माता-पिता की संपत्ति के बटवारे का पंजीकरण करने के लिए कानून बनाया जावे। इस व्यवस्था से लड़की को भी पैतृक संपत्ति में से अचित भाग मिलना प्रारंभ हो जाएगा।

04. वर्तमान कानून के अंतर्गत हिन्दू अविभाजित परिवार बनाने के लिए लड़का होने को आवश्यक माना गया है। इस कानून में संशोधन कर इस व्यवस्था को समाप्त किया जावे।

सामाजिक स्तर पर भ्रूण हत्या के विरोध में कार्यरत संगठन वर्तमान में अपने कार्यों को मीडिया तक सीमित कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान लेते हैं। इससे जागरूकता तो अवश्य होती है किन्तु अधिक कुछ नहीं। अतः संगठनों को विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्यक्ष रूप से जाना चाहिए तथा कन्या भ्रूण हत्या के विरोध में कार्य करना चाहिए।

पुत्र के बगैर मोक्ष प्राप्त नहीं होता है— इस धार्मिक मान्यता तथा विश्वास को बदलने के लिए धर्मगुरुओं का सहयोग लेना चाहिए।

व्यक्तिगत रूप से जब लड़की शिक्षित तथा जीविका कमाने में सक्षम होगी— स्वाभाविक रूप से मानसिकता बदलेगी और यह कृत्य समाप्ति की ओर अग्रसर हो सकेगा।

अतः हमें शासकीय, मानवीय, सामाजिक तथा पारिवारिक दृश्य को बदलने के लिए कोरे नारे नहीं वरन् रचनात्मक तथा प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने की प्रतिबद्धता दिखाना होगी। ऐसा करने से परिदृश्य अवश्य बदल सकेगा। ऐसा मेरा विश्वास है।

जनसंख्या वृद्धि नहीं संतुलन की आवश्यकता है

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रमुख द्वारा जनसंख्या के संबंध में दिए गए वक्तव्य ने पुनः पूरे राष्ट्र को आंदोलित कर सोचने को बाध्य किया है। उनके द्वारा दिए गए वक्तव्य पर निष्पक्ष रूप से विचार करना चाहिए। संदर्भित वक्तव्य का केन्द्र बिंदु क्या है ? क्या सचमुच में उन्होंने जनसंख्या वृद्धि की पैरवी की है गंभीरता से विचारोपरांत एक बिंदु उजागर होता है कि धर्म, वर्ग, जाति आधारित जनसंख्या का संतुलन बिगड़ रहा है। जो समाज तथा देश के लिए घातक है। अतः देश को एक अवसर पुनः प्राप्त हुआ है, जिसके माध्यम से पुराने अति आवश्यक विषय पर जनता तथा सरकार का ध्यान आकर्षित हो सके।

समग्र रूप से परीक्षण तथा तथ्य एवं आंकड़े यही दर्शाते हैं कि जनसंख्या वृद्धि की समस्या विश्वव्यापी है किन्तु विकसित तथा विकासशील देशों में समस्या के रूप में अंतर है। विश्वव्यापी समस्या मानकर अनेकों बार अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विचार भी हुआ है। 1994 में आयोजित सम्मेलन में 180 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लेकर गहन विचार विमर्श के पश्चात अनेक बिन्दु मानव समाज के सामने प्रस्तुत किए। इस सम्मेलन में महिला संबंधी विषयों की अधिक किन्तु आवश्यक पैरवी की गई। प्रमुख रूप से महिलाओं के अधिकार, स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन की आवश्यकता जो सीमित मात्रा में मिल पाती है ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया।

यह सर्वविदित स्थापित तथ्य है कि जनसंख्या की स्थिरता विकास के लिए अति आवश्यक है, क्योंकि भारी जनसंख्या वृद्धि से आर्थिक तथा सामाजिक विकास, लोक सेवा के लिए उपलब्ध सुविधाएं, रोजगार के अवसर तथा पर्यावरण पर बोझ के कारण विकास का मार्ग अवरुद्ध होता

। विभिन्न देशों की लोकतांत्रिक व्यवस्था, शांति, कानून का राज्य स्थापित करने में असफलता मिलती है और स्थिरता, समृद्धता तथा स्वतंत्रता के रास्ते में अवरोध उत्पन्न होते हैं।

विश्व की आबादी सन् 1800 में 100 करोड़ थी जो बढ़कर 1930 में 200, 1960 में 300, 1987 में 500 और वर्तमान में 600 करोड़ को पार कर गई है। 1960 का समय विकासशील देशों के लिए विस्मयकारी था जब जनसंख्या वृद्धि का प्रतिशत प्रतिवर्ष 2.5 हो गया। इस समय विकासशील देशों में औसतन एक महिला 6 बच्चों की माँ होती थी। विश्व की जनसंख्या का 70 प्रतिशत भाग इन्हीं देशों में रहता है। विश्व की आबादी में प्रतिवर्ष 8 करोड़ का इजाफा होता है। प्रतिवर्ष 5 लाख महिलाओं की मृत्यु गर्भ संबंधित कारणों से होती है इसमें विकासशील देशों की भागीदारी 99 प्रतिशत आंकी गई है। 10 लाख के लगभग महिलाएं प्रतिवर्ष एच.आई.वी. (एड्स) जैसी बीमारी का शिकार हो जाती हैं।

भारत विकसित देशों की श्रेणी में आने के लिए प्रयासरत है, किन्तु जनसंख्या वृद्धि तथा बुनियादी सुविधाओं का अभाव मार्ग में अवरोध बने हुए हैं। भारत की आबादी का 40 प्रतिशत निरक्षर तथा 70 प्रतिशत भाग अमानवीय परिस्थितियों में रहता है। मानव विकास की एक रपट के अनुसार 174 कुपोषित देशों में भारत 132वें स्थान पर विराजमान है। आबादी के अनुपात में उपयुक्त स्वास्थ्य सेवाओं के प्रबंध हेतु 12000 करोड़, प्राथमिक शिक्षा हेतु 26000 करोड़, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में पेयजल आपूर्ति हेतु क्रमशः लगभग 40,000 तथा 31,000 करोड़ रुपए से अधिक धन की आवश्यकता है कहां से आवेगा यह धन? वर्तमान जनसंख्या वृद्धि की दर से 2015 में हमारा देश 150 करोड़ जनसंख्या वाला देश हो जावेगा और हमें एक लाख नए प्राथमिक स्कूलों की आवश्यकता होगी जबकि वर्तमान

में अनेक स्कूल शिक्षक विहीन हैं। 15-20 करोड़ आबादी पेयजल के लिए तरस रही है तथा बिजली की दयनीय स्थिति अवर्णनीय है जो हम प्रतिदिन होते प्रदर्शन तथा हंगामों के रूप में देखते हैं।

जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम के विषय में हमारे पड़ोसी देश चीन तथा जापान ने ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की है। भारत के संदर्भ में प्रत्येक दृष्टिकोण से जनसंख्या वृद्धि के विचार से सहमति नहीं व्यक्त की जा सकती है आवश्यक है समाज के विभिन्न वर्ग तथा धर्मावलंबियों की आबादी में संतुलन स्थापित करने की। अगर यह संतुलन स्थापित नहीं हुवा तो देश का सामाजिक तथा धर्म निरपेक्ष ढांचा ताश के पत्तों के महल की तरह ढह जाएगा। देश में आवश्यकता है संविधान में प्रदत्त अधिकार के अंतर्गत समानता स्थापित करने की जो विभिन्न कारणों से प्राप्त नहीं है। इसके लिए दोषी हमारे राजनेता हैं जो राजनीतिक लाभ हेतु इस बिन्दु की सतत उपेक्षा कर रहे हैं। यह वर्ग विशेष की जनसंख्या वृद्धि का कारण है और समाज की नाराजी भी इसी वजह से है। यह राजनीतिक इच्छा शक्ति के अकाल का द्योतक है। अतः राष्ट्र की आवश्यकता को समझते हुए यह हमारा दायित्व है कि सरकार राजनीतिक कारणों से अलग-अलग तर्क देकर विभिन्न वर्गों में भेदभाव करना बंद करे, तुष्टिकरण की नीति का परित्याग करे तथा अल्पसंख्यक बहुसंख्यक का नारा देना बंद करें तो जनता को स्वयं अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का उपयोग कर इस प्रकार के देश हित के विपरित कार्यों पर रोक लगाना पड़ेगी जो देशहित में होगा और इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं हो सकेगी।

हम खुद का मूल्यांकन करते चलें

— डॉ. एम.सी. नाहटा

गुणवत्ता आधारित शिक्षा वर्तमान में सबसे महत्वपूर्ण हो गई है। यह भी उतना ही सत्य एवं स्थापित तथ्य है कि समाज का विकास शिक्षा के गुणात्मक सुधार के बगैर संभव नहीं है। इसलिए जरूरी है कि ऐसे उपायों पर विचार किया जाए जो हमारी अपेक्षा के अनुरूप हों। इसके लिए वर्तमान मूल्यांकन प्रक्रिया सर्वाधिक उपयुक्त व उपयोगी प्रतीत होती है।

मूल्यांकन एक स्वैच्छिक, खर्चीली तथा कठोर प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से शैक्षणिक संस्थाओं और उनके द्वारा संचालित कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया जाता है, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि संदर्भित संस्थाओं का स्तर क्षमता आधारित है। इससे न सिर्फ अध्ययनरत विद्यार्थी, पालक और समाज को यह भरोसा होता हो कि संस्थाएं उनकी अपेक्षा के अनुरूप हैं, बल्कि उनको नौकरी ढूंढने में भी बेहद आसानी होगी। वर्तमान में मूल्यांकन प्रक्रिया संयुक्त राज्य अमेरिका में सबसे ज्यादा प्रचलित है। रूस, स्वीडन जैसे देशों में भी इसके महत्व और उपयोगिता को स्वीकार किया गया और अपनाया गया है। हालांकि भारत में अभी इसका प्रसार शुरुआती स्तर पर ही है। इसका प्रमुख कारण हमारे यहां की शैक्षणिक संस्थाओं का शासकीय नियंत्रण में क्रियान्वित होना है।

हालांकि पिछले कुछ वर्षों में भारत में शिक्षा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र ने बेहद प्रभावी ढंग से दस्तक दी है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार के चलते मूल्यांकन प्रक्रिया पर भी प्रत्येक स्तर पर विचार किया जाने लगा है। इसका एक और सुखद परिणाम भी सामने आया है— सन् 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस प्रणाली के महत्व और उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए नेशनल असेसमेंट एंड एक्रिडिटेशन काउंसिल का गठन कर एक रचनात्मक कार्य किया है। इसे अंतरराष्ट्रीय प्रवाह के समकक्ष

माना जाता है। इस काउंसिल के गठन से पूर्व निर्धारित मापदंडों के आधार पर स्वमेय मूल्यांकन तथा पुनरीक्षण करने के अवसर भी प्राप्त होने लगे हैं। शैक्षणिक संस्थाओं की संख्या में वृद्धि के कारण नेशनल काउंसिल के कार्य का विस्तार हुआ है। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय शाखाओं की स्थापना की जरूरत महसूस की जाने लगी है। शैक्षणिक संस्थाओं की संख्या में वृद्धि तथा उनके बारे में जानकारी उपलब्ध होने के फलस्वरूप पाश्चात्य देश विशेषकर ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका और इंग्लैंड ने भारतीय उच्च शिक्षा क्षेत्र को एक अच्छे और बड़े व्यापार के रूप में देखकर एक अनुमान के अनुसार इंग्लैंड ने 400 भारतीय संस्थाओं से अनुबंध किया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दिए जाने वाले आर्थिक सहयोग हेतु नेशनल काउंसिल को मापदंड निर्धारित करना चाहिए, मूल्यांकन की गई संस्थाओं को ही आर्थिक सहयोग देना उचित होगा।

यह चिंता का विषय है कि राज्य सरकारें अभी तक इस विषय के प्रति गंभीर नहीं हैं। वैसे सन् 2001 तक नेशनल काउंसिल के माध्यम से 200 संस्थाओं का मूल्यांकन संपन्न हो चुका है। मूल्यांकन प्रक्रिया के महत्व और उपयोगिता को समझने के फलस्वरूप अब विभागीय मूल्यांकन भी आरंभ हो गया है। तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र में नेशनल काउंसिल की भूमिका पर सार्वजनिक चर्चा होना चाहिए, जिसके दूरगामी परिणाम सुखद हो सकते हैं और यह संस्था अधिक सार्थक और प्रभावी सिद्ध हो सकती है।

विकलांगता के क्षेत्र में कार्यरत भारतीय पुनर्वसन परिषद इस प्रक्रिया को अपना चुकी है तथा उससे संबंधित संस्थाओं का मूल्यांकन कराती है। उसकी उपयोगिता निर्विवाद है, किंतु गंभीरता, सुधार तथा परिवर्तन की जरूरत को नकारा नहीं जा सकता।

पिछले दशकों में शिक्षा की गुणवत्ता अधिक प्रासंगिक हो गई है, क्योंकि सामाजिक विकास हेतु शिक्षा में सुधार तथा परिवर्तन एक आवश्यक

अंग बन गया है। प्रबंधन के विकेंद्रीकरण, लोकतंत्रीकरण, तीव्रताबोधक संस्थाओं की व्यवस्था का निर्माण, बाजार की अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक समाज में एकीकरण तथा विश्व की शैक्षणिक व्यवस्था में समरसता हेतु मूल्यांकन प्रक्रिया वर्तमान की महती आवश्यकता बन गई है।

मूल्यांकन प्रक्रिया के एक नहीं, अनेक लाभ हैं। इसके माध्यम से उच्च शिक्षा क्षेत्र की शैक्षणिक संस्थाएं निर्धारित मापदंड प्राप्त करने में प्रेरित और सफल भी होती हैं। परिणामस्वरूप संस्थाओं का मानक स्तरीय बनता है। कभी-कभी अधिक ऊंचाई भी प्राप्त कर लेता है। मौलिक रूप से मूल्यांकन प्रक्रिया के दो उद्देश्य हैं—

इन उद्देश्यों की पूर्ति से इन संस्थाओं को प्रतिष्ठित होने का अनुपम अवसर प्राप्त होता है।

मूल्यांकन केवल औपचारिकता नहीं है। इसके परिपालन से विद्यार्थी वर्ग, पालक तथा समाज को संस्थाओं के गुणवत्ता आधारित होने का विश्वास होता है।

यह व्यवस्था दूसरों पर थोपी जाने वाली व्यवस्था नहीं है, बल्कि स्वेच्छा से स्वयं का मूल्यांकन करने हेतु की जाती है। इसके बाद बाह्य-रूप से संस्थाओं तथा उसके द्वारा संचालित कार्यक्रमों का सर्वेक्षण तथा समीक्षा करने का अद्वितीय अवसर देती है। इससे गुणवत्ता का प्रमाणपत्र मिलता है, सतत सुधार हो सकता है तथा पारदर्शिता व अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर उभरने का अवसर भी मिलता है। मूल्यांकन हेतु दो स्तरीय संगठन हैं— राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय, जो आवश्यकतानुसार संबंधित क्षेत्र के व्यावसायिक विशेषज्ञता प्राप्त संगठनों से संबंध स्थापित कर सलाह, परामर्श तथा सहयोग लेते हैं। इससे पाठ्यक्रम को अभिनव बनाने का अवसर मिल जाता है।

मूल्यांकन प्रक्रिया स्वयंसेवी संगठनों/संस्थाओं द्वारा की जाती है। लेकिन निजी क्षेत्र के बढ़ते प्रभाव के कारण शासकीय भूमिका निर्णायक

तथा आवश्यक है। शासकीय क्षेत्र को साधन, संसाधन, अधो-संरचना तथा सुधारात्मक क्रियाविधि उपलब्ध कराकर अपने दायित्व को निभाना चाहिए जो कि न तो पर्याप्त है और न ही यथेष्ट।

मूल्यांकन से संबंधित एक अन्य बिन्दु पर भी विचार तथा ध्यान आवश्यक प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में अनेक संस्थाएं कार्यरत हैं, जिनके द्वारा मूल्यांकन हेतु अलग-अलग प्रणालियां अपनाई जा रही हैं, जिसे किसी भी मापदंड से उचित नहीं माना जा सकता है। आवश्यकता है पूरे देश में इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के लिए एकरूपता की। उचित होगा संबंधित कार्यरत संगठन/संस्थाएं आपसी सहयोग तथा समन्वय स्थापित कर एक सर्वमान्य राष्ट्रीय प्रणाली विकसित करें। ऐसा होने से पूरे देश में समान स्तर का वातावरण निर्मित होगा, जो वर्तमान परिदृश्य में बेहद जरूरी है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उच्च स्तर प्राप्त करने के हेतु मूल्यांकन प्रक्रिया का कोई विकल्प नहीं है। इस आदर्श स्थिति तथा स्तर को प्राप्त करने हेतु कुछ अन्य उपायों का समावेश करने से अधिक सफलता प्राप्त हो सकेगी। मेरा सुझाव है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र के विकास हेतु अपनाए गए उपायों विशेषकर प्रशिक्षण हेतु क्रिया तथा सर्वमान्य कार्यप्रणाली के निर्धारण से शिक्षा का स्तर बढ़ सकेगा। यह भी उचित होगा कि मूल्यांकन प्रति तीन से पाँच वर्षों में एक बार कराना अनिवार्य किया जाए।

यहां यह कहना सामयिक होगा कि वर्तमान में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों को स्टार देकर उनका स्तर प्रदर्शित किया जाता है। इस हेतु अपनाई जा रही प्रक्रिया में सुधारात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है।

अतः पूरे विषय पर गंभीरता से विचार कर समग्र रूप से निर्णय लेने से देश के उच्च शिक्षा क्षेत्र को सर्वाधिक योगदान मिल सकेगा।

शिक्षा-शिक्षक स्थिति परिवर्तन की अपेक्षा

— डॉ. एम.सी. नाहटा

प्रतिवर्षनुसार पूर्व राष्ट्रपति महान दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्मदिन 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस के रूप में एक औपचारिकता निभाने हेतु मनाया जायेगा। इस प्रकार के अवसरों पर कुछ आयोजन कर हम अपनी अपनी जिम्मेदारी की इतिश्री मान लेते हैं और मूल विषय को लगभग भूल जाते हैं - यही स्थिति शिक्षक दिवस की भी मानी जा सकती है। भौतिक रूप से इस अवसर पर शिक्षकों तथा शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान स्थिति का आंकलन कर इन क्षेत्रों में सुधारात्मक उपायों पर विचार कर उनमें परिवर्तन करना चाहिये जो नहीं हो रहा है। यही कारण है कि 61 वर्ष की स्वतंत्रता के बाद भी वर्तमान परिदृश्य निराशाजनक है जिसकी पुष्टि उपलब्ध आंकड़े सरलता से करते हैं।

इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी की हमने भारत की स्वतंत्रता की पूर्व संध्या 1946 में शिक्षकों की भूमिका हेतु मेकाले द्वारा दी गई प्रणाली को अंगीकार किया जो कि उस समय हमारी बाध्यता थी। यह भी उतना ही सत्य है कि आजादी के बाद प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लाने के प्रयास किये गये हैं जिन की सफलता संदिग्ध है और वर्तमान में हम अंधेरे में भटक रहे हैं। शिक्षा व्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षक वर्ग की है जिनकी स्थिति निराशाजनक ही नहीं दयनीय भी है। शिक्षकों को वर्तमान में औसत रूप से 80000-100000 रु. का वार्षिक मानदेय मिलता है जो कि किसी भी मापदंड से पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त न तो शिक्षकों को समाज में महत्व मिलता है न ही पहचान मिलती है और न ही प्रेरणा देने के प्रयास किये जाते हैं। इस उपेक्षित तथा अंसतुष्ट वातावरण में इस वर्ग से क्या अपेक्षा की जा सकती है।

इस निराशाजनक वातावरण में दुबई स्थिति शिक्षा के क्षेत्र में कार्य हेतु स्थापित “वरके जेम्स फाउंडेशन” ने माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों को मान्यता तथा पहचान देने हेतु गुरुवर पुरस्कार की स्थापना की है जिसके अन्तर्गत श्रेष्ठ शिक्षक को 51 लाख रू. का पुरस्कार देना प्रस्तावित है तथा 21-21 लाख रू. के तीन अन्य पुरस्कारों का प्रावधान किया है। इस प्रयास की जितनी प्रशंसा की जावे कम ही होगी।

शिक्षा तथा साक्षरता से संबंधित अन्य जानकारी भी किसी प्रकार से उत्साहवर्धक नहीं है। शासकीय आंकड़ों के अनुसार देश में साक्षरता का प्रतिशत 66 है - इसकी विश्वसनीयता भी संदेहास्पद ही है क्योंकि वर्तमान वातावरण में मापदंड भी सुविधानुसार बना लिये जाते हैं। केरल तथा बिहार में साक्षरता का प्रतिशत क्रमशः 100 तथा 44 है। बिहार में साक्षर महिलाएं 29 प्रतिशत बताई गई हैं। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप युनेस्को के अनुसार 177 देशों में भारत का 147वां स्थान है। भारत में अशिक्षित व्यक्तियों की संख्या नार्थ अमेरीका तथा जापान की सम्मिलित संख्या से अधिक है।

भारत में विद्यार्थियों की कुल संख्या 290 मिलियन है। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी 150 मिलियन हैं जिसका 30 प्रतिशत 5वीं क्लास में पहुंचने के पूर्व ही स्कूल को अलविदा कर देता है। इस ड्रॉप आउट संख्या को कम करने हेतु विप्रो कम्पनी के मालिक अजीम प्रेमजी ने 25 करोड़ रू. का एक ट्रस्ट बनाया है। अगर हम शिक्षकों की संख्या पर विचार करें तो वर्तमान में मोटे तौर पर विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में भारत में 25 लाख शिक्षकों की कमी है - ऐसे शिक्षकों की भी संख्या कम नहीं जो स्कूल में अपनी उपस्थिति केवल मानदेय प्राप्त करने के दिन ही दर्ज कराते हैं। यह भी सर्वविदित है कि विपरीत परिस्थितियों के कारण शिक्षक वर्ग भी विदेश की ओर पलायन कर रहा है यह प्रक्रिया 1960 में

ही आरंभ हो गई थी जो सतत है। पूर्व में आकर्षण का केन्द्र अफ्रीकी देश थे और वर्तमान में अमेरीका, इंग्लैण्ड, न्यूजीलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया बन गये हैं। हमें विचार करना होगा कि इस पलायनवाद (ब्रेन ड्रेन) से कैसे निजात मिले।

देश की जनसंख्या के आधार पर शैक्षणिक संस्थाओं की संख्या भी अत्यधिक रूप से कम है। एक आंकलन के अनुसार देश में अगले 10 वर्षों तक प्रतिदिन एक नया स्कूल खोलने से समस्या अल्प समय के लिये कम हो सकेगी। दूसरी ओर स्कूली छात्रों में उपस्थिति का प्रतिशत भी उतना ही निराशाजनक है - 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के 50 प्रतिशत विद्यार्थी ही स्कूल जाते हैं।

विडम्बना है कि हमारी शिक्षा पर जीएनपी का 4 प्रतिशत से भी कम खर्च करते हैं जो कि रक्षा पर होने वाले व्यय का 1/10 से भी कम है। विश्व में प्रत्येक औद्योगिक समाज का 80 प्रतिशत शिक्षित होता है - भारतीय परिदृश्य हमारे सामने है।

शिक्षा क्षेत्र के विस्तार तथा सुधार हेतु अनेक समितियां गठित हुईं। अनेक योजनाएं बनीं किन्तु इनसे कितना लाभ हुआ - इस बिन्दु पर चर्चा बेमानी है। सर्व शिक्षा अभियान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। दुःख तो इस बात का है कि शिक्षा के क्षेत्र पर राजनितीज्ञों का आधिपत्य हो गया है - पूरा क्षेत्र व्यवसाय में बदल गया है और आमदनी का आसान तरीका बन चुका है। इस वर्तमान स्थिति में रास्ता ढूंढना असंभव नहीं तो सरल भी नहीं है।

यह बताना सामयिक होगा कि 13 जून 2005 को प्रधानमंत्रीजी ने श्री सेम पेट्रोदा की अध्यक्षता में 7 सदस्यीय राष्ट्रीय नालेज कमीशन गठित किया जो कि शिक्षा, अनुसंधान तथा सुधार हेतु प्रधानमंत्री कार्यालय को नितीगत सलाह दे तथा एक थीक टेक के रूप में कार्य भी करें। इस आयोग

ने दिसम्बर 2006 में एक रपट प्रधानमंत्रीजी को प्रस्तुत की थी कुछ बिन्दुओं पर विवाद भी हुआ था। अतः उपयुक्त होगा कि प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में प्रमुख राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की बैठक संदर्भित आयोग आयोजित कर विचार विमर्श किया जावे तथा एक सर्व सम्मल दिर्घकालीन शिक्षा व्यवस्था निकाले ताकि शिक्षा का प्रत्येक क्षेत्र गुणवत्ता तथा राष्ट्रीय आवश्यकता आधारित बन सके। शिक्षक दिवसर पर यही अपेक्षा है।

औषधी व्यसन

डॉ. एम.सी. नाहटा

व्यसन एक अनियंत्रणीय विवशता है, जो कि नकारात्मक परिणामों के बावजूद बार-बार करने को मजबूर करता है। इस प्रकार का व्यसन अनेक प्रकार की औषधियों के सेवन से ही होता है। व्यसन केवल किसी एक राष्ट्र की समस्या नहीं है अपितु पूरा विश्व इस समस्या से पीड़ित है। आज के आपाधापी युक्त जीवन प्रणाली को इसके लिए दोषी करार दिया जा सकता है। भारतवर्ष भी इसके लिए अपवाद नहीं है और यह समस्या पंजाब प्रांत में 16-35 वर्ष की आयु वर्ग में अधिक मात्रा में है। इस समस्या से ग्रामीण क्षेत्र अधिक प्रभावित है और बेरोजगारी मुख्य रूप से इसके लिये दोषी है। अज्ञानता तथा गरीबी भी इस विषमता की ओर ढकेलती है तथा निम्नांकित स्थितियां भी व्यसन की ओर प्रेरित करने हेतु दोषी मानी जाती है।

1. मनोवैज्ञानिक समस्या
2. बच्चों के आक्रामक स्वभाव तथा स्वनियंत्रण की कमी।
3. युवा वर्ग में समकक्ष व्यक्ति की देखादेखी, ताकना, माता-पिता से लगाव की कमी या पालकों के नियंत्रण में कमी।
4. चिन्ता, दबाव, अकेलापन।
5. वंशानुगत।

इस हेतु स्मोक-ब्राउन शुगर का उपयोग सर्वाधिक किया जाता है। अन्य वस्तुओं में एल.एस.डी., शराब, कोकीन, एम.डी., एम.ए. श्वास द्वारा ली जाने वाली वस्तुएं, मेलीजुना, मेथामफीटामीन, वी.सी.पी फेन साइक्लोडीन, नुसखें में लिखी गई दवाईया, धुम्रपान तथा एनाबालिक हारमोन सम्मिलित है।

व्यसन पीडित व्यक्तियों में उपरोक्त वस्तुओं को लेने की तीव्र इच्छा होती है। परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार के लक्षण तथा संकेत होते हैं, जो औषधि आधारित होते हैं। मौटे तौर पर इस वर्ग में कमजोरी, विचित्र मानसिक अनुभूति, कमजोर स्मरण शक्ति, समन्वय का अभाव, हृदयगति तथा रक्तचाप का प्रभावित होना, बोली, दृष्टि, श्रवण तथा स्वाद शक्ति में परिवर्तन, एकाग्रता एवं सांस में कठिनाई, सुख, बोध, कम्पन, पूर्वद्रश्य (Flash Back) जैसे लक्षण होते हैं और विचित्र संकेत भी होते हैं। जिनके कारण औषधि व्यसन होने का आभास होता है और परीक्षणोपरान्त संदोह हकीकत हो जाता है।

इस प्रकार के व्यसन के दुष्परिणाम भी एक नहीं अनेक हैं। मुख्य रूप से वैवाहिक संबंधों में खराबी, पारिवारिक अनबन, कार्यक्षमता, गुणवत्ता में कमी, दोस्तों से दूरी, असंबद्धता, शैक्षणिक पढाई में हानि, आर्थिक तथा कानूनी परेशानियां तथा स्वास्थ्य एवं शारीरिक विषमताएं।

औषधि व्यसन से छुटकारा पाना कठिन नहीं तो सरल भी नहीं है। इस विषमता से मुक्ति हेतु तत्काल पारिवारिक चिकित्सक से सलाह लेना आवश्यक है। हेल्पलाइन या हॉट लाइन के माध्यम से भी सहायता ली जा सकती है। मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ की सलाह परिणामदायक होती है। इस विषमता का उपचार विशेषज्ञ की निगरानी में चार प्रकार से किया जाता है।

1. विथड्राल थेरेपी-तत्काल प्रभाव से औषधि सेवन बंद किया जावे यह कार्य स्वयं प्रभावित व्यक्ति को ही करना होता है।
2. समझाईश इस विषमता से मुक्ति दिलाने में रामबाण का काम करती है।
3. उपचार कार्यक्रम के अंतर्गत शैक्षणिक तथा उपचार निश्चित कार्यक्रम के रूप में किया जाता है।

4. सेल्फ हेल्प ग्रुप भी इस विषमता से निजात दिलाने में सहायक माने जाते हैं।

उपयुक्त तो यही होगा कि इस विषमता की रोकथाम हेतु पूरजोर प्रयास किए जावे। यदि यह संभव हो सके तो अनेक परिवार कठिनाईयों से बच सकते हैं। रोकथाम हेतु भी चार बिन्दुओं पर कार्य आवश्यक है -

1. विषमता के बार में पूर्ण जानकारी दी जावे।
2. प्रभावित हो सकने की संभावना वाले व्यक्ति वर्ग की ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिये जावे।
3. ऐसे वर्ग व्यक्ति के सामने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किए जावें।
4. आपसी रिश्तों बंधन को सुदृढ बनाया जावे।

सतही तोर पर परीक्षण से निष्कर्ष निकलता है रोकथाम के उपाय कठिन तो नहीं हैं किन्तु सरल भी प्रतित नहीं होते हैं क्योंकि यह कठिन कार्य केवल समर्पित व्यक्ति/संगठन ही कर सकते हैं जिनका सर्वत्र अभाव है। फिर भी सतत प्रयास हमें हमारे लक्ष्य तथा उद्देश्य प्राप्ति के निकट पहुंचा सकते हैं जो समाज का प्रत्येक वर्ग चाहता है - ऐसा होने पर हम सफल होंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

औषधि का दुरुपयोग

डॉ. एम.सी. नाहटा

औषधि का दुरुपयोग समस्या न तो नई है न ही स्थानीय है। वर्तमान में इस समस्या ने वैश्विक रूप धारण कर लिया है। परिणामस्वरूप प्रत्येक देश ग्रस्त हैं। कुछ परिवार तो असहनीय पीड़ा भोगने को बाध्य हैं। वैसे तो समस्या किसी विशेष आयु वर्ग तक सीमित नहीं है किंतु पिछले कुछ वर्षों में युवा वर्ग इसकी गिरफ्त में अधिक आया है।

सायकोएक्टिव औषधियों का उपयोग नई बात नहीं है— इनका उपयोग सैकड़ों वर्षों से उपचार, तथा आमोद प्रमोद के लिए होता रहा है। किन्तु गत शताब्दी के अन्त तक औषधि के क्षेत्र में विकास के परिणाम स्वरूप कोकेन, हीरोइन जैसी अधिक व्यसनी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि तथा विशेष प्रकार की सीरिज के आविष्कार ने भी समस्या की भयानकता वृद्धि में पूरा योगदान दिया है।

सर्वप्रथम यह जानना सामयिक होगा कि औषधि दुरुपयोग (ड्रग एब्जुज) से तात्पर्य क्या है ? सामान्य रूप से चिन्हित औषधियों के गैर कानूनी तथा गैर चिकित्सकीय कार्यों के लिये उपयोग को हम ड्रग एब्जुज की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार की तथाकथित औषधियों के दुरुपयोग से समाज के प्रत्येक क्षेत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ता है— स्वास्थ्य, स्मरणशक्ति तथा ज्ञानात्मकता प्रभावित होती हैं। इन औषधियों का उपयोग खाने, सुंघने, धूम्रपान तथा सीरिज के माध्यम से किया जाता है।

उपयोग में ली जाने वाली वस्तुओं में कनाबिस का उपयोग सर्वाधिक किया जाता है। 75 प्रतिशत देशों में हीरोइन तथा 65 प्रतिशत देशों में कोकेन का प्रचलन अधिक है। इन वस्तुओं के उपयोग से विषम स्थितियां निर्मित होती हैं जैसे अपराध एवं हिंसा की प्रवृत्ति में बढ़ोतरी तथा एड्स

रोगियों के प्रतिशत में वृद्धि। यहां तक कि सामाजिक संरचना भी ध्वस्त होती हैं।

सायकोएक्टिव वस्तुओं की श्रेणी में शराब तथा तम्बाकू भी सम्मिलित हैं। पूर्व में इस प्रकार की वस्तुएं वनस्पतियों से बनाई जाती थी— उदाहरणार्थ (कोका) से कोकेन, अफीम, पोस्ता से हीरोइन तथा कनाबीस से हशीश तथा मारजुएना। इन वस्तुओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, उदासीन करने वाली, उत्तेजित करने वाली तथा भ्रमित करने वाली। वर्तमान में एल.एस.डी. रसायनिक वस्तुएं से बनाई जाती हैं।

- (1) उदासीन (डिप्रेसन्ट्स) हिरोइन, बारबीच्युरेट्स
- (2) उत्तेजक कोकेन, क्रेक, एम्फीटामीन
- (3) भ्रमित मारीजुएना, एक्टेसी, एल.एस.डी.

वैसे तो अलग-अलग प्रकार की औषधियां विभिन्न प्रकार के प्रभाव डालते हैं किंतु डिप्रेसन्ट्स मुख्य रूप से कृत्रिम शिथिलीकरण, चिन्ता एवं मानसिक तनाव से मुक्ति की भावना से मनोवैज्ञानिक निर्भरता उत्पन्न करती हैं। इस स्थिति से वापसी असंभव नहीं तो सरल भी नहीं है।

उत्तेजक स्नायु संबंधी तंत्र को प्रेरित कर मादकता के लक्षण जैसे दिल की धड़कन की गति में वृद्धि, आँख की पुतली का फैलता, उच्च रक्तचाप, जी मचलाना तथा उल्टी होना जैसी स्थिति निर्मित करती है। परिणाम स्वरूप संबंधित व्यक्ति का व्यवहार आक्रामक, उत्तेजक तथा निर्णय करने की क्षमता को क्षीण करता है।

भ्रमित (हेलीसोलोअन्स) गम्भीर मानसिक परिवर्तन करते हैं जो कि सुख बोध की भावना, चिन्ता, संवेदि, विकृति, चमकीली, संभ्राति, बहकावट तथा उदासीनता जैसी स्थिति पैदा करते हैं।

तात्पर्य है कि इस प्रकार की औषधियां भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर के अंगों को प्रभावित करती है। जिनमें लीवर तथा किडनी सम्मिलित है। कुप्रभाव तत्काल भी हो सकते हैं और लंबे समय के बाद भी देखे जा सकते हैं।

इस समस्या के निराकरण तथा नियंत्रण हेतु प्रयास विभिन्न स्तरों पर किए जा रहे हैं, किंतु सफलता का प्रतिशत नगण्य है। योजनाबद्ध रूप से अंतर्राष्ट्रीय प्रयास स्तुत्य हैं। ये प्रयास 1909 में प्रारंभ किये गये थे। इन प्रयासों के अंतर्गत सर्वप्रथम शंघाई में 1909 के ओपीयम कमीशन के बाद प्रथम अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण स्थापित किया गया। 1961 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पूर्व में आयोजित सम्मेलनों में उपरोक्त औषधियों को चिकित्सकीय कार्य के लिए उपयोग करने तक सीमित किया था, जिन्हें नारकोटिक ड्रग्स के एक सम्मेलन में समायोजित किया। सतत् प्रयास के अंतर्गत 1971 में मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली सायकोट्रापिक वस्तुओं से संबंधित सम्मेलन में ऐसी वस्तुओं की सूची बनाकर अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण प्रणाली बनाई गई। 1972 में उपचार तथा पुनर्वसन सेवा स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया। 1988 में औषधियों के अवैध व्यापार, अवैध धन को वैध बनाने तथा गैर कानूनी ढंग से बनाई जाने वाली औषधियों के लिए आवश्यक रसायन की रोकथाम पर विचार-विमर्श किया गया। उपरोक्त प्रयासों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ ने ही 1998 में औषधि से संबंधित एक विशेष सम्मेलन में सदस्य देशों के प्रतिनिधियों ने औषधियों की मांग कम करने की आवश्यकता को स्वीकार कर अपने राजनीतिक घोषणा पत्र में सन् 2008 तक औषधियों की मांग तथा पूर्ति को कम करने का निर्णय लिया। पुनर्वसन तथा रोकथाम के अनेक प्रयास तो किए जा रहे हैं, किंतु वर्तमान सामाजिक संरचना, व्यक्तिगत अपेक्षाओं तथा महत्वाकांक्षाओं के कारण बहुतेरे तो कागजी होकर रह गए हैं तथा प्रचार माध्यमों तक सीमिति है। इस

कार्य के लिए दामजी भाई जैसे जमीनी समर्पित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। समस्या को नियंत्रित करने हेतु विभिन्न स्तरों पर योजनाबद्ध रूप से काम करना पड़ेगा। सर्वाधिक योगदान पीड़ित सदस्यों के अभिभावक दे सकते हैं। इसकी पूर्ति मानसिक रूप से विकलांग बालकों के अभिभावकों के संगठन के समकक्ष संगठन बनाए जाने से हो सकती है।

इस अभिशाप को रोकने में अवयस्क बालकों के माता-पिता भी सहायता कर सकते हैं, बशर्ते कि वो बच्चों के साथ कुछ समय बिताएं तथा जीवन के प्रत्येक पहलू से उन्हें सतत् अवगत कराते रहें। भारत जैसे आध्यात्मवादी देश में धर्मगुरु भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अपने प्रवचनों के समय में से थोड़ा समय इस विषय पर मार्गदर्शन के लिए निर्धारित करना पड़ेगा। ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षक तथा चिकित्सक वर्ग इस हानिकारक प्रवृत्ति को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। व्यावसायिक कार्यों में कार्यरत दवाई कंपनियों को भी संयम बरतना पड़ेगा। सरकारी तंत्र के पुलिस, औषधि नियंत्रण, कर निर्धारण जैसे विभागों को निडर होकर सक्रिय रेकेट्स पर शिकंजा कसना पड़ेगा, शासन का कर्तव्य होगा कि इन रेकेट्स के सदस्यों के प्रभाव से प्रभावी कार्य करने वाले कर्मचारियों को बचावें, वहीं शासकीय अमले का भी कर्तव्य होगा कि पूसखोरी जैसे प्रवृत्तियों को अपने आपको दूर रखें। अतः योजनाबद्ध कार्यशैली से इस मानवीय अभिशाप से समाज को मुक्त किया जा सकता है, आवश्यकता है, प्रभावी कार्यवाही की न कि आयोजनों की, जिनकी भीड़ प्रतिदिन देखने को मिल रही है।

बाल श्रमिकों का उत्पीड़न कैसे कम किया जाए

डॉ. एम.सी. नाहटा

बाल श्रम एक विश्वीय समस्या है, जो विकसित देशों में कम तथा विकासशील देशों में अधिक गंभीर है। समस्या नई नहीं है। उदाहरण आदि काल में भी विद्यमान थे। समस्या का विस्तार तथा वर्तमान विकराल रूप इंग्लैण्ड की 17वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति का प्रतिफल है। तभी से 10 वर्ष से कम आयु के बालकों को उद्योगों तथा खदानों के अस्वास्थ्यकर एवं खतरनाक वातावरण में अत्यधिक कम मजदूरी पर काम कराया जाने लगा। यह समस्या अन्य पाश्चात्य देशों में भी फैल गई है। परिवारों की कमजोर आर्थिक स्थिति समस्या की मूलजनक है। समस्या के निराकरण के प्रयास भी दशकों से किए जा रहे हैं। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध लेखक चार्ल्स डिकेन ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक आलिंघर टिवस्ट 1837-39 के माध्यम से प्रभावी ढंग से आवाज उठाई थी। समस्या देखने में सतही है, किंतु हकीकत में जटिल है। अतः समाधान के प्रयास भी एक नहीं अनेक स्तर पर आवश्यक है। सामाजिक, प्रौद्योगिक, राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में सुधार तथा अंतराष्ट्रीय नीति निर्धारण तथा कार्यवाही जैसे क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान आवश्यक है।

बाल श्रम समस्या को समझने तथा समझाने के लिए उचित परिभाषा जरूरी है। अनेक संस्थाओं, एजेंसीस तथा देशों में अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है - फलस्वरूप इनमें समानता का अभाव है। मेरे मत में अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन (आयएलओ) के प्रमुख निर्देशक 'फ्रान्सिस ब्लेनचार्ड' की परिभाषा संपूर्णता के निकट है, जिसके अनुसार बाल श्रम का अर्थ है बच्चे, वयस्कों जैसी जिंदगी जिए, कम पगार में ज्यादा घंटों तक काम न करें, जो उनके शारीरिक व मानसिक विकास के लिए नुकसानदायक है। कभी-कभी उन्हें अपने परिवार से अलग भी रहना पड़े

और ज्यादातर ऐसी शिक्षा से वंचित रहे जो उन्हें एक अच्छा भविष्य दे सकती है।

वैसे तो समस्या विश्वस्तरीय है, किंतु भारत के संबंध में इसके आकार पर दृष्टि डालने से असली स्वरूप सामने आता है। इस देश में 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की संख्या अमेरिका की आबादी से अधिक है। जिन्हें पौष्टिक भोजन, शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी मौलिक सुविधाएं भी अनउपलब्ध है। यह वर्ग श्रमिकों की संख्या का 3.6 प्रतिशत है। 1991 की जनगणना के आधार पर बाल श्रमिकों की संख्या 11.29 मिलीयन बताई गई है। वहीं अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन ने वर्ष 1996 में इस संख्या को 23.17 मिलीयन बताया है। इस आयु वर्ग के प्रति 10 में से 9 पारिवारिक ग्रामीण व्यवसाय, 85 प्रतिशत पारंपरिक कृषि कार्य, 9 प्रतिशत से कम उत्पादन, सेवा तथा मरम्मत एवं 0.8 प्रतिशत उद्योगों में कार्य करते हैं। विडम्बना है कि 80 प्रतिशत से अधिक कार्यरत बालक अनुसूचित जाति तथा जनजाति वर्ग से है। बाल श्रमिक वर्ग का 21 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में तथा शेष 79 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में असुविधाजनक स्थिति में जीवन यापन करने को बाध्य है।

बाल श्रम के कारणों पर भी विचार आवश्यक है। निर्धनता/गरीबी सर्वोच्च स्थान पर है। व्यावसायिक परंपरा का निर्वहन, पालकों की बेरोजगारी, बड़ा परिवार, अशिक्षा, अज्ञानता तथा सामाजिक सुरक्षा जैसी व्यवस्था की अनुपलब्धता भी इस समस्या के लिए दोषी है।

समस्या से निराकरण हेतु प्रयास तथा उपाय भी समय-समय पर किए जा रहे हैं, सन् 1881 में फेक्टरी एक्ट बनाया गया, 1929 में जान हेनरी व्हीटले की अध्यक्षता में गठित रायल कमीशन ने बाल श्रम की व्यापकता के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई। 1933 में बाल श्रम कानून बना, तत्पश्चात 9 अन्य विधेयक पारित किए गए। संविधान के 39

अनुच्छेद में बाल श्रमिकों के शोषण पर प्रतिबंध का प्रावधान, 1986 बालश्रम कानून के अंतर्गत 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को उद्योगों में काम पर रखने पर रोक, 26 मई तथा 5 अक्टूबर 1993 को अलग-अलग अधिसूचना तथा 15 अगस्त 1994 को प्रधानमंत्री द्वारा नुकसानदायक उद्योगों में कार्यरत 2 करोड़ बाल श्रमिकों को 2000 तक वापसी की घोषणा भी सम्मिलित है।

प्रशासकीय स्तर पर राष्ट्रीय प्राधिकरण की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय निर्णयों पर क्रियान्वयन हेतु नीति, मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा कार्यवाही के लिए राष्ट्रीय योजना (नेशनल प्लान फॉर एक्शन) केन्द्रीय सलाहकार तथा तकनीकी सलाहकार का गठन, राष्ट्रीय बाल परियोजना, खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों के पुनर्वसन जैसे अनेकों उपाय कीए गए है। क्षेत्र में कार्यरत 27 स्वयंसेवी संगठनों को ग्रांट-इन-एड योजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता भी उपलब्ध कराई हैं।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में 15 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया था जो वस्तुतः 1995-95, 96-97 तथा 97-98 में क्रमशः 34.40, 56 तथा 78.40 करोड़ रुपये हो गया था।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी 10 दिसम्बर 1996 को पारित आदेश के माध्यम से खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों की वापसी तथा पुनर्वसन एवम सामान्य व्यवसायों में कार्यरत बाल श्रमिकों की स्थिति में सुधार हेतु निर्देश दिए थे।

तात्पर्य है कि अनेकों प्रयासों के बावजूद स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। स्थिति यथावत है या पूर्व से भी अधिक बदतर हो गई है। इस विषम स्थिति के कारणों का पता लगाना एक अनुसंधान का विषय है। मेरे मत में इस दयनीय स्थिति का प्रमुख कारण अशिक्षा है। इसकी पुष्टि एक रपट से भी होती है जिसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के बच्चे या तो स्कूल जाते

ही नहीं या कम से कम 50 प्रतिशत कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण स्कूल जाना बंद कर देते हैं। स्कूली बच्चों की (ड्रॉप आउट) स्थिति में सुधार हेतु प्रसिद्ध उद्योगपति, विप्रो के मालिक अजीम प्रेमजी ने गत वर्ष ही देश के दो राज्यों आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक में ड्रॉपआउट समस्या के निराकरण हेतु योजना बनाई है। इस कार्य के लिए 25 करोड़ रुपये देने की घोषणा की है। और भविष्य में इस लक्ष्य को समीपवर्ती राज्य गुजरात तथा मध्यप्रदेश में भी प्रारंभ करने का निश्चय किया है। बाल श्रम समस्या से निजात पाने के लिए क्या किया जाय, इस प्रश्न का उत्तर ढूँढना सरल नहीं है। देश में विद्यमान वर्तमान परिदृश्य में समस्या का पूर्णरूपेण उन्मूलन संभव नहीं दिखता है। चूंकि आबादी का लगभग 50 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करता है। अतः आदर्शवादी नारों तथा केवल कानून बनाने से काम नहीं चल पाएगा। सोच तथा कार्यप्रणाली में आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा।

(लर्न व्हाइल यु अर्न) के सिद्धान्त पर आधारित कार्यप्रणाली विकसित करना पड़ेगी। इससे बालकों की शिक्षा व्यवस्था होगी, उनमें आत्मविश्वास बढ़ेगा और पारिवारिक आर्थिक स्थिति में भी सुधार हो सकेगा। तभी इस सामाजिक अभिशाप को दूर करने की दिशा में हम अग्रसर हो सकेंगे। समस्या पर समग्र रूप से विचारोपरान्त यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ढेर सारे कानून तथा संवैधानिक प्रयासों के बावजूद समस्या यथावत है या इसमें वृद्धि हुई है। क्योंकि मूल कारण गरीबी तथा अशिक्षा उन्मूलन हेतु शासकीय प्रयास केवल आदर्श विचार बनकर रह गए हैं। इस अभिशाप को दूर करने हेतु पारम्परिक उपायों से हटकर पंचायती राज व्यवस्था, स्वयंसेवी संगठन, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों की महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा कुटीर उद्योगों की स्थापना हेतु वित्तीय, तकनीकी तथा अन्य सहायता, बालकों को शिक्षित

बनाने हेतु पूर्व में लेखक द्वारा प्रायोजित तथा जिला योजना समिति झाबुआ द्वारा - सर्वानुमति से अनुमोदित चलित स्कूल योजना का क्रियान्वयन उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय सेवा संगठनों को इस वर्ग की शिक्षा की जिम्मेदारी देने से भी समस्या की विकरालता कम हो सकती है।

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त बाल समस्या निराकरण हेतु बनाए गए सारे कानूनों को संगठित किया जाए ताकि एक भारतीय बाल तथा बाल श्रम संहिता के साथ प्रशासन, सामाजिक कार्यकर्ताओं, नागरिक, चिकित्सक, सामाजिक वैज्ञानिकों, वकील तथा अन्य व्यवसायों से जुड़े लोगों के लिए व्यापक नियमावली बनाई जाए। समस्या निराकरण के उपाय करते समय यह सोचना कि कानून के माध्यम से समस्या नियंत्रित हो सकती है, एक बड़ी भूल होगी। बनाए गए कानून का पालन, व्यापक सामाजिक अर्थव्यवस्था आधारित कार्यक्रम तथा शैक्षणिक स्तर उपर उठाने के प्रयास सफलता के नजदीक ले जाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। सक्षम स्वयंसेवी संगठन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। मौलिक रूप से इस कठिन तथा जटिल समस्या के उन्मूलन के लिए समाज की भागीदारी आवश्यक है।

महान उद्देश्यीय रेडक्रास - जानिये पहचानिये

डॉ. एस.सी. नाहटा

रेडक्रास का धर्म है मानव जाति की सेवा। ऐच्छिक संगठनों के मध्य कार्यरत रेडक्रास की अलग पहचान है। उद्देश्य, कार्यक्षेत्र तथा कार्य प्रणाली न केवल उच्चस्तरीय है वरन् मानव सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान भी है। मानवीय सेवा के वर्तमान प्रदूषित वातावरण के बीच आज भी रेडक्रास आदर तथा विश्वास के साथ देखी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अति विश्वसनीय रेडक्रास संगठन की वर्तमान कार्यप्रणाली में सामान्य परिवर्तन से इस संगठन का महत्व और अधिक हो सकता है तथा स्वयंसेवी संगठनों की भीड़ के बीच इस क्षेत्र का सिरमोर बनने में भी सफलता प्राप्त कर सकती है।

रेडक्रास की स्थापना का विचार 1825 में स्वीटजरलैंड के प्रमुख नगर जिनिवा के एक धनाढ्य परिवार में जन्में हेनरी ड्युनॉन्ट की दूरदर्शिता तथा मानवीय दृष्टिकोण का परिणाम है। इस महान संस्था की स्थापना का इतिहास तथा पृष्ठभूमि कम रोचक तथा प्रेरणादायक नहीं है। 1889 के फ्रांस तथा आस्ट्रेलिया के बीच सेलपेरीनो के अचानक हुए युद्ध ने ड्युनॉन्ट को उद्धेलित किया। क्योंकि 15 घंटे की अल्प अवधि के उस विभत्स हादसे में 40 हजार से अधिक सैनिक हताहत हुए थे। यहां तक की आहत सैनिकों में से अनेक की मृत्यु मेडीकल सहायता के अभाव के कारण हुई थी। इस त्रासदी ने ड्युनॉन्ट को झकझोर दिया तथा इस प्रकार के घायलों को कष्ट से मुक्ति दिलाने के उपायों के बारे में विचार करने हेतु बाध्य भी कर दिया। अपने विचार को क्रियान्वयन तथा गति देने हेतु 1862 में "A Memory of Salferono" नामक पुस्तक भी लिखी जो पूरे यूरोप में अल्पसमय में अत्यधिक लोकप्रिय हो गई परिणामस्वरूप सामान्य जनमानस

ने एक संकल्प लिया जिसके अनुरूप राष्ट्रीय संगठनों के स्वयंसेवकों को इस कार्य में होने वाली कठिनाईयों से मुक्ति तथा घायलों को सेवा उपलब्ध कराने हेतु राष्ट्रों के बीच समझौते को आवश्यक सहारा प्राप्त हुआ। अपने महान उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होते हुए ड्युनॉन्ट ने 1863-64 के बीच स्वीट्जरलैंड की सैना के अधिकारी के नेतृत्व में एक समिति गठित की तथा स्वयं ने इस समिति के सचिव के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया। 26 अक्टूबर 1863 को जिनिवा नगर में एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमें यूरोप के विभिन्न देशों के 26 प्रतिनिधियों ने इस प्रकार के संगठन की आवश्यकता को स्वीकार किया। इसी अधिवेशन में प्रतिनिधि दलों ने युद्ध के मैदान में घायलों की सेवा सुरक्षा में लगे सहायता दलों के स्वयंसेवकों की सुरक्षा के लिये एक प्रतीक चिन्ह की आवश्यकता भी प्रतिपादित की। सफेद पृष्ठभूमि में लाल क्रॉस का चिन्ह, जो आज रेडक्रॉस का सिम्बाल है, उपयुक्त मानकर वर्तमान दुनिया के सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध चिन्ह का निर्माण किया। सेवा सुरक्षा में लगे संगठनों को तटस्थ मानने की शर्तों के मसविदे तैयार करने हेतु 8 अगस्त 1884 को जिनिवा में द्वितीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन की विशेषता थी कि इसमें स्वीट्जरलैंड की संघीय सरकार के आमंत्रण पर यूरोपीय राष्ट्रों के 15 राजनयिकों ने भाग लिया जो कि वर्तमान में प्रथम जिनिवा Convention के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं सम्मेलनों में पीड़ित मानवता की सेवा को समर्पित विश्व के सबसे बड़े अशासकीय सामाजिक संगठन की आधारशिला रखी गई।

इस मानवीय कार्य में ड्युनॉन्ट इतने लिप्त थे कि उनके व्यवसाय की सतत उपेक्षा होती रही तथा व्यवसाय पूर्णतया ठप्प हो गया और उन्हें जिनिवा की उनकी सारी सम्पत्ति बेचने को बाध्य होना पड़ा। गरीबी, बीमारी, वृद्धावस्था तथा उनके तथाकथित पूर्व सहयोगियों के उपेक्षा पूर्ण व्यवहार से जीवन के 18 वर्ष उन्होंने एक छोटे से चिकित्सालय में बिताए। इस

सबके बावजूद तथा बाद में 1901 में प्रथम नोबल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया।

इस महान व्यक्ति के कठिन परिश्रम तथा सतत् प्रयासों से 1863 में स्थापित रेडक्रास आज विश्व के 128 देशों में कार्यरत् है। भारत वर्ष में इसकी स्थापना 1920 में हुई जिसकी शाखाएं आज देश के 651 जिला तथा तहसील मुख्यालय पर स्थापित है। मध्यप्रदेश में भी 88 शाखाएँ कार्यरत् है और सदस्यों की संख्या 5,57,394 है। 120 वर्ष पूर्व स्थापित यह संगठन आज International Committee of Redcross के नाम से अपनी पहचान बनाए हुए हैं। बेहतर तालमेल तथा आपसी सहयोग के लिये 128 देशों के राष्ट्रीय संगठनों को लिग ऑफ रेडक्रास सोसायटीज् के अधीन रखा गया है जिसका मुख्यालय जिनिवा में ही है।

विद्यार्थी तथा युवा वर्ग भी इस क्षेत्र के प्रति आकर्षित हुआ। परिणामस्वरूप कनाडा देश के क्युबेक प्रान्त की एक पाठशाला के छात्रों ने 1914 में जूनियर रेडक्रास की स्थापना की आधारशिला रखी जो एक औपचारिक संगठन के रूप में 1919 में अस्तित्व में आया और 1925 में इसकी स्थापना भारत में भी हुई।

संगठन को गतिशील तथा सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने हेतु संचालन व्यवस्था भी प्रभावी है तथा सदस्यता चार स्तरीय है—आजीवन, आजीवन एसोसिएट, वार्षिक तथा संस्थागत।

भारत वर्ष में 1920 में स्थापित रेडक्रास कई युद्धों, प्राकृतिक एवं अन्य विपदाओं के समय सेवा कार्य कर चुकी है। अन्य विशेष कार्यक्षेत्र भी निर्धारित है—जैसे एम्बुलेंस सेवा, ब्लड बैंक की स्थापना तथा जरूरत के समय ब्लड उपलब्ध कराना। किन्तु बदले हुए वर्तमान सामाजिक परिवेश में इस संगठन के कार्यक्षेत्र के विस्तार की आवश्यकता है। अन्य मानवीय समस्याओं तथा आवश्यकताओं जैसे पेयजल, गरीब एवं पीड़ितों को

आर्थिक तथा दवाईयों की सहायता, चिकित्सालय में भर्ती मरीजों की सेवा सुरक्षा में लगे व्यक्तियों के भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति, टीकाकरण, परिवार नियोजन, वृद्धाश्रम तथा अनाथालयों जैसी संस्थाओं की व्यवस्था में सुधार तथा विकलांग व्यक्तियों की समस्या के निराकरण को अपने कार्यक्षेत्र में सम्मिलित करना चाहिये।

ऐच्छिक तथा सामाजिक संगठनों में व्याप्त अव्यवस्था को नियंत्रित करने में भी रेडक्रास अभूतपूर्व भूमिका निभा सकती है। रेडक्रास की छत्रछाया में एक महासंगठन बनाने पर विचार करना उचित प्रतीत होता है। देश तथा प्रदेश में कार्यरत् स्वयंसेवी तथा ऐच्छिक संगठन को प्रस्तावित महासंगठन से सम्बद्ध होना आवश्यक है। महासंघटन सम्बद्ध संगठनों की कार्यप्रणाली तथा कार्यक्षेत्र निर्धारण का कार्य भी करेगा ताकि एक ही प्रकार के कार्य अलग-अलग संघटन न करें क्योंकि इससे धन तथा श्रम दोनों का अपव्यय होता है। किन्तु इसका तात्पर्य कदापि नहीं कि संगठनों का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जावेगा। इससे यह भी निष्कर्ष निकालना अनुचित तथा न्यायोडित नहीं होगा कि रेडक्रास की वर्तमान व्यवस्था ठीकठाक है। वहाँ भी प्रत्येक प्रकार की अव्यवस्थाओं की बातें सुनने-देखने को मिलती है। कई बार तो यह संगठन भी सेवानिवृत्त अधिकारियों के लिये एक चारागाह बन जाता है। जो सर्वथा अनुचित तथा अवांछनीय है। आज का भारतीय रेडक्रास शासकीयकरण से मुक्ति के लिये छटपटा रहा है। इस क्षेत्र को सँवारने के लिये समाजसेवा के क्षेत्र में महारथ हासिल व्यक्ति तथा चिकित्सक समुदाय उपयुक्त हैं और एक उच्च उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को सेवा के क्षेत्र के शिखर तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। प्रतिक्षा है परिवर्तन की आवश्यकता को स्वीकारने की, जो आज दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रही है।

मृत्यु दंड समाप्ति-उचित या अनुचित

मृत्युदंड की समाप्ति हेतु अनेक राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय मंच से चर्चा हो रही है, तथा पैरवी भी की जा रही है। पक्ष-विपक्ष में सार्वजनिक रूप से विचारों का आदान-प्रदान भी किया जा रहा है। इस प्रश्न पर तहकिकात से उजागर होता है कि मृत्युदंड का अस्तित्व मानवजाति के उद्भव के समय से ही माना जाता है और मृत्युदंड हेतु कानूनी प्रावधान का उल्लेख भी संबंधित साहित्य में उपलब्ध है।

मृत्युदंड का उल्लेख 5वीं शताब्दी में रोमन लॉ, सातवीं शताब्दी में इथेंस की ड्रेकाकेनियन नियामवली तथा 14वीं शताब्दी में हिट्टी की संजिता में पाया जाता है। इस हेतु स्थापित कानून 18वीं शताब्दी में चीन के प्राचीन कानूनों में उपलब्ध है। अमेरिका में मृत्युदंड हेतु सर्वाधिक प्रभाव ब्रिटेन का माना जाता है।

इन सबके बाद भी कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त मृत्युदंड की समाप्ति की आधारशिला सर्वप्रथम यूरोप के थियोरिस्टस मान्टेसेक्यु व्होल्टेर, बेन्थम, जॉन बेलर एवं जान हावर्ड के लेखों ने रखी थी। मृत्युदंड समाप्ति के विचार का पुरजोर प्रभाव 1764 में सीजेरे बेकारिया द्वारा लिखित निबंध क्राइम एवम् पनिशमेंट के बाद हो पाया तथा पूरे यूरोप के दंडशास्त्र के बारे में चिंतन पर आंदोलित कर प्रभावित किया। उनके मतानुसार इस प्रकार के दंड ने मानवजाति को कभी भी बेहतर नहीं बनाया, उनके मत में मृत्युदंड प्रथा सदैव त्रुटियों से परिपूर्ण रही और केवल समाज की सुरक्षा हेतु ही थीं। अमेरिकन बार एसोसिएशन तथा 21वीं शताब्दी के उदय के साथ पोप जान द्वितीय ने भी मृत्युदंड की समाप्ति की सलाह दी है। अनेक देशों में मृत्युदंड को निर्गम तथा अमानवीय करार दिया। वर्तमान परिपेक्ष में संयुक्तराष्ट्र संघ के 189 देशों में से सन् 2004 तक 108 देशों में मृत्युदंड समाप्त किया जा चुका है। 13 अन्य देशों में केवल युद्ध संबंधित अपराधों के लिए मृत्युदंड दिया जाने का प्रावधान है अन्य अपराधों के लिए नहीं।

20 अन्य ऐसे भी देश हैं, जिनमें पिछले 15 वर्षों से किसी भी अपराधी को फांसी नहीं लगाई गई। अतः वर्तमान में मृत्युदंड के लिए कानूनी प्रावधान 100 देशों में नहीं है तथा भारत एवं अमेरिका सहित 40 देशों में आज भी मृत्युदंड कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत दिया जा सकता है। मृत्युदंड प्रमुख रूप से हत्या, लूट एवं हत्या, मानसिक विकलांग व्यक्ति को उकसाना, सरकार के विरुद्ध लड़ाई, सेना को विद्रोह हेतु प्रोत्साहन, आतंकवाद, बलात्कार तथा ड्रग ट्रेफिकिंग जैसे जघन्य अपराधों के लिए कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त है। किंतु उपयोग कम ही होता है। उच्चतम न्यायालय ने 1983 में कम उपयोग हेतु मार्गदर्शन भी दिया था।

मृत्युदंड की समाप्ति हेतु अनेक तर्क तथा आधार उपलब्ध हैं। भविष्य में और भी विचार प्रस्तुत किए जा सकते हैं, वैसे भी वर्तमान में भारत वर्ष में 37,000 हत्याएं प्रतिवर्ष होती हैं और मृत्युदंड के प्रावधान के बावजूद भी यह संख्या यथावत है। इंडियन पेनल कोड में भी केपिटल सेन्टेन्स का प्रावधान है, किंतु फिर भी मानव हत्या में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई है।

सामाजिक दृष्टि से मृत्युदंड लगभग अकाल मौत के समान है, जिसमें परिवार तथा समाज विपरीत रूप से प्रभावित होता है। मानवाधिकार भी जीने का अधिकार देता है न की जीवन को समाप्त करने का।

यह भी उतना ही सत्य है कि मृत्युदंड देने में त्रुटियां तथा असमानता भी होती है, यहां तक कि अपराधी की आर्थिक स्थिति तथा जाति, प्रजाति, वंश भी दंड को प्रभावित करते हैं। मृत्युदंड बदले की भावना माना जाता है, तथा नकारात्मक दृष्टिकोण की संज्ञा भी इसे दी जाती है। मृत्युदंड को एक सुविचारीय कृत्य की संज्ञा देकर यह भी कहा जाता है कि हत्या का दुख इस प्रकार की जानबुझकर की गई हत्या से कम नहीं होता है।

मृत्युदंड न्यायिक प्रक्रिया में मिले सबूत के आधार पर दिया जाता है किन्तु अनेक बिन्दु जैसे परिस्थितिक स्थितियाँ, जाँच में जाने-अनजाने में

हुई त्रुटियों, गवाहों की संदिग्ध विश्वसनीयता जैसे अनेक बिन्दु हैं जिनके आधार के परिणाम स्वरूप निर्णय गलत हो जाते हैं, अपराधी बच निकलते हैं और निर्दोष सजा पाते हैं। इस पर रोक लगाना तार्किक आधार पर उचित प्रतीत हो सकता है।

सिक्के का दूसरा पहलू भी तो है, जो चिंतन के लिए बाध्य करता है। हमारे समाने उदाहरण है कि कुछ देशों के अनुभव के आधार पर पूर्व में मृत्युदंड की समाप्ति हेतु लिए गए निर्णय को बदलने के लिए बाध्य होना पड़ा, जैसे अयोवा में 1872 में मृत्युदंड समाप्त किया गया, 1878 में समाप्ति के निर्णय को बदला और 1965 में पुनः निर्णय को बदला। फ्रांस भी एक ओर देश है, जहां पूर्व में समाप्त किए गए मृत्युदंड को पुर्नजीवित करने की जोरदार मांग उठ रही है।

यह भी उतना ही सत्य है कि विभत्स अपराधों के आरोपित व्यक्ति के लिए कमोशन तथा क्षमा का कोई स्थान नहीं हो सकता है। यह भी उतना ही सत्य है कि जिस व्यक्ति ने हत्या, बलात्कार जैसे अमानविय कृत्य किए हो उसे जीने का अधिकार किस आधार पर दिया जा सकता है और क्यों ?

आज भी मृत्युदंड समाप्ति जैसे संवेदनशील विषय पर अमेरिका जैसा समृद्ध तथा गतिशील राष्ट्र भी पूरी तरह विभाजित है। भारत वर्ष में अभी इसकी मांग ने जोर नहीं पकड़ा है। वैसे भी अलग-अलग देशों में स्थानीय व्यवस्था आवश्यक तथा अनेक बिंदु हैं, जिनके आधार पर कानून बनाया जाना या उसमें परिवर्तन करना निर्भर करता है न कि कुछ नया करने के विचार से प्रेरित होकर इस प्रकार के विचारों का प्रस्तुतिकरण करना है। यह कहना सामयिक होगा कि जान एफ. केनेडी, श्रीमती इंदिरा गांधी, राजीव गांधी तथा प्रमोद महाजन की हत्या तथा संसद पर हमले करने वाले व्यक्तियों को अभयदान देने की मांग करना अमानवीय तथा मानव अधिकारों के प्रतिकूल लगती है। अतः मृत्युदंड की समाप्ति एक ऐसा विषय है, जिस पर

जल्दबाजी दबाव तथा भावनात्मक दृष्टिकोण से निर्णय लेना, प्रत्येक मापदंड से अनुचित होगा, क्योंकि इससे अपराधों में वृद्धि की अपार संभावना भी है। उपयुक्त तो यह होगा कि इस विषय पर सार्वजनिक बहस आयोजित की जावे, जिसमें विधि विशेषज्ञों, न्यायपालिका तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त समाज का प्रत्येक वर्ग भागीदारी करे। ऐसे संवेदनशील विषय पर एक संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है न कि भावनात्मक। यह बात स्वीकार करने योग्य है कि मृत्युदंड का प्रावधान तो यथावत रहे, किंतु इसका उपयोग न्यूनतम किया जाए, इस बिंदु को भी सार्वजनिक बहस का विषय बनाने से न्याय संगत उचित उत्तर मिल सकेगा, ऐसा विश्वास है।

पानी की समस्या - निराकरण कब होगा

डॉ. एम.सी. नाहटा

वर्तमान में लगभग पूरा देश पानी के अकाल की दहलीज पर खड़ा है। जैसे ही ग्रीष्मकाल प्रारंभ होने को होता है पानी की किल्लत प्रारंभ हो जाती है। इसके साथ ही प्रारंभ होती है, पानी के अपव्यय, भंडारण व्यवस्था, समस्या के निराकरण के उपायों की आलोचना, उपदेशात्मक तथा नानाप्रकार के आयोजन, समाचार-पत्रों के माध्यम से उपदेश तथा पर्चों का वितरण भी देखने को मिलता है। यह क्रम पिछले कई वर्षों से अबाध गति से चल रहा है— इसमें वृद्धि ही हुई है किन्तु पानी की समस्या जहां कि तहां है— या पिछले वर्ष की तुलना में अधिक मात्रा में ही है। परिणाम स्वरूप जन आक्रोश के दृश्य, स्थानीय रूप से विषम स्थिति, आपसी विवाद तथा अन्य प्रकार की घटनाओं के समाचार भी मिलते रहते हैं।

इस स्थिति का दोष अल्पवर्षा को दिया जाता है। किसी सीमा तक सत्य भी है किन्तु समस्या न तो इतनी सतही है, न ही अल्पकालीन, न ही स्थानीय न ही क्षेत्रीय है। समस्या मूलतः राष्ट्रीय है। इसे अन्तर्राष्ट्रीय भी माना जावे तो अनुचित नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय मानकर समय-समय पर विचार विमर्श भी किया जाता है जैसा कि वर्ष 1998 तथा 2001 में तेहरान में एशियाई सम्मेलन आयोजित हुवे हैं। वर्ष 2001 के सम्मेलन में 28 देशों ने भागीदारी की थी। अतः समस्या की समग्रता पर विचार आवश्यक है ताकि भविष्य में होने वाली भयंकरता की वृद्धि की रोकथाम तथा निराकरण के उपायों पर विचार किया जा सकें। एक समय तो भारत में पानी की उपलब्धता को प्रचुरता की श्रेणी में रखा जाता था— हाँलाकि पूर्व में भी पानी की कमी के कारण निर्मित अकालग्रस्त स्थिति के उदाहरण विद्वमान हैं। शनैः शनैः प्रचुरता अपर्याप्तता की श्रेणी में पहुँच गई है और भविष्य में इससे भी अधिक भयानक होने के पर्याप्त लक्षण दिख रहे हैं। वर्तमान स्थिति

रातों-रात तो निर्मित नहीं हुई है और कारण भी एक नहीं है अनेक हैं। प्रमुख रूप से निम्नांकित कारण वर्तमान स्थिति के लिये उत्तरादीय है—

1. जनसंख्या में अप्रत्याशित वृद्धि, 2. अल्पवर्षा, 3. प्रदुषण, 4. अव्यवस्थित मल निकास, 5. औद्योगिक निस्तारी, 6. कृषि में रासायनिक किटनाशक का उपयोग, 7. अपर्याप्त भंडारण व्यवस्था, 8. वर्षा से प्राप्त पानी का अपव्यव, 9. अन्तर्प्रान्तिय जल विवाद, 10. कुप्रबंधन, 11. राजनैतिक हस्तक्षेप, अव्यवस्था तथा अस्थिरता।

वर्तमान में भी पानी की उपलब्धता को कम नहीं आंका जा सकता है। पृथ्वी के $2/3$ भाग में पानी है और $1/3$ भाग में जमीन है। विडंबना है कि इस पानी का केवल 2 प्रतिशत ही पीने योग्य है। आज 4000 बिलियन वर्ग मीटर पानी उपलब्ध है, किन्तु औसत बहाव 1953 बिलियन वर्गमीटर ही होता है। विडंबना है कि शेष पानी वाष्पीकरण तथा (Soil Moisture) जमीन को गिला करने में नष्ट हो जाता है। इसमें से भी केवल 1100 बिलियन वर्गमीटर पानी ही सतह तथा भूजल जैसे स्रोतों से उपयोग के योग्य होता है। अतः प्राप्त पानी का लगभग 25 प्रतिशत ही खेती, पीने के पानी, सफाई का प्रबंध, स्वच्छता तथा अन्य इस प्रकार के कार्यों के लिये उपलब्ध होता है, वैसे तो वर्षाकाल के चार माह में पानी की उपलब्धता तो प्रचुर मात्रा में होती है और दूसरी ओर ग्रीष्मकाल में अपर्याप्त हो जाती है। अतः अल्पकालीन वर्षाकाल (चार माह) में प्राप्त पानी से पूरे वर्ष की आवश्यकता को पूर्ण करना होता है। यह उचित भंडारण व्यवस्था से तथा वितरण से ही संभव है और तभी आवक तथा वितरण में संतुलन हो सकता है। ऐसा न होने के परिणाम पूरा देश वर्षों से भुगत रहा है। इसका प्रतिकूल प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग पर पड़ता ही है और इन प्रतिकूल प्रभावों के प्रभाव को कम करने के प्रयासों में समय की बर्बादी, शक्ति का हास तथा स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव होना ही है।

पानी की आवश्यकता का सीधा संबंध जनसंख्या से होता है। जनसंख्या के महत्वपूर्ण बिन्दु से संबंधित तथ्य चौकाने वाले हैं। देश की आजादी के वर्ष 1947 में 37 करोड़ थी जो आज 100 करोड़ का आंकड़ा पार कर चुकी है। जनसंख्या प्रति क्षण चक्रवृद्धि ब्याज की तरह बढ़ रही है और एक वर्ष में इस देश में एक नया ऑस्ट्रेलिया उत्पन्न हो जाता है। वर्तमान गति से यह संख्या सन् 2010 में 120 करोड़, 2025 में 130 करोड़ तथा 2050 में 150 करोड़ से अधिक हो जावेगी। स्वाभाविक रूप से पानी की आवश्यकता उसी अनुपात में बढ़ेगी जिसकी पूर्ति वर्तमान प्रबंधन व्यवस्था से संभव नहीं है। यह जानना सामयिक होगा कि वर्तमान में वर्षा से प्राप्त पानी का 10% ही भण्डारण होता है। इससे सन् 2050 में होने वाली स्थिति का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है जब देश की आबादी 150 करोड़ का अंक पार कर चुकी होगी। वर्ष 1947 में भारत में प्रति व्यक्ति 5000 वर्गमीटर पानी उपलब्ध होता था जो आज घटकर 1950 वर्गमीटर हो गया है और भविष्य में 1000 वर्गमीटर हो जावेगा। इन तथ्यों से हमारी राजनीतिक चेतना तथा योजना का अनुमान सरलता से हो सकता है। हमारे शासकों ने राजनैतिक कारणों से इस गंभीर विषय पर आज तक चिन्तन ही नहीं किया, जिसके दुष्परिणाम देशवासी भोगने को बाध्य हैं।

यह जानना भी आवश्यक है कि पानी का उपयोग मानवीय कार्यों के लिये, खाद्य सामग्री, खाद्यान्न तथा ऊर्जा के उत्पादन, कृषि, उद्योग, परिस्थिति विज्ञान, वातावरण एवं जीवन स्तर में सुधार हेतु किया जाता है। अपर्याप्त मात्रा में उपलब्धता के कारण विपरित प्रभाव तो होना ही है, जिसका भार देश के स्वास्थ्य पर पड़ता है।

पानी की कमी समस्या के निराकरण हेतु समय-समय पर विभिन्न व्यक्ति, समूह, विशेषज्ञों तथा संगठनों ने उपाय सुझाए हैं। मैं संबंधित विषय विशेषज्ञों की राय को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ, बशर्ते की उनमें

मत-भिन्नता न हो, उपाय कम खर्चीले तथा कम समय में किये जाने वाले हों। उदाहरणार्थ—

1. इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने परम्परावादी उपायों की पैरवी की है और इन उपायों को पुर्नजीवित करने की सलाह भी दी है किन्तु एक नहीं कई कारणों से इनकी सफलता संदिग्ध मानी जाती है।

2. विश्व बैंक के अनुसार संसाधन विकास के स्थान पर संसाधन प्रबंधन की ओर ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। इस विचार के क्रियान्वयन के लिये वर्तमान संसाधनों में सुधार, रख-रखाव तथा कमियों को दूर करना आवश्यक है।

3. विश्व बांध आयोग (World Commission on Dam) के मतानुसार भविष्य की आबादी की पानी की आवश्यकता पूर्ति हेतु छोटे-छोटे भण्डारण बनाने तथा उपलब्ध भण्डारणों को दुगना करना चाहिए।

इस संस्था ने तो दूरस्थ स्थानों से पानी लाने की व्यवस्था के भी विरुद्ध मत व्यक्त किया है ताकि धन के लगभग अपव्यय तथा इस प्रकार के प्रयासों से होने वाले मानवीय कष्टों से बचा जा सके।

वैसे तो पानी की कमी को दूर करने तथा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास प्रारंभ हो चुके हैं। विकासशील देशों में सुखे तथा जल प्रबंधन के मुद्दों पर शोध अनुसंधान तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठान स्थापित करने का निश्चय हुआ है। यह स्वागत योग्य है किन्तु इनके परिणाम आने तक पानी के लिये प्रतिकक्षा तो नहीं की जा सकती है। हमारे सामने विकल्प भी सीमित है। अतः हमें दो दिशा में प्रयास करने चाहिए—

1. भण्डारण क्षमता में वृद्धि।

2. वितरण व्यवस्था में सुधार तथा अपव्यय में रोक।

भण्डारण क्षमता को दुगुनी करने से समस्या पर नियंत्रण हो सकता है। इस वृद्धि हेतु नदी घाटी में छोटी, मझली तथा बड़ी क्षमता वाले जलाशयों के निर्माण से वर्षाकाल से समुद्र में जाने वाले पानी पर रोक लगेगी तथा पूरे वर्ष मानवीय उपयोग के लिए पानी उपलब्ध होगा।

भण्डारण क्षमता में वृद्धि के अतिरिक्त पानी के सार्थक उपयोग पर भी बल देना होगा। यह कार्य एक प्रभावी अभियान से संभव हो सकता है। अन्य प्रयास जैसे पानी के संरक्षण के उपाय तथा तकनीक के कड़ाई से पालन से भी पानी की समस्या के निराकरण तथा कमी को दूर करने में सहायता मिल सकती है। इस विषय पर शोध तथा अनुसंधान से पानी का शुद्धिकरण तथा पुनः उपयोग में वृद्धि हो सकेगी— फलस्वरूप पानी की कमी की मात्रा कम हो जावेगी। इस प्रकार के प्रयोग से ईरान तथा अन्य पश्चिम एशियाई देशों में पानी की समस्या से निजात पाने में सफलता मिली है। ईमानदारी से कार्य किया जावे तो भारत में भी शुद्धिकरण जैसे प्रयोग के माध्यम से पूर्णतः नहीं तो कम से कम आंशिक रूप से तो समस्या की भयानकता को कम करने की दिशा में अग्रसर हो ही सकते हैं। अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र में भी कई वस्तुओं की रिसाईक्लिंग कर पुनः उपयोग प्रणाली को अपना लिया है।

इस मानवीय समस्या के निराकरण हेतु स्वयंसेवी संगठन जैसे रोटरी तथा लायन्स अंतर्राष्ट्रीय, स्थानीय, प्रादेशिक तथा धार्मिक संगठन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम हैं।

पानी की समस्या के निराकरण हेतु अन्य उपाय भी ढूंढे जा सकते हैं। जैसे— स्टॉप डेम का निर्माण, स्थानीय परम्परागत भण्डारण स्रोत जैसे कुंए, बावड़ी तथा तालाब से प्रतिवर्ष समय से पूर्व मिट्टी निकालकर भण्डारण क्षमता में वृद्धि, सार्वजनिक स्थानों पर नलों से बहते पानी की रोकथाम जैसे उपायों से अल्पकाल के लिये ही सही पानी की उपलब्धता में वृद्धि की

जा सकती है किन्तु हमारे सामने लाख टके का सवाल है कि वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य किसी भी समस्या के निराकरण के लिए गंभीर तथा सक्षम है ? इसका ज्वलंत उदाहरण गतवर्ष भी देखने को मिला जबकि भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रायोजित Accelerated Rural Water Supply (ARWSP) कार्यक्रम के अंतर्गत उपलब्ध आर्थिक सहायता की प्रथम किश्त भी तीन राज्य- बिहार, झारखण्ड तथा मणिपुर लेने में असमर्थ रहे। इसके अंतर्गत बिहार को 72.74 करोड़, झारखण्ड को 36.19 करोड़ तथा मणिपुर को 16.43 करोड़ रुपयों के आवंटन का प्रावधान किया गया था।

अतः स्पष्ट है कि वर्तमान प्रशासनिक अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, अक्षम तथा स्वार्थी सरकारों के रहते मानवीय समस्या के निराकरण तथा जीवन के लिए अत्यधिक आवश्यक पानी जैसी वस्तु की अपेक्षा कैसे की जा सकती है।

आतंकवाद का इतिहास

आतंकवाद वर्तमान में एक स्थानीय, प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय समस्या नहीं, रह गई है वरन् एक विश्विय समस्या का रूप ले लिया है। भारत वर्ष इस समस्या से लंबे समय से जूझ रहा है, जो कि थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद अलग-अलग रूप में हमारे सामने आता है और इसको नियंत्रित करने के प्रयास असफल होते जाते हैं। इन आतंकवादी गतिविधियों के फलस्वरूप जन-धन की अपार हानि तो होती ही है, किंतु साथ ही वातावरण दूषित होता है, तनाव बढ़ता है, आपसी संबंध खराब होते हैं और असुरक्षा की भावना प्रबल हो जाती है। वर्तमान में भारत के संबंध में यही कहा जा सकता है कि इस समस्या ने देश के लगभग किसी भी भाग को अछूता नहीं छोड़ा है। अतः आवश्यक है कि इस समस्या की उत्पत्ति तथा इतिहास पर हम प्रकाश डालें, ताकि समस्या के कारणों को हम ठीक से समझ सकेंगे और उस पर नियंत्रण के प्रयास भी निष्ठापूर्वक हम उसी दिशा में कर सकेंगे। आतंक शब्द की उत्पत्ति तथा आतंकवाद 18वीं शताब्दि की फ्रेंच क्रांति के समय तत्कालीन शासनकर्ता मैक्समिलन रौबस्पिरे ने की थी। उनका विश्वास था कि आतंक द्वारा ही विरोधियों को समाप्त किया जा सकता है और इसी के अनुरूप उन्होंने 40,000 से अधिक विरोधियों को यंत्र (गिलिटिन) द्वारा समाप्त कर दिया था। इस कृत्य के कारण मैक्समिलन रौबस्पिरे की तुलना नाजी, इटली के फासिस्ट तथा रूस के स्टालिन से की जाती है, जिनकी वर्तमान में सर्वत्र निंदा तथा भर्त्सना की जाती है।

इतिहास को देखने से पता चलता है कि सर्वप्रथम आतंकवाद धर्म आधारित था तथा दूसरे धर्म के अनुयायियों को आतंकित करने की दृष्टि से किया जाता था। यह बात सर्वप्रथम भिलाट नामक यहूदी समूह ने रोमन तथा ग्रीक सत्ताधारियों पर सरेआम आक्रमण कर आतंकित करने का प्रयास किया था। इसी प्रकार 'सिकारी' नामक एक अन्य यहूदी संगठन ने उन

यहुदियों की हत्या कर दी थी, जिन्होंने धर्म परिवर्तन कर लिया था। इसी के समकक्ष 11वीं शताब्दि में एक भिन्न मुस्लिम समूह उन व्यक्तियों की हत्या कर देते थे, जो उनके अनुसार मुस्लिम लॉ से भटक गए थे। इसी प्रकार ठगी एक भारतीय पूजा पद्धति के अनुयायियों ने एक शताब्दि में लगभग 10 लाख से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु के कारण थे, जो यात्री का अपहरण कर समाज को आतंकित करने के उद्देश्य से कालीदेवी के सम्मुख बलिदान कर देते थे।

समय के साथ आतंकवाद के उपरोक्त स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान आधुनिक आतंकवाद का स्वरूप 19वीं शताब्दि से अस्तित्व में आया, जब एक इटेलियन क्रांतिकारी कैरियो पिसाकेन ने इंगित किया कि—आतंकवाद संदेश देने का तथा समाज का ध्यान आकर्षित करने का माध्यम है तथा आवश्यक उद्देश्य प्राप्त करने में सहयोग प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के आधुनिक आतंकवाद के उदाहरण भी उपलब्ध है और 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध का कारण भी है। वर्तमान आधुनिक आतंकवाद हेतु 1960 एक चिन्ह के रूप में देखा जाता है। पेलेस्टीन का पी.एल.ओ., आयरलैंड का आय.आर.ए. तथा अन्य आतंकवादी समूह ने इसी समय के धार्मिक या अन्य कारणों से सभ्य समाज पर आतंकवादी हमले आरंभ कर दिये। 1972 के म्युनिख में आयोजित ओलम्पिक खेल के समय 11 इसराइली एथलीट का अपहरण पेलेस्टीन के आतंकवादी समूह ने किया था, जिसमें उन्हें बचाने के प्रयास में उन्हें मार डाला गया।

इस प्रकार के आतंकवाद के परिणाम स्वरूप सीरीया, लिबिया, इरान, इराक, तथा पाकिस्तान जैसे देशों ने आतंकवादी संगठनों को आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता देकर आतंकवादी गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जिसके पीछे एक मात्र उद्देश्य रहा है कि उपरोक्त देशों में आतंकवादी गतिविधियों को संचालित कर भारत जैसे देश में अस्थिरता तथा आतंरिक

अशांति पैदा की जावे ताकि उन देशों में शासनकर्ताओं का स्थायित्व बना रहे तथा सामान्य जनमानस का ध्यान देश में व्याप्त कठिनाईयों की ओर न जा पावे । इस प्रकार का एक का उदाहरण 1979 का इरान में घटित आतंकवादी घटना के रूप में हमारे सामने हैं । स्थानिय कुछ विद्यार्थियों ने अमेरिका के 66 नागरिकों का अपहरण कर उनमें से 52 को 444 दिन तक बंधक बनाकर रखा था।

इन अनियंत्रित आतंकवादी गतिविधियों से प्रोत्साहित आतंकवादी संगठनों ने अमेरिका तथा बाद में इंग्लैंड जैसे सुरक्षा की दृष्टि से सशक्त देशों में आतंकवादी गतिविधियां संचालित कर उन देशों को हिलाकर रख दिया। उन्हीं का परिणाम है कि वह देश भी आतंकवाद को समाप्त करने की घोषणा कर चुके हैं ।

एक अहम प्रश्न हमारे सामने हैं कि उन्नत राष्ट्र उन देशों को जिनमें राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवादी गतिविधियों को सहायता देने के आरोप हैं उनकी आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता देना बन्द करें । राजनीतिक संतुलन तथा अन्य कारणों का बहाना बनाकर पीड़ित तथा पीड़ा पहुँचाने वाले देशों के साथ समान रूप से व्यवहार करना बन्द करे । यदि ऐसा होता रहा तो आतंकवादी गतिविधियों को समाप्त करने का हमारा संकल्प तथा सार्वजनिक घोषणा स्वप्न बनकर ही रहेगी।

जम्मू काश्मीर का इतिहास

डॉ. एम.सी. नाहटा

काश्मीर प्राकृतिक सुंदरता हेतु पूरे विश्व में अलग पहचान बनाकर देशी विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। देश-विदेश से प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में पर्यटक काश्मीर की यात्रा करते हैं। हालांकि आतंकवादी गतिविधियों ने इसमें अवरोध उत्पन्न किया है— सामान्य स्थिति बहाल होने पर पर्यटकों के प्रतिशत में अच्छी बढ़त की अपेक्षा हो सकती है। प्राकृतिक सुंदरता के अनुरूप ही काश्मीर का इतिहास भी रोचक है।

संस्कृत भाषा में का का अर्थ है पानी तथा शिमीरा से तात्पर्य है सुखाना। 12वीं शताब्दी में लिखे गए इतिहास रजतारांगनी के अनुसार काश्मीर से तात्पर्य है कि वह जमीन जो पानी के सुखाने से उपलब्ध हुई है। हिन्दू पुराण के अनुसार ब्रह्मपुत्र मरीची के पुत्र बुद्धिमान ऋषि कश्यप ने एक झील को खाली की और उसके स्थान पर स्थित वर्तमान में काश्मीर के नाम से पहचानी जाने लगी है। इसी परिप्रेक्ष्य में मौर्य सम्राट अशोक ने श्रीनगर शहर की स्थापना की थी जो एक समय बुद्धिजम हेतु चिंतन (लर्निंग) का स्थान था। 4थी शताब्दी में भारतीय परिवार में जन्में कुचानीज मांक कुमारजीन ने बुद्धत्व का अध्ययन किया तथा इसे चीन ले गए।

13वीं शताब्दी में इस्लाम धर्म काश्मीर का प्रमुख धर्म था और अधिकतर सुफी सम्प्रदाय के अनुयायी थे जो हिन्दू मुस्लिम के बीच सौहार्द्रपूर्ण वातावरण के पक्षधर थे। यहां तक कि एक ही स्थान पर आराधना भी करते थे। इस परिप्रेक्ष्य में काश्मीर के सुल्तान झेन-उल-अबीदीन के नाम का उल्लेख प्रासंगिक है जिनकी तुलना अकबर बादशाह से की जाती थी। इसके विपरित एक अन्य शासक सिकंदर बटशीकन हिन्दूओं पर अत्याचार करते थे— परिणामस्वरूप अनेक कश्मीरी पंडितों ने धर्म तथा देश छोड़ने के बजाए आत्महत्या करना उचित समझा और किया भी। इसी

शासक ने हिन्दुओं के अनेक मंदिरों तथा वहां स्थापित मूर्तियों को नष्ट किया और उसकी पहचान एक नष्टवादी के रूप में बनी।

सन् 1700 के उत्तरार्द्ध तथा 1800 के पूर्वार्द्ध में पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह जी का शासन स्थापित हुआ। उनके प्रमुख सहायक गुलाबसिंह जी तथा उनके अधिनस्थ जोरावरसिंह जी ने लद्दाख तथा बल्टी स्थान पर विजय प्राप्त की थी।

1845-46 में महाराजा रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी तथा अंग्रेजों के बीच युद्ध में ब्रिटिश सेना ने विजय प्राप्त कर युद्ध विराम हेतु 1.5 मिलियन पौंड की मांग की थी। इतनी बड़ी राशि देने में असमर्थ होने के कारण लाहौर दरबार को व्यास तथा इंडस नदी के बीच का पूरा राज्य अंग्रेजी हुकुमत को देने का बाध्य होना पड़ा— इसी का परिणाम था कि 1946 की अमृतसर संधी के अंतर्गत 16 मार्च 1946 को महाराजा गुलाबसिंह को मान्यता मिल पाई। इसका सीधा लाभ 7,50,000 रुपए की राशि की प्राप्ति तथा एक मध्यमवर्ती सीमा प्रांत बनाने में सफलता एवं एक पहाड़ी सरहदी प्रांत में होने वाले प्रशासकीय व्यवस्था पर होने वाले खर्च से बचने में अंग्रेजी शासन को मिल गया।

19वीं शताब्दी में काश्मीर एक लोकप्रिय पर्यटक स्थान बन गया जहां आरंभ में केवल 200 पर्यटकों को जाने हेतु अनुमति पत्र दिए जाते थे किन्तु अब पर्यटकों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं है। भारतीय पर्यटक तथा यूरोप के खिलाड़ी तथा यात्री इस सुंदर पर्यटक स्थल का आनंद लेने हेतु जाने लगे। बदलते मौसम के मिजाज के अनुरूप जून माह में श्रीनगर का पारा बढ़ता है— अतः वहां के निवासी फेशनेबल पहाड़ी स्थल गुलमर्ग की ओर पलायन करते थे— इसके कारण खिलाड़ियों के अवसरों में कमी आने लगी जिसकी रोकथाम हेतु विशेष नियम लागू किए गए थे। वर्ष 1947 का विशेष महत्व है— जम्मू तथा काश्मीर भारत तथा पाकिस्तान के बीच स्थित

है । उस समय 565 राजा महाराजाओं द्वारा शासित राज्य थे । प्रत्येक शासक को भारत या पाकिस्तान में विलय हेतु निर्णय लेना था । जम्मू काश्मीर के तत्कालीन शासक हरीसिंह जी निर्णय नहीं ले रहे थे, क्योंकि उनके मन में स्वतंत्र काश्मीर का शासक होने का विचार हिंडोले ले रहा था। निर्णय से बचने हेतु उन्होंने पाकिस्तान के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर कर उस देश से व्यापार, यात्रा तथा संचार जैसी सेवा रखने का अनुबंध कर लिया— भारतवर्ष ने ऐसा कोई समझौता नहीं किया ।

तत्पश्चात भारतीय सेना ने जूनागढ़ तथा हैदराबाद को अपने नियंत्रण में ले लिया और इसी समय से भारतीय डाक तार विभाग ने काश्मीर को भारत का अंग बताना आरंभ कर दिया । इसे खतरा मानकर अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान के उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत से पखतुनों ने काश्मीर के पुंछ जिले में महाराजा के विरुद्ध विद्रोह कर रहे लोगों की सहायता हेतु आक्रमण कर दिया । वहां बढ़ते हुए उत्पात तथा अराजकता से परेशान तत्कालीन शासक ने भारत से सेन्य सहायता तथा आश्रय हेतु अनुरोध किया जिसे भारत ने अस्वीकार कर चाहा कि काश्मीर का भारत में स्थायी विलय किया जावे । इस मत का समर्थन श्री माउंट बेटन ने भी किया था । किन्तु शासक हरीसिंह जी को यह मान्य नहीं हुआ । बाद में 26 अक्टूबर 1947 को महाराजा ने काश्मीर के विदेशी मामलों , रक्षा तथा संचार व्यवस्था भारत के अंतर्गत रखने हेतु एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए ।

दूसरे ही दिन भारतीय सेना हवाई मार्ग से काश्मीर भेजी गई । अपेक्षानुसार पाकिस्तान सरकार ने इस विलय का विरोध कर कहा कि यह कार्य दबाव में एक अवैध शासक ने किया है । भारत समर्थक काश्मीर के प्रमुख राजनीतिक दल के सर्वेसर्वा शेख अब्दुल्ला ने भी इसकी भर्त्सना कर कहा कि यह कार्य दबाव में एक अवैध शासक ने किया है । पूरे घटनाक्रम पर तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तानी प्रधानमंत्री को

लिखे गए पत्र के माध्यम से स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि हमारा उद्देश्य काश्मीर की जनता को अपने भविष्य के बारे में निर्णय लेने का अधिकार देना है जो जनमत द्वारा पूरा किया जाएगा। इतिहासकार एलस्टन लम्ब के अनुसार हकीकत कुछ और है तथा तकनीकी तर्कों के आधार पर उन्होंने इसे असत्य करार देने का प्रयास किया।

1996 में जिनेवा स्थित अंतर्राष्ट्रीय विधिवक्ता आयोग ने अपने निर्णय में कहा कि जम्मू काश्मीर की जनता को भारत के विभाजन के आधार पर प्राप्त जनमत संग्रह के अधिकार पर न तो अभी तक कार्यवाही हुई है न ही इसे स्थगित किया गया— अभी इस पर कार्यवाही होना शेष है।

1949 में भारत सरकार ने महाराजा हरीसिंह जी को जम्मू काश्मीर छोड़ने की अनुमति देने के साथ ही शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में सरकार गठन करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। तभी से भारत पाकिस्तान के बीच शत्रुता का गंभीर वातावरण निर्मित हुआ और अभी तक दोनों के बीच तीन युद्ध लड़े जा चुके हैं। 1989 में सोवियत रूस तथा अफगानिस्तान के बीच युद्ध समाप्ति के साथ ही आतंकवादी गतिविधियों का विस्तार हुआ जो सतत है और भारत में सुख शांति के वातावरण में अवरोध का काम कर रहा है जिसे हटाना आवश्यक है।

भारतीय लेखक संघ - परिचय

डॉ. एस.सी. नाहटा

भारतवर्ष में साहित्य तथा साहित्यकारों का इतिहास लंबा है। साहित्य भी उच्च श्रेणी तथा विविध प्रकार का उपलब्ध है। उच्च श्रेणी के साहित्यकारों में गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर, शरदचन्द्र, जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, निराला, प्रेमचंद, हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, आशापूर्णा देवी, महाश्वेता देवी इत्यादि के नाम गर्व के साथ लिए जाते हैं। इन व्यक्तियों के कार्य तथा रचनाओं ने देश का नाम गौरवान्वित किया है। किन्तु समय के साथ तथा वर्तमान परिवर्तित सामाजिक परिवेश ने इस क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। न केवल गुणवत्ता में हास हुआ है वरन अच्छे साहित्य की उपलब्धता में भी कमी आई है जो कि एक चिंता का विषय है। परिवर्तन तथा सुधार के लिए एक नहीं अनेक प्रकार के प्रयास आवश्यक है। इन प्रयासों में सभी स्तरों तथा वर्गों के लोगों की भागीदारी आवश्यक है। इस चिंतनीय विषय की विषमता दूर करने हेतु समान विचार वाले लेखकों ने विचार विमर्श प्रारंभ किया, सतत् चर्चाएं की, विषय के समस्त बिंदुओं पर विचारों का आदान-प्रदान तथा अंत में एक रचनात्मक निर्णय लेकर 1985 में भारतीय लेखक संघ की स्थापना की। स्थापना के साथ ही कार्यक्षेत्र तथा कार्यप्रणाली निर्धारित की, संविधान बनाया तथा संस्था के निम्नांकित उद्देश्यों को मान्यता दी थी।

उद्देश्य—

1. भारतीय लेखकों को एक मंच पर लाना।
2. लेखकों के अनुभवों से एक दूसरों को लाभांवित करना।
3. साहित्यिक क्षेत्र में आपसी विचार-विमर्श तथा चर्चा से नई-नई विधाओं का सृजन करना।

4. लेखक सदस्यों की पुस्तकों के प्रकाशन हेतु प्रकाशकों को ढूंढना तथा उनसे मधुर एवं आत्मीय सहयोग स्थापित करने में सहयोग-सहायता।

5. लेखकों से संबंधित महत्वपूर्ण बिंदुओं जैसे कापीराइट बोर्ड की स्थापना तथा रायल्टी को कर में छूट के लिए शासकीय तंत्र से संबंध स्थापित करना।

6. पुस्तकालय तथा सामग्री न्यूनतम मूल्य पर उपलब्धि की व्यवस्था।

7. बैठक, सेमीनार, कार्यशाला के आयोजनों के माध्यम से नवगत साहित्यकारों को क्षेत्र के स्थापित व्यक्तियों से संबंध, मेलजोल बढ़ाने में सहायता तथा साहित्य के प्रति रुचि में विकास।

संगठन संस्था को सूचारू रूप से संचालित करने हेतु संगठन का एक संविधान भी बनाया गया है और संविधान के अनुरूप कार्य करना आवश्यक माना गया है।

संस्था ने सदस्यों की कठिनाईयों की ओर विशेष ध्यान देकर सदस्यता दो प्रकार की बनाई है—

1. आजीवन

2. मानद (Honorary)

इस लचीली व्यवस्था के परिणामस्वरूप संस्था साहित्यकारों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी है। वर्तमान में आजीवन सदस्यों की संख्या 250 है।

संस्था ने साहित्य तथा साहित्यिक कार्यों के विकास हेतु आज तक देश के विभिन्न स्थानों में 15 से अधिक आयोजन किए हैं। संस्था की स्थापना के एक वर्ष बाद 1986 में प्रथम आयोजन दिल्ली में तथा वर्ष 2003 का राष्ट्रीय सेमीनार मध्यप्रदेश के प्रमुख नगर इन्दौर में आयोजित है।

प्रसन्नता की बात है कि अलग-अलग क्षेत्र के प्रमुख तथा गणमान्य नागरिक जैसे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा, के.आर. नारायणन, श्रीमती नजमा हेपतुल्ली, प्रो. सचिदानंदन, प्रो. आमचेरी जैनेंद्रकुमार, मैक्सवेल पेरा जैसे अनेक विद्वानों ने समय-समय पर संस्था की गतिविधियों में भाग लेकर संस्था तथा संस्था के कार्यों को गति देने में सहयोग तथा सहायता देकर कृतार्थ किया है।

भारत सरकार के मानव संसाधन, विज्ञान तथा तकनीकी मंत्रालय, नेशनल ट्रस्ट, सी.एस.आय.आर. दिल्ली प्रशासन नई दिल्ली स्थित हिन्दी, ऊर्दू तथा पंजाबी अकादमी ने भारतीय लेखक संघ को मान्यता प्रदान कर संस्था तथा साहित्यिक क्षेत्र के विकास में अभूतपूर्व भूमिका निभाई है।

वर्तमान में पठन-पाठन के प्रति लुप्त होती हुई रुचि को पुनर्जीवित करने हेतु सन् 2003 में एक तर्क संगत विषय “Rediscovering Pleasures of Reading” राष्ट्रीय सेमीनार के लिए चुना है। इस महत्वपूर्ण विषय के विभिन्न पहलुओं पर देश के विभिन्न क्षेत्रों से आने वाले विद्वान शोधपत्र तथा विचारों की प्रस्तुति देंगे।

संस्था ने प्रारंभ से ही खुली नीति अपनाई है और स्थानीय प्रादेशिक स्तर पर भी साहित्यिक गतिविधियों आयोजन करने की स्वतंत्रता दी है। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संस्था समय-समय पर प्रदर्शनी (Book Exhibition) आयोजित करती है। अन्य गतिविधियों के अंतर्गत राष्ट्रीय स्तर पर एक त्रैमासिक पत्रिका इंसान्यूजलेटर के नाम से प्रकाशित होती है। प्रसन्नता की बात है कि मध्यप्रदेश के इन्दौर शहर से भी प्रकाशन प्रारंभ किया है। मध्यप्रदेश के अलावा दो अन्य राज्यों में भी प्रांतीय शाखाएं कार्यरत हैं। संस्था ग्रामीण क्षेत्रों में पढ़ने लिखने के कार्य में रुचि बढ़ाने हेतु विशेष रूप से प्रयासरत है। ग्रामीण क्षेत्रों में संस्था एक त्रीसदस्यीय दल भी भेजती है जो महिलाओं, बच्चों तथा पढ़े लिखे लोगों से अलग-अलग

समूह में चर्चा करते हैं। इसी प्रकार का आयोजन शहरी क्षेत्रों में भी किया जाता है और युवा वर्ग, कम आय वाले परिवार के बच्चों तथा बुद्धिजीवी वर्ग से चर्चा करते हैं।

संस्था की प्रबल इच्छा है कि साहित्यिक क्षेत्र तथा सतत् लेखन कार्य करने वाले प्रबुद्ध वर्ग के व्यक्ति संस्था की सदस्यता लेकर संगठन को शक्ति प्रदान करे तथा साहित्यिक क्षेत्र का गुणवत्ता आधारित विकास करें।

एक सुझाव है कि राष्ट्रीय, प्रादेशिक तथा स्थानीय स्तर की समस्त संस्थाएं अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखकर एक महागठबंधन बनाएं। इस सुझाव के क्रियान्वयन से जनमानस में लिखने पढ़ने में रुचि को बढ़ाने में सहायता मिलेगी तथा अन्य गतिविधियां अधिक सुचारू रूप से संचालित हो सकेगी। संस्था का यह भी विश्वास है कि आने वाले वर्षों में भारतीय लेखक संघ भारतीय लेखकजनों का प्रमुख संगठन बनेगा तथा देश के साहित्यिक क्षेत्र को अत्यधिक गुणवत्ता आधारित बनाने में अहम भूमिका निभा सकेगा।

WORLD STANDARAD DAY

Dr. M.C. Nahata

Standard and standardization are the hallmarks of quality and success for business both big and small. Vital and Crucial role is played by standards in our every day life and for the safety and security of people throughout the world. Standards build Nations economy and play significant role in free trade as well.

Celebration of World Standard day is comparable to such events in other walks of life like Senior citizen day on 2nd October, World Disabled day on 3rd December and many more. However, the World Standard Day is celebrated on 14th October every year world over with the exception of U.S.A., Finland and Italy where it is celebrated on 11th, 13th and 18th October respectively, the universal aim and objective being to raise the awareness of importance of global standardization to the world economy and promote its role in helping meet the needs of business, industry, Govt. and consumers world wide. This international event pays tribute to thousands of volunteers around the world who participate in standardization activites. For promotion of aims and objectives as said the three organizations viz International Electro Technical commission (IEC) International organization for standardization (I.S.O.) and International Telecommunication Union (ITU) gives a Theme and Slogan each year-- For the current year being "STANDORDS: BIG BENEFITS FOR SMALL BUSINESS" is significant for many reasons. Such Themes and Slogans were also given in the past years as well:

Year	Theme	Slogan
1995	Transportation	A world on the move International Standards transport people, energy Goods and Data
1996	Sevices	Raising standards for services
1997	Trade	World trade needs worldwide Standards.
1998	Standards in daily life	
1999	Standards in construction industry	Building on Standards
2000	International Standards for peace And Prosperity	Harmony for Prosperity
2001	Environment	The Environment and Standards close Together
2002	Standards and conformity together	One Standards, one test accepted Everywhere
2003	Information and commu- nication Technology	Global Standards for Global Information
2004	Standards connect the world	
2005	Standards for safe world	

Thus through the Themes and Slogans so derived, projected, circulated and publicized highlight the different aspects of the subject and help in the development of

standards we desire and aim at for business and industry and adoption of economic liberalization in real sense.

On this auspicious day in the year of globalization we must apply our mind to "WHY STANDARDS MATTER" and to put it the other way "WHAT IF STANDARDS DID NOT EXIST". Thus it could be said that if there are no standards it will be noticed sooner than later. Standards make enormous contribution to most aspects of our lives but may be invisible. It is when there is absence of Standards importance is brought home. For example as purchaser or user of products we soon notice when they turn out to be of poor quality and are incompatible with equipment we already have are unreliable and dangerous. When products meet our expectations we tend to take them for granted. We are usually unaware of the role played by standards level of quality, safety, reliability, and efficiency and interchangeability in providing such benefits at an economical cost. I will cite an example to substantiate: HOW STANDARDS PAY- I am referring to the discovery of Design standard for the practical and low priced writing instrument- The Ball Point Pen-developed in 1943 by LADISLAS, which flooded the world market- history of which can be traced to 1800. The credit of development of ball pen goes to an HUNGARIAN person-LADISLAS who developed a process on capillary to work in conjunction with a tiny ball fitted at the tip of the pen. As the ball moved along the paper it picked up ink from a cartridge applying it cleanly and smudge free. He established a factory in ARGENTINA. The pen popularized as the BIROME and was the world's first

practical pen—This is the outcome of manufacture of an article with desired and necessary standard.

As a matter of fact International Standards are a key driving force for world commerce, Nation's economy and public.

The slogan and theme for the current year expects attention to small and medium sized business since they provide significant impetus to world economy and get benefit from International Standards. The Managers of this segment of business are hard working with limited resources and not in a position to acquire International Standards. However, organizations-- I.S.O., I.E.C. and I.T.U. have developed Standards, which help economic developments and dissemination of technologies that empower small business and provide practical solution to challenges faced by them.

It is gratifying to note that the Theme and Slogan for the current year is related to small business for their benefits. Industrial development of any country depends on small business and thus the role of small scale industries (SSI) is significant since it provides higher growth of employment, out put, promotion of exports and foster entrepreneurship evident by the fact that it employees 28 million people, produces 7500 Industrial items, have 90 P.C. Of industrial units and credited for 35 P.C. of total Export.

During the pre independence period Standardization Activity was sporadic and confined mainly to a few governments purchasing organization. However, immediately after independence, economic development

through coordinated utilization of resource was called for and the Governments recognized the role for standardization in gearing Industry to competitive efficiency and quality production. The Indian standards institution (ISI) was therefore setup in 1947 as a registered society under a government of India resolution.

The Indian Standards Institution gave the Nation the Standards it needed for Nationalization, orderly Industrial and Commercial growth, Quality production and Competitive efficiency, however in 1986 the government recognized the need for strengthening this National Standards body due to fast changing Socioeconomic scenario and accorded it a statutory status.

At this stage I pay tribute to the organization, Bureau of Indian Standards that was constituted by an Act of Parliament in the year 1986. Which has granted more than 30000 Licenses to manufactures covering practically every Industrial Discipline from Agriculture to Textile and Electronics. And the certification allows Licenses to use the popular ISI mark for which every body craves since it has become synonymous with quality product for the Indian and Neighbouring markets over past 50 years. And is open to manufactures in all countries without discrimination and broad areas covered are 14 in number.

It is heartening to know that BIS is handling operation of Rajiv Gandhi National quality Award instituted in 1991 for encouraging Indian Manufactures and service organization to strive for excellence and giving special recognition to those who are considered to be the leaders of quality movement in India I consider it to be a major

step in the right direction. However, this needs to be expanded and I put before you for your consideration that you may like to initiate recognition of people working in the Rural/Tribal segments who are maintaining quality and standard of his/her product. This day needs to be more participative and to implement this idea I suggest that world day paper competition be held to encourage individuals to present their presentation relating to important issues affecting the Standards in the community.

The S.S.I. sector in India formally acknowledges the importance of the standardization in clear terms and moves on to a much proactive role in the standardization process from the development stage.

The BIS. Also shoulders and share the responsibility to ensure that the results of our standardization activities are equally aimed at facilitating development and technological advancement of SSI sector as much as of their larger counter parts and assist in providing practical solution to the varied problems faced by small business in today's globalization markets— If done so success is ours.



चिकित्सा शिक्षा

अनुक्रमाणिका

1. मेडीकल कौंसील को गतिशील बनाना आवश्यक
2. चिकित्सा शिक्षा
3. चिकित्सा शिक्षा - समस्या और समाधान
4. सुधार की राह देखती अव्यवस्थित चिकित्सा शिक्षा
5. प्रयोगशाला नहीं है चिकित्सा शिक्षा
6. चिकित्सा शिक्षकों की कमी दूर हो सकती है बशर्ते
7. चिकित्सा व्यवस्था के 62 वर्ष-क्या खोया क्या पाया
8. दंत चिकित्सा शिक्षा - उज्ज्वल हो सकता है भविष्य
9. स्वास्थ्य सेवा परिदृश्य
10. चिकित्सा व्यवस्था में परिवर्तन - एक महती आवश्यकता

मेडिकल कौंसिल को गतिशील बनाना जरूरी

डॉ. एम.सी. नाहटा

अनेक कारणों से, जिसमें चिकित्सा महाविद्यालयों को मान्यता देने में अनैतिक तौर-तरीके, प्रवेश प्रदान करने, परीक्षाओं और सेवाएं के समवेत क्षेत्र में चिकित्सा शिक्षा आलोचना का केन्द्र बना हुआ है, बावजूद इसके कि आज के छात्रों का बौद्धिक स्तर बहुत उच्च कोटि का है। समय आ गया है कि इस समस्या पर गहराई से चिंतन किया जाए और समग्रता से इसका मुकाबला किया जाए। मोटे तौर पर इन समस्याओं की जड़ में और भारत की मेडिकल कौंसिल की कार्यप्रणाली में जो दोष है वे ईमानदारी के क्षरण और पारदर्शिता की कमी की वजह से है। कौंसिल में प्रत्येक स्तर पर भ्रष्टाचार चरम पर है, जैसा कि दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले से स्पष्ट है, जिसमें भारतीय मेडिकल कौंसिल को भ्रष्टाचार का चिकित्सा विज्ञान संस्थान की चयन समिति से इस्तीफा देना पड़ा था।

इस परिपेक्ष में कौंसिल के इतिहास को जानना प्रासंगिक होगा, जिससे इसकी दयनीय हालत का अहसास होगा और इसका यश पुनः स्थापित करने के लिए उपयुक्त कदम उठाए जा सकेंगे। स्मरणीय है कि भारत में चिकित्सा शिक्षा की शुरुआत कोलकाता में मेडिकल स्कूल से 1822 में हुई, जो बाद में 1935 में मेडिकल कालेज बना और इसी समय 1935 में तत्कालीन मद्रास में (अब चेन्नई) मेडिकल कॉलेज की शुरुआत हुई। मेडिकल कौंसिल की स्थापना का बीजारोपण 1927 में हुआ, तब भारत में एक केन्द्रीय समन्वयक प्राधिकरण की स्थापना का मन बनाया, परंतु इसे कार्यरूप नहीं दिया जा सका। इसी बीच शासन ने मेडिकल क्वालिफिकेशन्स एवं स्टैण्डर्ड्स के कमिशनर की नियुक्ति का सोचा जो कि इंग्लैण्ड की जनरल मेडिकल कौंसिल द्वारा अस्वीकार किया गया, जिसके फलस्वरूप सभी भारतीय विश्वविद्यालयों की मेडिकल उपाधियां, जो

फरवरी 1930 के बाद दी गई, वे अस्वीकृत कर दी गई। इस अत्यावश्यकता को देखते हुए सेंट्रल लेजिसलेशन ने 1933 में एक एक्ट पारित कर मेडिकल कौंसिल की स्थापना की गई जो 1956 में संशोधित की गई। सन 1935 में पांच वर्षीय चिकित्सा कोर्स लागू किया जो बाद में सन 1952 में साढ़े पांच वर्ष का किया गया जिसमें एक वर्ष प्रशिक्षण के लिए भी सम्मिलित था और 1 छात्र पर 5 बिस्तर का अनुपात तय किया गया और शिक्षकों की अहर्ताएं और 100 विद्यार्थियों के प्रवेश के पूर्वपेक्षित अनुमान तय किए गए।

मेडिकल कौंसिल की सन 1934 में स्थापना के साथ ही स्वास्थ्य से जुड़े प्रभारी सदस्य श्री खान बहादुर मियां सर फैज हुसैन ने घोषणा की कि कौंसिल को इस तरह से कार्य करना चाहिए कि स्वदेश में कार्य कुशलता बढ़े और विदेश में सम्मान। सीमित संस्थाएँ होने की वजह से, जिसमें क्षेत्रीय संतुलन था, जहां उचित स्टाफ था और बिना किसी राजनैतिक हस्तक्षेप के नियमों का पूर्णरूपेण पालन किया गया। परिणामस्वरूप भोर समिति ने 1946 में अनेक सिफारिशों की और एक योजना समिति का गठन किया गया जो मानव शक्ति का आकलन करे और नए कालेजों की स्थापना और पुराने कालेजों के विस्तार को गतिशील करें। उस समय देश की आबादी 36.7 करोड़ थी, देश में 80 हजार डाक्टर्स थे और 51 मेडिकल कालेजों में 4600 प्रतिवर्ष भर्ती होते थे। भारतीय विश्वविद्यालय संघ की एक रिपोर्ट 1994 के अनुसार भारत में 148 मेडिकल कालेज थे जिनका विस्तार अतार्किक था जिनमें वार्षिक भर्ती 13611 होती थी, जिसमें 4 राज्यों आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र जिनकी कुल आबादी 12.41 करोड़ थी और जिनका क्षेत्रफल 604637 स्क्वेयर किलोमीटर था - इन राज्यों में 74 कालेजों में वार्षिक भर्ती 6096 थी। वर्तमान में देश में 236 चिकित्सा महाविद्यालय हैं जिसमें उपरोक्त राज्यों में

क्रमशः 32, 32, 22 और 29 कालेज है। दंत चिकित्सा महाविद्यालय की स्थिति भी भिन्न नहीं है - आज 210 दंत चिकित्सा महाविद्यालय है जिनमें 110 उपरोक्त राज्यों में है।

चिकित्सा शिक्षा को नियमित करने का दायित्व और संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर देने का पूर्ण दायित्व मेडिकल कौंसिल का है। जैसा कि उपरोक्त तथ्यों में उल्लेखित है कौंसिल अपने उत्तरदायित्व को निभाने में पूरी तरह असफल रही है। अब समय आ गया है कि इस विषय पर पुनर्विचार किया जाए और कौंसिल को शासित करने वाले नियमों और प्रावधानों में तीव्र बदलाव लाया जाए। उसके संविधान और कार्यप्रणाली में बदलाव हो। जिससे कौंसिल राजनीतिज्ञों के चंगुल और अफसरशाही और उससे चिकित्सा पेशे से जुड़े साथियों से मुक्त की जा सके। मेडिकल कौंसिल एक्ट के कुछ प्रावधानों का उल्लेख यहां उचित होगा। कौंसिल एक्ट 1956 में प्रावधान है कि संस्था में 119 सदस्य (82 निर्वाचित, 37 नामित) सदस्य हो और कार्यकारी समिति हो जिसमें 12 सदस्य हो - विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों के 60 सदस्य, 15 स्टेट मेडिकल रजिस्टर्स, 7 लाइसेन्शिएट ग्रुप (एल.एम.पी.) राज्यों द्वारा 29 सदस्य और केन्द्र सरकार द्वारा 8 सदस्य नामित हो।

निर्वाचित स्थानों के लिए चुनाव केन्द्र सरकार कराती है। कौंसिल का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है और सदस्य के कई बार चुने जाने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। कौंसिल के सभी सदस्य मेडिकल उपाधियों वाले होना चाहिए।

याद रखने योग्य है कि कौंसिल के किसी भी पद के चुनाव का आधार क्षमता, नागरिकों की सेवा, पद के लिए उपयुक्तता और सत्यनिष्ठा होना चाहिए। परंतु वर्तमान परिदृश्य बहुत भिन्न है। आज एकल कार्यक्रम स्वयं को धनवान बनाने के आधार पर कौंसिल में चुनाव होते हैं। फिजूलखर्ची,

संकोच की कमी, राजनीतिक प्रभाव और येन-केन प्रकारेण पद प्राप्त करना और कौंसिल में पहुँचने का अंतिम उद्देश्य निर्ममता से धनोपार्जन रह गया है। यह अनुमान है कि कौंसिल का अध्यक्ष बनने के लिए प्रत्याशी लगभग एक करोड़ खर्च करता है- उद्देश्य समझना कोई मुश्किल काम नहीं - वो शीघ्रताशीघ्र अपना धन वापस लेना चाहेगा। इन सबसे मेडिकल शिक्षा की दुर्गति हो रही है। चिकित्सा शिक्षा के व्यापक हित में चिकित्सा महाविद्यालयों के माध्यम से त्वरित बदलाव लाना चाहिए और समूची सावधानी के साथ ग्रामीण और आदिवासी अंचलों को उचित तरजी देना चाहिए जिसकी अभी पूरी तरह उपेक्षा की जा रही है।

कौंसिल के कारोबार में अव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि कौंसिल एक भारी-भरकम संस्था है जिसके आकार में कमी जरूरी है। आकार कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय हो सकते हैं।

(1) प्रत्येक विश्वविद्यालय की बजाय प्रत्येक राज्य के विश्वविद्यालयों से एक प्रतिनिधि होना चाहिए।

(2) लायसेन्सिएट प्रतिनिधित्व की कोई जरूरत नहीं है, अब इस तरह का कोई पाठ्यक्रम ही नहीं है।

(3) केन्द्रीय सरकार के नामित सदस्यों की संख्या वर्तमान के 8 से 50 प्रतिशत कम कर देना चाहिए।

(4) प्रत्येक राज्य के मुख्य सचिव स्वास्थ्य सचिव का प्रतिनिधित्व होना चाहिए जो अपने राज्य की जरूरतों को प्रस्तुत कर सके।

(5) विशेष रूप से चुने हुए पदों के लिए उपाधियाँ और अनुभव को परिभाषित किया जाना चाहिए।

(6) नामित सदस्य कुल सदस्यों की संख्या से 40 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

मूलभूत तौर पर यह भी जरूरी है कि इंग्लैण्ड की जनरल मेडिकल कौंसिल की तरह कौंसिल में गैर-चिकित्सीय घटक भी होना चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जबकि यह मामला उच्च स्तरीय समिति के पास जाए जिसमें प्रधानमंत्री, योजना आयोग के उपाध्यक्ष, विपक्षी संसदीय नेता, केन्द्रीय स्वास्थ्य सचिव जो कि समिति के सदस्य सचिव हो और चिकित्सा जगत के तीन सदस्य जो अनुभवी हो और पहले कौंसिल में नहीं रहे हो और जो निजी हितों के प रे हो को सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह भी सुझाव है कि कौंसिल का कार्यकाल 3 वर्षों का होना चाहिए और सम्मिलित सदस्य दो सत्रों से अधिक के लिए निर्वाचित या नामित नहीं होना चाहिए।

चिकित्सा शिक्षा

राज्य की चिकित्सा व्यवस्था मूल रूप से चिकित्सा शिक्षा पर आधारित है। चिकित्सा शिक्षा के स्तर पर चिकित्सकों की गुणवत्ता निर्भर करती है। चिकित्सा शिक्षा के स्तर, आवश्यकताएं तथा निगरानी मेडिकल कौंसिल ऑफ इंडिया करती है। किंतु वर्तमान में तो मेडिकल कौंसिल स्वयं ही आरोपों प्रत्यारोपों के घेरे में है—अतः चिकित्सा शिक्षा के स्तर पर अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। स्थिति का प्रभाव प्रदेश की चिकित्सा शिक्षा पर भी पड़ा है और चिकित्सा महाविद्यालयों को समय-समय पर स्मरण पत्र भी प्राप्त होते रहते हैं। चिकित्सा शिक्षा के गिरते स्तर पर रोक तथा सुधार के उपाय अति आवश्यक हैं किन्तु इसके पूर्व वर्तमान स्थिति का आकलन करना उचित होगा।

हमारा प्रयास होगा कि चिकित्सा शिक्षा का विकास हो जो विकेंद्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित होगा। गुणवत्ता के सुधार को प्राथमिकता दी जाएगी। प्रदेश की भौगोलिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए ग्रामीण तथा आदिवासी अंचल की आज तक की गई उपेक्षा की भरपाई भी प्राथमिकता की श्रेणी में रहेगी।

प्रदेश में चिकित्सा शिक्षा दो प्रकार की है—

(1) एलोपैथिक (2) भारतीय चिकित्सा पद्धति तथा होम्योपैथी

एलोपैथिक प्रणाली के अंतर्गत प्रदेश में 5 शासकीय तथा एक निजी चिकित्सा महाविद्यालय, एक शासकीय तथा दो गैर शासकीय नर्सिंग महाविद्यालय विद्यमान हैं।

शासकीय में प्रतिवर्ष स्नातक स्तर पर एमबीबीएस 720, दंत चिकित्सा महाविद्यालय में 40, स्नातकोत्तर स्तर पर डिग्री के लिए 360 तथा डिप्लोमा के लिए 132, एमडीएस-2, एमएचसी-2, सेवारत सहायक शल्य चिकित्सकों के लिए स्नातकोत्तर डिग्री के लिए 35 तथा डिप्लोमा के

लिए 15 स्थान उपलब्ध है। एनआरआय के लिए 15 स्थान सुरक्षित रखे गए हैं। चिकित्सा महाविद्यालयों से संबंधित चिकित्सालयों में 5947 पलंग-शैयाएं उपलब्ध है। नर्सिंग कॉलेज में प्रवेश हेतु 50 तथा जनरल नर्सिंग प्रशिक्षण हेतु 217 तथा प्रयोगशाला तकनीशीयन हेतु 10 स्थान उपलब्ध है। चिकित्सा महाविद्यालयों के लिए स्वीकृत बजट में लगातार कमी की गई है।

भारत सरकार ने क्षेत्रीय नेत्र चिकित्सा संस्थान स्थापना हेतु धन उपलब्ध कराया था किन्तु व्यक्ति विशेष को लाभ देकर भोपाल के हमीदिया हास्पिटल के पूर्व नेत्र विभाग को क्षेत्रीय नेत्र चिकित्सा का नाम देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली है।

चिकित्सा संबंधी शैक्षणिक संस्थाओं में शिक्षकों की कमी, उपकरणों का अभाव, प्रशासनिक कुव्यवस्था एक आम बात है। शिक्षा के लिए अति आवश्यक पुस्तकालय में पुस्तकों की कमी तथा उपकरणों का रख रखाव नहीं के बराबर है। विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त होस्टल उपलब्ध नहीं हैं। अनुसूचित जाति तथा जनजाति के छात्रों को छात्रवृत्ति का प्रावधान है।

वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत प्रदेश की चिकित्सीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती है। इसमें वृद्धि के प्रयास नगण्य है। अतः 50 लाख की जनसंख्या पर एक चिकित्सा महाविद्यालय, एक दंत चिकित्सा महाविद्यालय तथा एक नर्सिंग कॉलेज स्थापित किए जाएं। प्रयास विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत तथा ग्रामीण अंचलों को प्राथमिकता के आधार पर होना चाहिये। पहले चरण में चिकित्सा शिक्षा संस्थाएं ग्रामीण अंचल में स्थापित की जायें।

एक स्नातकोत्तर चिकित्सा संस्थान की स्थापना उपयुक्त स्थान पर की जाना आवश्यक है ताकि विशेष प्रकार के उपचार हेतु सस्ती तथा गुणवत्ता आधारित सारी चिकित्सीय सेवाएं प्रदेश में ही उपलब्ध हों और प्रदेश के

लोगों को राज्य के बाहर उपचार हेतु जाना नहीं पड़े। चिकित्सीय कार्यों की रीढ़ की हड्डी प्रशिक्षित तकनीशियन की कमी को दूर करने के लिए प्रदेश में एक पैरामेडिकल संस्थान प्राथमिकता के आधार पर स्थापित की जाए। इस क्षेत्र में कुकुरमुत्तों की तरह बढ़ रही संस्थाओं पर प्रतिबंध लग सकेगा और व्यावसायिकता भी कम होगी।

अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग के छात्रों को चिकित्सा शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पूर्व निःशुल्क प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाना उचित प्रतीत होता है।

चिकित्सा क्षेत्र में अध्ययनरत छात्रों के लिए इंटरनशिप कार्यक्रम के दुरुपयोग से छात्रों को बचाने हेतु छात्रों से सलाह मशविरा किया जाए तथा आवश्यक उपाय तत्काल प्रभाव से कार्यान्वित किए जाएं।

नकली डॉक्टरों की रोकथाम हेतु विशेष दल गठित कर इन कुवैदों से सामान्य जनता को बचाने के उपाय किए जाएं। पूर्व में बेअर फुट डॉक्टर्स जैसी व्यवस्था किसी भी स्थिति में प्रारंभ नहीं होने दी जावे।

खेद का विषय है कि चिकित्सकों के लिए इंडियन मेडिकल सर्विस का गठन नहीं किया गया। इस कार्य को पूरा करने के त्वरित कदम उठाए जाना वर्तमान की आवश्यकता है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी

मध्यप्रदेश में आयुर्वेद, यूनानी तथा होम्योपैथी चिकित्सा प्रणाली नई नहीं है। इन प्रणालियों का प्रचलन शहरी क्षेत्र में कम तथा ग्रामीण क्षेत्र में अधिक है। इन प्रणालियों में चिकित्सा शिक्षा देने के भी साधन तथा संस्थाएँ तथा चिकित्सालय उपलब्ध है। शिक्षा हेतु -

उपरोक्त शैक्षणिक संस्थाओं से संबंधित चिकित्सालय में 270 शैयाओं का व्यवस्था है।

महिला आयुर्वेद स्वास्थ्य कार्यकर्ता (दाई) प्रशिक्षण हेतु 2 शासकीय तथा 4 निजी क्षेत्र में संचालित संस्थाएँ हैं जिनमें क्रमशः 120 तथा 480 स्थान उपलब्ध हैं (600) पूरे प्रदेश में 1426 आयुर्वेद, 50 यूनानी तथा 146 होम्योपैथी के औषधालय कार्यरत हैं।

भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु 1098 स्थान उपलब्ध हैं।

किन्तु यह कटु सत्य है कि भारतीय तथा होम्योपैथी चिकित्सा पद्धतियों ने सामान्य जनमानस का विश्वास अर्जित नहीं किया है। इसका प्रमुख कारण है इस क्षेत्र के विशेषज्ञ, चिकित्सक एलोपैथिक प्रणाली से ही उपचार करते हैं। इसके कारणों में अनुसंधान तथा विवेचना करना पड़ेगी तथा आवश्यक हुआ तो इसे प्रतिबंधित करने हेतु कानून का भी सहारा लिया जा सकता है। साथ ही इस क्षेत्र में गुणवत्ता की कमी को दूर करने के भी प्रयास किए जाएं। यह एक अत्यंत सोच विचार का विषय है तथा गंभीर मंत्रणा के पश्चात ही उचित उपाय किए जा सकते हैं।

भारतीय तथा होम्योपैथी चिकित्सा विकास हेतु एक अनुसंधान केन्द्र भी स्थापित करने का विचार किया जाना चाहिये।

वर्तमान वातावरण में योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र की ओर भी सामान्य जनता आकर्षित होती है। इस प्रकार के 6 केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं, किन्तु इनका लाभ जनसंख्या का कितना प्रतिशत मिलता है यह एक संदेहास्पद स्थिति है।

हमारा प्रयास हो कि एलोपैथी के चिकित्सकों के अलावा ग्रामीण क्षेत्र में भारतीय चिकित्सा पद्धति तथा होम्योपैथी के विशेषज्ञ भी पदस्थ किए जाएं। यह हमारी प्राथमिकता का एक अंग होना चाहिये।

हमारा लक्ष्य होगा कि गरीब तथा ग्रामीण क्षेत्र के रहवासी परिवारों के बच्चों को चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में प्रदेश को अपेक्षित अवसर प्राप्त हों, इस वर्ग को चिकित्सा शिक्षा के लिए आवश्यक सहायता उपलब्ध हो, छात्रवृत्ति की राशि में वृद्धि हो तथा अन्य सुविधाएं दी जाए।

चिकित्सा शिक्षा समस्या और समाधान

भारतवर्ष में 1822 से आरंभ चिकित्सा शिक्षा व्यवस्था लगभग दो शताब्दि पूर्ण करने के द्वार पर आ पहुंची है। इस लंबे सफर में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। इस बीच शैक्षणिक पाठ्यक्रम में आवश्यक अनावश्यक परिवर्तन किए गए हैं। चिकित्सा महाविद्यालय तथा संबद्ध चिकित्सालयों में प्रशासकीय व्यवस्था में भी स्वरूप बदलते देखे हैं। प्रवेश तथा प्रवेशोपरांत के विद्यार्थियों में अपने भविष्य के बारे में चिंताओं की रेखाएं भी उनके ललाट पर स्पष्ट दिखती है। चिकित्सकों के दृष्टिकोण तथा व्यवहार में भी बदला परिदृश्य स्पष्ट दिखता है। इस सबका प्रभाव चिकित्सा शिक्षा पर पड़ा है। एक के बाद दूसरी समस्या उजागर हो रही है। जिनका समाधान होना शेष है।

चिकित्सा शिक्षा के स्तर को बनाए रखने का दायित्व 1833 में स्थापित मेडिकल कौंसिल ऑफ इंडिया पर है और स्थापना के समय 1934 में माननीय खान बहादुर मीयां सर फजल हुसैन ने अपेक्षा की थी कि The Council should function in such a way that we have efficiency at home and honor abroad जो कि चिकित्सा शिक्षा के आरंभ के वर्षों में तथा लंबे समय तक ठीक पाई गई। किन्तु शनैः शनैः इसमें गिरावट आई और वर्तमान में स्थिति विस्फोटक हो चुकी है।

चिकित्सा शिक्षा के गिरते स्तर, व्याप्त विषमताओं तथा प्रतिदिन उत्पन्न होती समस्याओं पर नजर दौड़ा कर स्थिति का आंकलन करना आज की प्राथमिकता है। ऐसा करने से संभवतया समाधान के उपाय सोचकर उनका निराकरण कर सकेंगे।

चिकित्सा शिक्षा तथा चिकित्सा व्यवस्था एक दूसरे के पूरक हैं। एक क्षेत्र में आई विषमता दूसरे को प्रभावित करती है। सामान्य जनमानस में चिकित्सा जगत के प्रति अविश्वास के अनेक कारणों में लापरवाही, दूराचार,

अनाचार के कारण कानूनी कार्यवाही प्रतिदिन देखने को मिल रही है। चिकित्सा जगत के व्यवसायीकरण के परिणामस्वरूप चिकित्सा शिक्षा के स्तर में गिरावट तथा प्रशिक्षण के प्रति संदेह ने घर कर लिया है। इस स्थिति के निर्माण में शैक्षिक बेईमानी के बिंदु को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह प्रत्येक स्तर तथा चिकित्सा शिक्षा संबंधित प्रत्येक क्षेत्र में प्रचुरता से विद्यमान है।

केवल इन्हीं बिंदुओं पर विचार तथा कार्यवाही से काम नहीं चलेगा क्योंकि राजनीतिकरण, निजीकरण तथा बेतरतीब विस्तार से तो इस क्षेत्र की दूर्दशा हुई ही है। किंतु कुछ अन्य मौलिक बिंदुओं की उपेक्षा भी वर्तमान स्थिति के लिए कम दोषी नहीं है। अतः चिकित्सा शिक्षा से संबंधित प्रत्येक बिंदु पर विचार कर कार्य करना होगा।

चिकित्सा शिक्षा में आवश्यक सुधारात्मक परिवर्तन हेतु कम से कम चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश, निजीकरण, पाठ्यक्रम, स्कील्स के विकास के प्रयास, परीक्षा प्रणाली, शिक्षकों के निष्पादन, रोगी की चिंता व्यवस्था हेतु विशेष प्रशिक्षण तथा शिक्षकों का विद्यार्थियों द्वारा मूल्यांकन जैसे बिंदुओं पर गहन विचार विमर्श, चिंतन तथा त्वरित कार्यवाही आवश्यक है।

चिकित्सा महाविद्यालयों में पूर्व में प्रवेश 12वीं कक्षा में प्राप्तांक के आधार पर दिया जाता था किंतु अनियमितताओं तथा पक्षपात के आरोपों के कारण प्रवेश परिक्षाएं प्रारंभ की गई जिसके परिणाम सामान्य रूप से सुखद ही रहे हैं। किंतु चिकित्सा शिक्षा के निजीकरण तथा प्रवेश हेतु अनावश्यक वर्ग श्रेणी बनाने तथा अब तो निजी चिकित्सा शिक्षा महाविद्यालयों द्वारा अलग से प्रवेश परीक्षा आयोजन के निर्णय ने अराजकता पैदा कर दी है। इस पर अविलंब विराम लगना चाहिए। अन्यथा चिकित्सा क्षेत्र पूर्ण रूप से माफियाओं के अंतर्गत चला जाएगा।

इतना ही महत्वपूर्ण बिंदु है चिकित्सा शिक्षा के पाठ्यक्रम का, पाठ्यक्रम का निर्धारण सामान्य रूप से मेडिकल कौंसिल ऑफ इंडिया के कार्यक्षेत्र में आता है। किंतु इस संस्था में पदों पर पदासीन व्यक्तियों ने अपनी-अपनी विशेषज्ञताओं को महत्व देने, दिलाने हेतु अनेक अनावश्यक परिवर्तन किए और बदलते सामाजिक परिवेश की आवश्यकता की हमेशा उपेक्षा की है। खेद का विषय है कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण संबंधित वर्ग विद्यार्थी से सलाह मशवरा करना ही आवश्यक नहीं माना। पाठ्यक्रम निर्धारण संघटित हो (Integrated) न की खंडित (Fragmented) तथा ज्ञान के अतिरिक्त निपुणता (Skills) का विकास करने हेतु बनाया जावे। इस हेतु केंद्र सरकार अधिक से अधिक 11 सदस्यों की समिति जिसमें मेडिकल कौंसिल के अविवादित प्रतिनिधि, चिकित्सा शिक्षा क्षेत्र के शिक्षक तथा विद्यार्थियों के प्रतिनिधि सम्मिलित हो, बनाकर पाठ्यक्रम का निर्धारण करें।

परीक्षा प्रणाली पर भी मंथन आवश्यक है। वैसे तो प्रतिदिन के कार्यों के आंकलन से अधिक उपयुक्त कोई प्रणाली नहीं हो सकती बशर्ते यह दबाव तथा भयमुक्त हो। इस बिंदु पर भी त्रिस्तरीय (उपर वर्णित) समिति विचार करे और वर्तमान अव्यवस्था को व्यवस्था में बदलने के रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत करे।

शिक्षकों की क्षमता तथा शिक्षा के प्रति घटती गंभीरता भी विचारणीय बिंदु है— यह वर्ग भी निरंकुश हो गया है और गंभीरता दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती है। निजी क्षेत्र के चिकित्सा महाविद्यालयों ने इस समस्या की विकरालता और बढ़ा दी है। इसके निकराकरण हेतु भी गंभीर उपाय आवश्यक है। अतः इनका भी समय-समय पर मूल्यांकन होना चाहिए। किंतु यह भी उतना ही आवश्यक है कि शिक्षकों को पढ़ाने हेतु पर्याप्त आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जाए। चिकित्सा महाविद्यालयों में

चिकित्सा शिक्षा विकास हेतु स्वतंत्र विभाग की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। रोगियों की सेवा (Patient Care) विधियों के बारे में भी शिक्षा देने से वर्तमान वातावरण में अपेक्षित सुधार तथा परिवर्तन हो सकता है। सतत् शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत नैतिक, सदाचारी तथा कानूनी क्षेत्र की जानकारी तथा उत्तरदायित्व का बोध शिक्षक तथा विद्यार्थी वर्ग को समान रूप से कराने से स्वस्थ वातावरण निर्मित होने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

चिकित्सा महाविद्यालय तथा संबंधित चिकित्सालयों की प्रशासकीय व्यवस्था हमेशा ही लचर रही है कारण भी स्पष्ट है— चिकित्सक वरिष्ठता के आधार पर स्वतः के चिकित्सकीय कार्य के अतिरिक्त प्रशासनिक दायित्व तो लेना चाहते हैं — स्वागत योग्य है। किंतु अनुभव के अभाव से हमेशा ही इन संस्थाओं को आलोचना का शिकार होना पड़ता है। अतः उचित होगा कि इस प्रकार के संभावित प्रत्याशियों को कम से कम एक वर्ष प्रशासकीय कार्यों में प्रशिक्षण को अनिवार्य बनाया जाए।

एक और महत्वपूर्ण बिंदु हमारे समक्ष है। वर्तमान में चिकित्सक जनसंख्या का आवश्यक अनुपात लक्ष पार कर चुका है। हमारे भाग्य विधाताओं से सादर अनुरोध है कि वर्तमान में इस क्षेत्र का और विकास न करे अन्यथा अव्यवस्था अराजकता में बदल जाएगी।

सुधार की राह देखती अव्यवस्थित चिकित्सा शिक्षा

डॉ. एम.सी. नाहटा

भारत वर्ष में 1822 से आरंभ चिकित्सा शिक्षा लगभग दो शताब्दी पूर्ण करने के द्वार पर आ पहुँची है। इस लंबे समय में अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। चिकित्सा शिक्षा के गिरते स्तर, व्याप्त विषमताओं तथा प्रतिदिन उत्पन्न होती समस्याओं के कारण स्थिति विस्फोटक हो चुकी है और सुधार को बाट जो रही है। अतः स्थिति का आंकलन करना वर्तमान की प्राथमिकता है। ऐसा करने से समाधान के उपाय तथा निराकरण संभव है।

चिकित्सा जगत के बारे में स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व है— चिकित्सक की शिक्षा रोगी तथा समाज से प्राप्त धन से पूर्ण होती है। अतः उसका कर्तव्य है कि वह इस ऋण को निःस्वार्थ भाव से मानवता की सेवा कर अदा करे।

इस बिंदु पर योजना आयोग के तत्कालीन उपाध्यक्ष श्री के.सी. पंत ने 28 अगस्त 2001 को योजना भवन में चिकित्सा शिक्षा पर आयोजित एक विशेष गोष्ठी में प्रकाश डालते हुए कहा था कि अभी तक 80 प्रतिशत रोगियों का उपचार निजी क्षेत्र के चिकित्सक करते हैं जिनमें कुछ अप्रशिक्षित भी होते हैं इस स्थिति को हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं। अतः स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हमें चिकित्सा शिक्षा का पुनः निर्धारण करना होगा और चिकित्सक तथा पैरामेडीकल का प्रशिक्षण सामाजिक परिवेश में आयोजित करना चाहिए। यह देश की स्वास्थ्य सेवाओं की रीढ़ की हड्डी बन सकता है। यह भी एक आम धारणा बन गई है कि चिकित्सा शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आई है। परिणामस्वरूप नए चिकित्सकों की गुणवत्ता अपेक्षित स्तर की नहीं होगी— घटिया होगी। इन बिन्दुओं से असहमति व्यक्त करना कठिन होगा। अतः आवश्यक है कि इन बिन्दुओं पर गहन विचार विमर्श किया जाए अन्यथा राष्ट्र का स्वास्थ्य ठीक

नहीं होगा। इस हेतु हमें देश के वर्तमान चिकित्सा शिक्षा परिदृश्य पर नजर दीड़ाना आवश्यक है।

भारत की आजादी के समय 37 करोड़ वाले देश में पचास हजार चिकित्सक तथा पच्चीस हजार परिचारिकाएँ थीं तथा बी.सी. राय, जीवराज मेहता, कर्नल अमीरचंद, एम.एन. कपूर तथा डॉ. एस.के. मुखर्जी जैसे चिकित्सकों का मार्गदर्शन उपलब्ध था। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में देश में 420 चिकित्सा महाविद्यालय कार्यरत है। इनमें से पश्चिम तथा दक्षिण भारत प्रांत महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु जिनकी जनसंख्या 287324584 तथा क्षेत्र 904630 किमी है मैं 211 चिकित्सा महाविद्यालय कार्यरत है। निजी क्षेत्र में स्थापित संस्थाओं के आधार पर असंतुलित व्यवस्था का यह अद्वितीय उदाहरण है और चिकित्सा शिक्षा की गिरावट का कारण भी होगा। यह जानना सामयिक होगा कि शासकीय क्षेत्र में देश का पहला चिकित्सा महाविद्यालय 1835 में चैन्नई में स्थापित हुआ था और अपवाद स्वरूप निजी क्षेत्र में 1942 में पहली संस्था वेलोर में स्थापित हुई थी। यह कटु सत्य है कि 1980 और विशेषकर 1990 के बाद देश में निजी क्षेत्र में चिकित्सा महाविद्यालयों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जो वर्तमान में शासकीय क्षेत्र की संख्या के लगभग समकक्ष है। यहां यह बताना भी उचित होगा कि 1835 से 1896 के बीच 58 वर्ष की लंबी अवधि में केवल 19 चिकित्सा महाविद्यालय ही स्थापित हो पाए थे। इसके विपरीत वर्तमान में निजी क्षेत्र में इतने कम समय में इतनी अधिक संख्या में चिकित्सा शिक्षा संस्थाओं का स्थापित होना स्पष्ट रूप से उनकी दयनीय स्थिति की ओर इंगित करता है क्योंकि इतने कम समय में पर्याप्त संख्या में न तो अनुभवी प्रशिक्षित शिक्षक मिल सकते हैं न ही अधोसंरचना उपलब्ध कराई जा सकती है। अतः गुणवत्ता तो अपेक्षानुसार होना असंभव है।

एक अन्य विचारार्थ बिन्दु है कि मराठवाड़ा स्थित अम्बाजोगाई चिकित्सा महाविद्यालय के समकक्ष ग्रामीण क्षेत्र में चिकित्सा महाविद्यालय कृत्रिम प्रकाश में ढूँढने से नहीं मिलेंगे। मुंबई, चेन्नई, कोलकाता महानगरों जैसे अनेक नगरों में इस प्रकार की चिकित्सा शिक्षा संस्थाएं एक से अधिक हैं— इनको स्थापित करने हेतु निर्धारित मापदंड अन्वेषण का विषय है। विडम्बना है कि चिकित्सा शिक्षा के विद्यार्थियों की पूरी शिक्षा दीक्षा शहरी परिवेश में स्थापित संस्थाओं में होती है और उनसे सुविधा विहीन ग्रामीण क्षेत्र में कार्य न करने की चर्चा प्रतिदिन की जाती है।

चिकित्सा शिक्षा स्थापित करने हेतु राज्य शासन, मेडीकल कौंसिल ऑफ इंडिया तथा केन्द्र शासन की अनुशंसा तथा अनुमति आवश्यक है। उचित होता कि प्राथमिकता के आधार पर निर्धारित किया जाता कि देश में कितने चिकित्सा महाविद्यालयों की आवश्यकता है और उसी आधार पर संख्या स्थापित करने हेतु अनुमति तथा प्रवेश संख्या भी निर्धारित की जाती। अनुमति के पूर्व यह भी सुनिश्चित किया जाता कि स्थापकों के पास इस क्षेत्र का अनुभव तथा न्यूनतम अधोसंरचना उपलब्ध है। इन महत्वपूर्ण बिंदुओं की उपेक्षा ही चिकित्सा शिक्षा के स्तर में गिरावट का प्रमुख कारण माना जाएगा। इसके अतिरिक्त शिक्षकों की संख्या तथा उनके लिए मापदंड मेडीकल कौंसिल ऑफ इंडिया निर्धारित करती है। जिस गति से अल्प समय में निजी क्षेत्र में चिकित्सा महाविद्यालय स्थापित हुए हैं—क्या हम गुणवत्ता तथा मापदंड पूर्ण करने वाले शिक्षक उपलब्ध करा पाए हैं? शिक्षक रातोंरात तो पैदा नहीं होते हैं। अतिउत्साह या अन्य कारणों से चिकित्सा महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि उचित नहीं प्रतीत होती है। अभी समय है हम जागें और देश को क्षमता, निपुणता, वचनबद्धता, प्रवृत्ति तथा ज्ञानवान चिकित्सक तथा देश की ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्र में आवश्यक स्वास्थ्य

सेवाएं उपलब्ध कराएं जो गुणवत्ता आधारित चिकित्सा शिक्षा से ही संभव है। इस हेतु मेरे विनम्र सुझाव हैं कि—

- नए चिकित्सा महाविद्यालय ग्रामीण क्षेत्र में स्थापित किए जाएं।
- 25 लाख की आबादी वाले नगर में एक से अधिक चिकित्सा महाविद्यालय स्थापित करने की अनुमति न दी जाए। यह विचार विकेंद्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित है।
- शासकीय अशासकीय क्षेत्र में स्थापित होने वाली संस्थाओं का अनुपात 75:25 का हो तथा मापदंड भी एक समान बनाए जाएं और उनका पालन भी किया जाए।
- इन बिन्दुओं पर विचारोपरांत निर्णय लेने तक नई संस्थाओं की स्थापना पर अस्थायी प्रतिबंध लगाया जाए।

प्रयोगशाला नहीं है चिकित्सा शिक्षा

डॉ. एम.सी. नाहटा

प्रायः चिकित्सा जगत को अपनी कठिनाईयों तथा समस्याओं के निराकरण के अभाव में आंदोलन के लिए बाध्य कर दिया जाता है। यह चिंता का विषय है, क्यों कि इससे सामान्यजन का स्वास्थ्य जुड़ा हुआ है। चिकित्सा शिक्षा पाठ्यक्रम की अवधि बढ़ाने को लेकर उठे विवाद से ऐसी ही स्थिति बनी है। हालांकि केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री अंबुमणि रामदास ने एम.बी.बी.एस. पाठ्यक्रम की अवधि नहीं बढ़ाने की बात कही है, फिर भी वे मेडिकल स्नातकों की गांवों में पदस्थापना पर अड़े हुए प्रतीत होते हैं। अतः यह सही-समय है, हम समस्या पर गहन चिंतन करें और प्रयास करें कि भविष्य में चिकित्सा जगत को आंदोलन की राह न अपनाना पड़े।

भारत में चिकित्सा शिक्षा 1822 में कोलकाता में मेडिकल स्कूल स्थापना के साथ शुरू हुई थी, जो 1935 में चिकित्सा महाविद्यालय में परिवर्तित कर दिया गया। चिकित्सा शिक्षा के स्तर, पाठ्यक्रम तथा अन्य मापदंडों के निर्धारण के लिए 1933 में एक कानून के माध्यम से मेडिकल काउंसिल का गठन किया गया और 1934 में खानबहादुर सर फजल हुसैन ने अपेक्षा की थी कि काउंसिल के कार्य से स्वदेश में कार्यकुशलता बढ़े और विदेश से सम्मान। इसके विपरीत चिकित्सा शिक्षा के बेतरतीब विस्तार और पाठ्यक्रमों में सुविधानुसार परिवर्तन से इसके स्तर में गिरावट आई है और यह क्षेत्र प्रयोगशाला बन गया है। एक अन्य बिंदु सरकार के पाठ्यक्रम अवधि बढ़ाने के निर्णय से और जुड़ गया है, जिसने देश में विषम वातावरण बना दिया है। 1935 में चिकित्सा शिक्षा के लिए पांच वर्ष का पाठ्यक्रम था। 1952 में इसे प्रशिक्षण अवधि सहित साढ़े पांच वर्ष का बनाया गया। इसमें दो मत नहीं है कि आदिवासी तथा ग्रामीण

अंचल में चिकित्सा सुविधाएं अपर्याप्त या नगण्य हैं। इस पर चिकित्सा जगत में भी चिंता है। इस असंतुलित व्यवस्था के कारणों की पड़ताल तथा उत्तरदायित्व, निश्चित करने का यह सही अवसर है।

भारत में पूर्व स्वास्थ्यमंत्री स्व. राजनारायण ने बेअर फुट डाक्टर्स तथा चलित चिकित्सा इकाई की स्थापना का असफल प्रयास किया था। छत्तीसगढ़ के पूर्व मुख्यमंत्री अजीत जोगी ने साढ़े तीन वर्षीय पाठ्यक्रम की परिकल्पना की थी। चीन में चिकित्सकों की कमी दूर करने के लिए चिकित्सा शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश संख्या में पर्याप्त वृद्धि की गई थी। उधर, श्रीलंका में ग्रामीण क्षेत्रों में समुचित अधोसंरचना उपलब्ध कराने में चिकित्सकों को ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने में कोई आपत्ति नहीं थी। खेद है कि हर सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सकीय सेवा उपलब्ध कराने में असफलता को ढंकने का प्रयास इस प्रकार के निर्णय के से किया है। किसी समस्या के निराकरण के लिए उभय पक्षों के विचार-विमर्श करना होता है, किंतु पाठ्यक्रम जैसे विषय पर विचार करने से पहले चिकित्सा शिक्षा छात्र और शिक्षा समुदाय से विचार विमर्श करना आवश्यक नहीं समझा गया।

कई पाश्चात्य देशों में ऐसे महत्वपूर्ण विषयों पर निर्णय लेने से पहले विशेषज्ञ समिति गठित की जाती है और उसकी रपट आने के बाद ही निर्णय लिया जाता है। चिकित्सक और छात्रों की मानवीय आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना जरूरी है। यह वर्ग भी इसी समाज का अंग है। फिर यह भी स्थापित सत्य है कि चिकित्सा शिक्षा छात्रों की शिक्षा प्रशिक्षण के पश्चात ही समाप्त होती है और उन्हें उपाधि प्राप्त करने की पात्रता होती है। बगैर उपाधि उनसे चिकित्सकीय कार्य की अपेक्षा करना अनुचित भी है और गैर कानूनी भी। चिकित्सक स्नातकोत्तर परीक्षा पास करते-करते लगभग 30

वर्ष की आयु पर पहुंच जाते हैं और उनकी आय न्यूनतम होती है, जबकि अन्य विधाओं में छात्र 25 वर्ष की आयु के पूर्व शिक्षा समाप्त कर अच्छी आय प्राप्त करने लगते हैं।

इस विरोधाभास के निराकरण की ओर हमारा ध्यान क्यों नहीं जाता? उपरोक्त माहोल में भी चिकित्सा समुदाय ग्रामीण क्षेत्र चिकित्सा व्यवस्था में सुधार के लिए कुछ उपाय सुझाना चाहता है, जो तत्कालीन रूप से क्रियान्वित किए जा सकते हैं। प्राथमिकता के आधार पर जिला चिकित्सालय को केन्द्र बिंदु बनाकर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन चलित इकाई के जरिये चिकित्सा सेवा उपलब्ध कराना संभव है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था समय-सीमा में पूरी की जाए तो चिकित्सकों को ग्रामीण क्षेत्रों में जाने में कोई आपत्ति नहीं होगी। सरकार एक विशेषज्ञ समिति गठित करें, जिसमें छात्र प्रतिनिधि तथा वरिष्ठ चिकित्सक हो जो तय समय सीमा में अपना प्रतिवेदन दे, जिस पर सरकार भी सकारात्मक दृष्टिकोण अनपाए।

चिकित्सा शिक्षकों की कमी दूर हो सकती है बशर्ते

भारत में चिकित्सा शिक्षा की शुरुआत ब्रिटिश तथा पोर्चीगीस के आने के साथ क्रमशः 1835 तथा 1840 में मेडिकल स्कूल तथा गोवा में मेडिसीन व फार्मेसी लाइसेंसिएट पाठ्यक्रम की स्थापना से आरंभ हुई थी। 1850 में चेन्नई, मुंबई तथा कोलकाता में विश्वविद्यालय स्थापित होने से चिकित्सा शिक्षा ने उपरोक्त विश्वविद्यालयों से संबद्ध होकर विश्वविद्यालयीन शिक्षा का रूप लिया था।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशेषकर पिछले 20 वर्षों में चिकित्सा शिक्षा संस्थाओं की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। यह वृद्धि बढ़ती जनसंख्या तथा उसकी स्वास्थ्य आवश्यकता की पूर्ति, चिकित्सा उपाधियों की बढ़ती मांग तथा वैश्वीकरण के वातावरण का परिणाम है। इन संस्थाओं की संख्या 425 का आंकड़ा पार कर चुकी है। परिणामस्वरूप स्वाभाविक रूप से शिक्षकों की संख्या कम हुई है, जिसने इस क्षेत्र की गुणवत्ता को प्रभावित किया है। अतः अपेक्षा है कि सुधारात्मक प्रयास किए जाएं, किंतु वर्तमान चिकित्सा शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत यह संभव नहीं है, क्योंकि अपर्याप्त होने के साथ समस्त पहलुओं के समावेश की क्षमता भी इसमें नहीं है। जनसंख्या वृद्धि नए-नए रोग, औसत आयु में वृद्धि तथा वैश्वीकरण जैसे बिंदुओं के कारण नई चुनौतियां सामने आई है। स्वास्थ्य संबंधी वर्तमान नीति, अधोसंरचना तथा संसाधनों की अपर्याप्तता जैसे कारणों से चिकित्सक : जनसंख्या का अनुपात गड़बड़ा गया है। चिकित्सा शिक्षा संस्थाओं की संख्या तो बढ़ी है, किंतु शिक्षक संख्या लगभग स्थिर है, जो कि वर्तमान में 80 हजार अनुमानित है। अतः इस समस्या के निराकरण के उपाय प्राथमिकता के आधार पर ढूंढने चाहिए और संकाय संख्या में वृद्धि तथा विकास हेतु अविलंब प्रयास करना चाहिए। मौलिक तौर पर देखें तो वर्तमान में दो मूलभूत कमियां हैं, पहली चिकित्सा शिक्षा शिक्षकों की

कमी विशेषकर प्रीक्लिनीकल तथा पैराक्लिनीकल वर्ग में। दूसरी गुणवत्ता का अभाव।

चिकित्सा शिक्षा-शिक्षकों की कमी के कारण बार-बार मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया मेडिकल कॉलेजों विशेषकर शासकीय संस्थाओं की मान्यता रद्द करने की धमकी देती रहती है। विडम्बना है कि इस स्थिति के निर्माण में मेडिकल काउंसिल ने भी अनअपेक्षित भूमिका निभाई है। स्मरण रहे देश के एक माननीय उच्च न्यायालय ने गंभीर टिप्पणी करते हुए मेडिकल काउंसिल को भ्रष्टाचार का अड्डा बताया था। अतः आवश्यक है कि इस विषम स्थिति के निराकरण के उपायों पर विचार करें। प्राथमिकता चिकित्सा शिक्षा शिक्षकों की संख्या वृद्धि को देना उचित तथा आवश्यक प्रतीत होता है। निम्न उपायों से समस्या का निराकरण हो सकेगा।

प्रीक्लिनीकल तथा पैराक्लिनीकल वर्ग के शिक्षकों की संख्या में वृद्धि हेतु पूर्व में चेन्नई विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति तथा वरिष्ठ ख्यातनाम चिकित्सक डॉ. ए.एल. मुदालियर द्वारा शुरू किए गए एम.एससी. पाठ्यक्रम के समकक्ष तीन वर्षीय पाठ्यक्रम शुरू किया जाए। इसके अन्तर्गत विज्ञान के स्नातकों को सम्मिलित किया जाता था, उपाधि चिकित्सा संकाय देती थी तथा वे मेडिकल कालेज में शिक्षक बनने के पात्र होते हैं। यहां यह बताना सामयिक होगा कि इन्दौर मेडिकल कालेज के फिजियोलाजी विभाग के प्रथम प्रोफेसर के पास भी एम.एस.सी. की उपाधि ही थी।

मेडिकल कालेज विकसित देशों की चिकित्सा संस्थाओं से अनुबंध कर शिक्षकों का आदान-प्रदान नियमित रूप से करें। इससे शिक्षकों की कमी दूर होने के साथ गुणवत्ता में भी सुधार हो सकेगा। मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया चिकित्सा शिक्षकों के लिए निर्धारित मापदंड अल्पकाल (पांच वर्ष) के लिए शिथिल करें। शासकीय तथा अशासकीय चिकित्सा शिक्षा की सेवा शर्तें एक समान बनाई जाएं। शिक्षक-प्रशिक्षण हेतु केंद्र स्थापित

किए जाएं। इस प्रकार का कार्यक्रम 1974 में बनाया गया था। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1984 तक तथा भारत सरकार ने 1999 तक इसमें सहायता दी थी। फाउंडेशन फार एडवांसमेंट ऑफ इंटरनेशनल मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च संस्था संकाय के विकास हेतु सहायता देती है। इसका लाभ चिकित्सा शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने तथा शिक्षकों की कमी दूर करने हेतु लिया जा सकता है। नई संस्थाओं की स्थापना की योजना बनाई जाए जो विकेंद्रीकरण के सिद्धांत तथा भविष्य की आवश्यकताओं पर आधारित हो। मध्यप्रदेश के संदर्भ में चिकित्सा, दंत तथा परिचारिका महाविद्यालयों को एक यूनिट मानकर इस प्रकार की संस्थाएं झाबुआ, नीमच, विदिशा, गुना, चित्रकूट, दमोह-कटनी में स्थापित की जाएं। भारत चिकित्सा का केंद्र बनने की राह पर अग्रसर हो चुका है। विदेशों से उपचार हेतु रोगी भारत आने लगे हैं। वर्तमान अनुकूल वातावरण का राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक हित में लाभ उठाने हेतु बाधाओं को दूर करना हमारा कर्तव्य है। उपरोक्त सात सूत्रीय कार्यक्रम यह कार्य सुगमता से कर सकता है। ऐसा होने पर जनता को अच्छा स्वास्थ्य तथा गुणवत्ता आधारित शिक्षा उपलब्ध हो सकेगी। इससे विदेशी छात्र तथा रोगी अधिक संख्या में आकर्षित होगी, जो सबके हित में होगा।

चिकित्सा व्यवस्था के 62 वर्ष-क्या खोया क्या पाया

डॉ. एम.सी. नाहटा

चिकित्सकों तथा परिचारिकाओं की कमी-स्वास्थ्य क्षेत्र की सबसे बड़ी चुनौती-प्रधानमंत्री श्री मनमोहनसिंह-

भारत की 1947 में प्राप्त स्वतंत्रता तथा 1950 में गणतन्त्र घोषित होने के पश्चात अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। इस अवधि में वित्तीय क्षेत्र में प्रगति भी हुई है। स्वतंत्रता के समय 37 करोड़ वाला देश आज 120 करोड़ के लगभग है-इसके बावजूद प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आज 395 ग्राम अनाज के स्थान पर 454 ग्राम पाता है, गरीबी का प्रतिशत 55 से 26 हुआ। 1951 में 146 शिशु मृत्युदर घटकर 80/1000 तथा मातृ मृत्युदर 438/1,00,000 तथा औसत आयु 32 वर्ष से बढ़कर 65 का अंक पार कर चुका है-यह सब उल्लेखनीय है।

उपरोक्त परिदृश्य के बीच चिकित्सा जगत ने भी कार्य किया है-परिणाम हमारे सामने है। यह उचित समय है कि इस क्षेत्र की मौलिक समीक्षा की जावे चूंकि स्वास्थ्य एक ऐसा महत्वपूर्ण बिन्दु है जिसके माध्यम से राष्ट्र के विकास का आंकलन किया जाता है।

अनेक विकास आधारित कार्यक्रमों तथा नीतियों के बावजूद आर्थिक, क्षेत्रीय तथा लिंग आधारित असमानताओं के कारण अनेक चुनौतियाँ हमारे सामने हैं-स्वास्थ्य का क्षेत्र भी इसमें सम्मिलित है। यह भी कटु सत्य है कि 27 प्रतिशत शहरी जनसंख्या 75 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठा रही है। संक्रामक तथा जल जनित रोग आज भी ग्रामीण जनता की रूग्णता का कारण है।

स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों के संचालन का उत्तरदायित्व प्राथमिक रूप से स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय का है-जो इस हेतु केन्द्र

बिन्दु भी है—मानव संसाधन, ग्रामीण विकास, कृषि, खाद्य एवं आपूर्ति तथा शहरी मामलों के मंत्रालय भी सहायता करते हैं। स्वास्थ्य संबंधी कार्यों हेतु केन्द्र तथा राज्य सरकारों की भूमिका भी निर्धारित है।

इस पृष्ठभूमि में देखें तो 1950 में स्वास्थ्य/चिकित्सा क्षेत्र की स्थिति अत्यंत निराशाजनक थी और मलेरिया, न्युमोनिया, टिटनेस, क्षय, कालरा तथा प्लेग जैसे रोगों के फलस्वरूप अनेक व्यक्तियों की मृत्यु होती थी।

देश में योजना युग के आरम्भ के साथ सरकार ने संक्रामक तथा गैर संक्रामक रोगों के नियंत्रण हेतु मलेरिया, अंधत्व, कुष्ठ, क्षय, एड्स, कैंसर, आयोडीन की कमी से उत्पन्न रोग, नारू तथा मानसिक रोग जैसे अनेक रोगों के उन्मूलन हेतु कार्यक्रम बनाये—इसमें आंशिक सफलता भी मिली किन्तु बदलते सामाजिक परिदृश्य के कारण जीवनशैली में परिवर्तन के परिणामस्वरूप कैंसर, हृदयरोग, मधुमेह, मानसिक तनाव, शराबखोरी, औषधि का दुरुपयोग, एड्स, हिपेटाइटिस, डेंगु जैसे अनेक रोग हमें प्राप्त हुए तथा मलेरिया, क्षय तथा कुष्ठ रोगों का पुनः आगमन हुआ। सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है हमने क्या खोया क्या पाया ?

इस परिदृश्य में सन् 2000 तक सबको स्वास्थ्य उपलब्ध कराने हेतु की गई अलमा एटा घोषणा पर भारत ने भी हस्ताक्षर किये और क्रियान्वयन हेतु 1983 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति भी बनाई गई—जिसके अन्तर्गत रोकथाम, पुनर्वसन तथा प्रोत्साहन जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर जोर दिया—1,37,311 उप स्वास्थ्य केन्द्र, 22,842 प्राथमिक तथा 3043 सामाजिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित किये गये। एक अनुमान के अनुसार देश में 4,89,189 चिकित्सक 11,300 दन्त चिकित्सक तथा 5,59,986 परिचारिकाएँ उपलब्ध हैं। प्रतिवर्ष 18,000 नये चिकित्सक बनते हैं। अनेक प्रकार की औषधियाँ—(60,000-80,000 ब्रैंड) तथा टीकों का उत्पादन होता है—औषधियाँ 16,000 करोड़ की होती हैं। जिसका 90

प्रतिशत निजी क्षेत्र में होता है। यह भी बताया जाता है कि अयोग्य व्यक्तियों के माध्यम से इन्हें ग्रामीण क्षेत्र में अधिक खपाया जाता है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि विश्व स्वास्थ्य संघ के अनुसार 270 प्रकार की औषधियाँ 90 प्रतिशत रोगों के उपचार हेतु पर्याप्त हैं। अनेक औषधियाँ हानिकारक भी हैं—विडम्बना है कि औषधियाँ बगैर चिकित्सक की सलाह के सरलता से मिल भी जाती हैं।

चिकित्सा व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र चिकित्सा शिक्षा पर भी विचार करना उपयुक्त होगा। चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार हुआ है। चिकित्सा शिक्षा का मौलिक उद्देश्य देश को समाज आधारित स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराना है। दुःखद है कि वर्तमान प्रणाली चिकित्सालय, विशेषज्ञता तथा कृत्रिम जाँच आधारित है। चिकित्सा शिक्षा की दिशा निर्धारण हेतु एडिन बरो डिक्लेरेशन किया गया था—जिसने सुझाव दिया था कि शिक्षा कार्यक्रमों के अन्तर्गत पूर्ण स्वास्थ्य, उपलब्ध साधन आधारित तथा इस प्रकार के पाठ्यक्रमों से सुसज्जित हों जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य संबंधी प्राथमिकताओं को रेखांकित करे तथा प्रशिक्षण व्यवस्था निष्क्रिय के बजाय सक्रिय ज्ञान उपलब्ध कराने हेतु दिशा देने की भी पैरवी की थी किन्तु वर्तमान व्यवस्था एडिनबरो घोषणा के अनुरूप नहीं है और इसका पालन करने में चिकित्सा शिक्षक शक्तिशाली अवरोध है।

चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में ही पिछले दो दशक से निजी क्षेत्र ने प्रभावी प्रवेश कर इस क्षेत्र पर वर्चस्व स्थापित करने के सशक्त प्रयास किये हैं—इस क्षेत्र के विस्तारके उदाहरण प्रतिदिन देखने को मिलते हैं—चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र के प्रवेश हेतु न तो कोई नियम बना है न ही कानून उपलब्ध है—क्या इस प्रकार की स्थिति सोची समझी रणनीति के अन्तर्गत है ? चिकित्सालयों की स्थिति भी अलग नहीं है। इस क्षेत्र में अनियंत्रित नर्सिंग होम तथा पाली क्लिनिक, एक उद्योग के रूप में कारपोरेट

चिकित्सालयों की स्थापना, निजी प्रेक्टिस में गलाकाट प्रतिस्पर्धा तथा बीमा कम्पनियों ने विषम स्थिति उत्पन्न कर दी है। शासकीय चिकित्सालयों अनुपलब्ध सुविधाओं ने आग में घी डालने का काम किया है।

सरलता से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चिकित्सा शिक्षा तथा चिकित्सालयों के क्षेत्र में निजी क्षेत्र के प्रवेश, औषधि तथा उपकरण निर्माताओं की आक्रामकता तथा चिकित्सकों द्वारा अपनी विशेषज्ञता का दुरुपयोग तथा अनुचित लाभ एवं अविवेकी जैसे अनेक बिन्दु उभरे हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है नैतिक गिरावट का। वैश्वीकरण के वातावरण तथा नारे ने भी इस क्षेत्र में व्यावसायिकता को अवांछनीय प्रोत्साहन दिया है। इस शताब्दि के उत्तरार्ध में एक चिकित्सक अपने कार्यों के अतिरिक्त पारिवारिक मित्र भी होता था—यह वातावरण तथा सोच लुप्त हो चुका है। अतः हमारे सामने जटिल प्रश्न है हम क्या करें ? इस वातावरण को बदलने हेतु निम्नांकित सुझाव विचार योग्य है—

- (1) स्वास्थ्य नीति का पुनः निर्धारण
- (2) वर्तमान जैव चिकित्सकीय माडल को सामाजिक संस्कृति के रूप में परिवर्तन
- (3) क्षेत्रीय आवश्यकता आधारित स्वास्थ्य सेवाओं की संरचना
- (4) स्वास्थ्य का अन्य क्षेत्र की विकास योजनाओं में समावेश
- (5) ग्रामीण क्षेत्र के लिये अलग स्वास्थ्य योजना

स्वास्थ्य से संबंधित क्षेत्र में पाने वालों में चिकित्सक, औषधि तथा उपकरण निर्माता अग्रिम पंक्ति में हैं और न पाने वालों में भारत की शेष निर्दोष जनता।

दंत चिकित्सा शिक्षा : उज्ज्वल हो सकता है भविष्य

डॉ. एम.सी. नाहटा

दंत रोगों की व्यापकता के चलते दंत चिकित्सा तथा महाविद्यालय की स्थापना पर समाज का ध्यान आकर्षित होना अच्छी बात है। दंत रोगों का प्रतिशत शिशु वर्ग में भी कम नहीं है। निर्धन, गरीब व्यक्ति अधिक प्रभावित होते हैं। दंत रोगों में जींजीवाइटिस, मेलआक्लुजन तथा फ्लोरेसिस जैसे रोगों का प्रतिशत क्रमशः 84, 37, 36.36 है। दंत रोगों को अन्य शारीरिक रोगों का जनक भी माना जाता है। अतिरिक्त रूप से स्वस्थ सुंदर दांतों को मनुष्य की कार्यक्षमता बढ़ाने तथा आकर्षण का स्रोत के रूप में भी देखा जाता है। यह तभी संभव है, जब दांतों को आकर्षक रखने के उपायों की जानकारी हो तथा सुविधाएं भी उपलब्ध हों। इस हेतु प्रशिक्षित गुणवत्ता आधारित क्षमतावान दंत चिकित्सक उपलब्ध होना आवश्यक है। यह कार्य उच्चस्तरीय दंत चिकित्सा शिक्षा संस्थाएं कर सकती हैं।

दंत चिकित्सकों पर समाज का विश्वास सर्वाधिक है इसी कारण समाज उन्हें विशेष सुविधाएं देता है, जो सामान्यतया अन्य वर्गों को उपलब्ध नहीं है। परिणामस्वरूप दंत चिकित्सा क्षेत्र से वचनबद्ध होकर नैतिक मूल्यों, सिद्धांत निष्ठा तथा न्यायोचितता के परिपालन की अपेक्षा की जाती है। यह दंत चिकित्सा क्षेत्र के सामने गंभीर चुनौती है, जिसका सामना करना वर्तमान चिकित्सा शिक्षा प्रणाली से संभव नहीं है। अतः परिवर्तन की अपेक्षा की जा रही है।

वर्तमान में देश में 220 से अधिक दंत चिकित्सा शिक्षा महाविद्यालय हैं, जिनमें निजी संस्थाओं की संख्या अप्रत्याशित रूप से अधिक है। भौगोलिक दृष्टि से भी ये संस्थाएं असामान्य रूप से स्थापित की गई हैं। तीन राज्य महाराष्ट्र, तमिलनाडु तथा कर्नाटक में देश के 35 प्रतिशत दंत चिकित्सा शिक्षा संस्थान हैं। उत्तर-पूर्वी राज्यों में इनकी संख्या नगण्य है।

यह उपेक्षा हर मापदंड से अनुचित है। फिर संस्थाएं केवल समृद्ध तथा शहरी क्षेत्र में ही हैं। ग्रामीण तथा पिछड़ा क्षेत्र भी उपेक्षित है। देशभर में प्रतिवर्ष 1000 से अधिक छात्र प्रवेश पाते हैं, जिनका लाभ ग्रामीण तथा उपेक्षित पिछड़े क्षेत्र को नहीं मिलता है।

इस प्रकार की विषमताओं को दूर करने तथा दंत चिकित्सा शिक्षा एवं व्यवसाय को नियंत्रित करने हेतु 1948 में संसद ने एक कानून बनाकर डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया का गठन किया है। काउंसिल की साधारण सभा में राज्य सरकार, विश्वविद्यालय, दंत चिकित्सा महाविद्यालय तथा केंद्र सरकार के प्रतिनिधि सम्मिलित होने का प्रावधान है। यह संस्था अपने लक्ष्य तथा उद्देश्य में कितनी सफल हुई है, यह चर्चा का विषय है। विश्व बैंक नीति अनुसंधान के एक प्रकाशन में जन स्वास्थ्य प्रणाली के बारे में मोनिका गुप्ता ने लिखा है कि जनस्वास्थ्य कार्यों में अधिनियमों के पालन, मूल्यांकन एवं सेवा की गुणवत्ता निर्धारण में अनेक कमजोरियां हैं। अतः समाधान के उपायों पर विचार-विमर्श आवश्यक है।

दंत चिकित्सा शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है। इसे प्राप्त करने के अवसर समाज के निर्धन, महिला सहित प्रत्येक वर्ग को समान रूप से मिलना चाहिए, अन्यथा यह व्यवसाय क्षेत्र अमीरों का बनकर रह जाएगा। इस विषमता को दूर करने हेतु दंत चिकित्सा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्र में प्राथमिकता के आधार पर होना चाहिए। मध्यप्रदेश के संदर्भ में अगला दंत चिकित्सा शिक्षा महाविद्यालय झाबुआ जैसे क्षेत्र में स्थापित होना चाहिए। यह दायित्व राज्य सरकार का है। यदि राज्य सरकारें इसे न निभाएं तो डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया तथा केंद्र सरकार को प्रभावी हस्तक्षेप करना चाहिए। इस समस्या के समकक्ष कठिनाई दूर करने का प्रयास कनाडा में किया गया है, जहां ग्रामीण रेसीडेंसी कार्यक्रम बनाया गया है। सवाल यह है कि फिर भारत में ऐसा कार्यक्रम क्यों नहीं

बनाया जा सकता है ? ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने के लिए दंत चिकित्सकों को उपकरण खरीदने तथा क्लिनिक स्थापित हेतु सब्सिडी दी जाना चाहिए।

दंत चिकित्सा शिक्षा की विषमताओं को दूर करने हेतु पाठ्यक्रम का परीक्षण भी होना चाहिए। नैतिकता की शिक्षा का महत्व इस शिक्षा क्षेत्र में व्यावसायिक चुनौती के समाधान के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। अतः पाठ्यक्रम में इसका समावेश भी होना चाहिए। दंत चिकित्सा शिक्षा संस्थानों की वृद्धि एक दृष्टि से उचित है, बशर्ते कि विकेंद्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित हो तथा योजनाबद्ध रूप से की जाए, ताकि प्रति 10000 की जनसंख्या पर एक दंत चिकित्सक उपलब्ध हो सके। शिक्षा संस्थानों की वृद्धि से चिकित्सकों की संख्या बढ़ेगी तो उनके पास पहुंचना सरल होगा।

भारत का नाम तीसरी दुनिया के देशों की श्रेणी में आता रहा है, जिसे बदलने के प्रयास में वह सफलता के निकट है। जैसे-जैसे भारतीय नागरिकों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होता है, वैसे-वैसे दंत चिकित्सा हेतु मांग भी बढ़ेगी। अतः दंत चिकित्सा क्षेत्र को व्यावसायिक ईमानदारी प्रदर्शित कर सामाजिक दायित्व के प्रति किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करना होगा। इन विचारों को हम दंत चिकित्सा शिक्षा के विद्यार्थियों को दे सकें, तो भारतीय दंत चिकित्सा शिक्षा का भविष्य उज्ज्वल होगा।

स्वास्थ्य सेवा परिदृश्य

— डॉ. एम.सी. नाहटा

भारत को 1947 में प्राप्त स्वतंत्रता के पश्चात प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति हुई है - कही गति धीमी है तो कही तेज। अनेक उतार चढ़ाव भी प्रगति में अवरोध नहीं बन पाए हैं। स्वास्थ्य सेवा का महत्वपूर्ण एवं मानवीयता क्षेत्र भी किसी रूप में अपवाद नहीं हुआ है।

इस क्षेत्र से संबंधित समस्त बिन्दुओं के परीक्षण से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि स्वास्थ्य सेवाएं विशेष कर उपचार के क्षेत्र में क्रान्ति आई है जो स्पष्ट रूप से दिखती भी है और उसका लाभ आम आदमी को सामान्यतया मिल रहा है। विशेषज्ञता का विस्तार हुआ है, नई-नई तकनीक, विधाओं तथा उपकरणों ने चिकित्सकों को नए-नए कीर्तिमान स्थापित करने में भरपूर सहायता दी है। चिकित्सा के क्षेत्र में कार्डियोलॉजी, कार्डियो वास्कूलर सर्जरी, न्यूरोलॉजी, न्यूरो सर्जरी, नेफ्रोलॉजी, यूरालॉजी, एन्डो क्रायनोलॉजी, मेटाबोलिक रोग, मेडिकल एवं सर्जिकल जेनेटिक्स, इम्यूनोलॉजी, थोरेसिक सर्जरी, आनकालॉजी तथा ब्लड कैसर, नेत्र चिकित्सा विज्ञान, न्यूट्रीशनल बीमारियां, परिवार कल्याण हिमेटालॉजी, माइक्रोबायलॉजी, निओनेटोलॉजी, लेसर चिकित्सा इत्यादि में पूरा विकास हुआ है।

जनसंख्या की दृष्टि से भारतवर्ष विश्व में दूसरे स्थान पर है। 1947 में विभाजन के तत्काल बाद देश की आबादी 34.5 करोड़ थी जो एक अनुमान के अनुसार मार्च 2008 में परिवार कल्याण कार्यक्रम के बावजूद 113 करोड़ के पास पहुंच चुकी है। जनसंख्या वार्षिक वृद्धि दर 1.4 प्रतिशत है जबकि हमारे पड़ोसी देश चीन की जनसंख्या 130 करोड़ तथा वार्षिक वृद्धि दर 0.6 प्रतिशत है। अधिक जनसंख्या को विभिन्न रूप से देखा जाता है-

* काम के लिए अधिक हाथों की उपलब्धता - परिणामस्वरूप उत्पादन क्षमता में वृद्धि की संभावना।

* आबादी का 33 प्रतिशत 15 वर्ष से कम आयु वर्ग है जो गरीब, अशिक्षित तथा अकुशल है। इस वर्ग में रोग होने की संभावना अधिक होती है।

* महिला वर्ग जो कि स्वस्थ परिवार का केन्द्र बिन्दु होता है, स्थिति अच्छी नहीं है। सुखद तथ्य है कि जन्म दर घट रही है और वर्तमान में औसतन एक महिला तीन बच्चों की मां है।

* भारतीय जनसंख्या का 25.7 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे है।

1957 में देश के नागरिक की औसत आयु 32 वर्ष थी जो चिकित्सकों तथा अन्य सहयोगियों के प्रयास से 2004 में 62 वर्ष पर पहुंच कर वर्तमान में 67 वर्ष के नजदीक मानी जाती है। चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति अप्रत्याशित है। 1947 में देश में 6 चिकित्सा महाविद्यालय कार्यरत थे जिनकी संख्या वर्तमान में 425 का आंकड़ा पार कर चुकी है तथा स्नातक स्तर पर प्रतिवर्ष 10970 विद्यार्थियों को प्रवेश देने की क्षमता है। स्नातकोत्तर स्तर पर विभिन्न महाविद्यालयों में 24 सुपर स्पेशलिटी, 38 स्नातकोत्तर, 32 डिप्लोमा तथा 37 पी.एच.डी. के पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं। ऐसी ही स्थिति दंत चिकित्सा (220 महाविद्यालय), नर्सिंग, पैरा मेडीकल, फार्मसी जैसे सभी क्षेत्रों में विद्यमान है। आयुर्वेदिक, होम्योपैथी तथा युनानी चिकित्सा प्रणालियों का भी अपेक्षित विकास हुआ है। यह उत्साहवर्धक है तथा निजी क्षेत्र के प्रभावी प्रवेश का ही परिणाम है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में सफलता, असफलता दोनों ही हैं, किन्तु उपलब्धियों की श्रृंखला लम्बी है - कालरा, चेचक, प्लेग जैसी महामारियों का उन्मूलन सामान्य बात नहीं है - मलेरिया भी इसी श्रेणी में था किन्तु उसके पुनः आगमन से आघात लगा है। 1882 में राबर्ट काक द्वारा क्षय

रोग के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने के बाद भी 125 वर्षों में इस रोग पर नियंत्रण नहीं हो पाया है। पोलियो हेतु टीका का अविष्कार 1950 में श्री जोनेस साक ने किया था - इस पर नियंत्रण हेतु सघन प्रयास किए जा रहे हैं - सफलता की कामना की जा सकती है। इस हेतु पर्याप्त धन 1290 करोड़ का प्रावधान किया गया है। दृष्टिहीनता तथा विकलांगता का क्षेत्र हमारे लिए चिंता का विषय बने हुए है। चिंता अधिक है चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बावजूद दृष्टिहीनता के प्रतिशत को 14 प्रति एक हजार पर नहीं ला पाए है। अतः दृष्टिहीनता की रोकथाम हेतु 1976 में आरंभ किए गए सुनियोजित कार्यक्रम को असफलता की श्रेणी में रखने को बाध्य है। यही स्थिति विकलांगता के क्षेत्र की भी है - न तो इसकी रोकथाम हो पाई और न ही पुनर्वसन हो पाया है।

मातृ तथा शिशु मृत्यु दर भी अधिक है और क्रमशः 453 प्रति एक लाख तथा 80 प्रति एक हजार है। आश्चर्य है कि मातृ मृत्युदर कम्बोडिया, बोलीविया तथा बोट्सवाना जैसे छोटे और अविकसित देशों से अधिक है तथा 5 वर्ष से कम आयु वर्ग के शिशुओं की मृत्यु का 20 प्रतिशत भारत में है। वैसे केन्द्र सरकार द्वारा 1985 में आरंभ किया गया युनिवर्सल इम्युनाइजेशन एवं तत्पश्चात् ई.पी.आई. कार्यक्रम सफलता की श्रेणी में ही है और इनके प्रति जागरुकता कम नहीं है, यह तथ्य कम उत्साहवर्धक नहीं है।

यह कहना सामयिक होगा कि स्वास्थ्य सेवा की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्र उपेक्षित है। इस हेतु उपलब्ध अधोसंरचना, मानव संसाधन तथा अन्य सुविधाओं का 75 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में है जिसकी आबादी देश की जनसंख्या का 27 प्रतिशत है। विडंबना है कि स्वास्थ्य हेतु आवंटित बजट का 10 प्रतिशत ही ग्रामीण क्षेत्र को मिल पाता है। छूत तथा जलवाहित रोग जैसे दस्त, आन्त्र ज्वर, कुकर खांसी इत्यादि की मात्रा भी कम नहीं है।

अतः शुद्ध पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करना आवश्यक है। कैंसर, दृष्टिहीनता, अल्पदृष्टि, मानसिक रोग, उच्च रक्तचाप तथा मधुमेह जैसे रोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

अतः आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्र हेतु स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए उपायों पर गंभीर विचार-विमर्श तथा चिंतन किया जाए। इस हेतु पर्याप्त धन भी उपलब्ध कराया जाए। एक रपट के अनुसार स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए जी.डी.पी. का जब एक प्रतिशत दिया जाता था उस समय फ्रांस तथा जापान में यह क्रमशः 10.4 तथा 8 प्रतिशत था।

हमारे प्रयास एक बिन्दु पर केन्द्रित हैं—स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र को समान रूप से प्राप्त हो किन्तु वर्तमान में हम इस लक्ष्य से बहुत दूर हैं और वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत यह संभव नहीं प्रतीत होता है। वैसे तो केन्द्रीय वित्तमंत्री ने 2008-09 वित्तवर्ष में स्वास्थ्य हेतु आवंटित धन में 15 प्रतिशत की वृद्धि की है। इस निराशाजनक स्थिति में आशा कि एक किरण “नेशनल रूरल हेल्थ मिशन” के रूप में हमारे सामने है जिसका दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक रहवासी को स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ मिल सके। इस हेतु प्रादेशिक सरकारों का सहयोग आवश्यक है। इस कार्यक्रम की सफलता हेतु चिकित्सकों सहित प्रत्येक स्तर के स्वास्थ्यकर्मी आवश्यक संख्या में उपलब्ध हों। यह कार्यक्रम एक संयुक्त उपक्रम के रूप में गैर शासकीय संस्थाओं के साथ मिलकर कार्यान्वित करना निर्धारित किया गया है। कार्यक्रम हेतु 10 संकेतक तथा समीक्षा हेतु 14 बिन्दु बनाए गए हैं। सुधारात्मक परिवर्तन की जानकारी प्रस्तुत की जा रही है—यदि यह सत्य है तो ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता कोई समस्या नहीं रहेगी। किन्तु वर्तमान वातावरण जिसमें गंभीरता तथा ईमानदारी का सर्वत्र अभाव है में यह संदेहास्पद है। एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु विचारणीय है— वर्तमान में उपचार व्यवस्था में सब की

रूचि है किन्तु रोकथाम का क्षेत्र उपेक्षित है। यह कार्य वर्तमान में प्रभावी 13 राष्ट्रीय कार्यक्रमों के माध्यम से किया जा सकता है किन्तु इन कार्यक्रमों की स्थिति भी दयनीय है। यदि उपचार तथा रोकथाम के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके तो स्वास्थ्य सेवा की स्थिति ठीक मानी जा सकेगी। वर्तमान परिस्थितियों में स्वास्थ्य सेवा में गुणवत्ता आधारित विकास तथा विस्तार हेतु मेरे विनम्र सुझाव हैं—

- * नेशनल रूरल हेल्थ मिशन की कार्य प्रणाली का पुनःरीक्षण
- * कमियों तथा विसंगतियों के निराकरण हेतु स्वास्थ्य नीति का पुनःनिर्धारण,
- * राष्ट्रीय स्वास्थ्य आयोग का गठन।

यह कहना सामयिक होगा कि पूर्व में भारत सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के अन्तर्गत गठित हाई पावर कमेटी के अध्यक्ष के रूप में मैंने मेरे द्वारा प्रस्तावित चार सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत विकलांगता आयोग गठित करने का रचनात्मक सुझाव दिया था जिसे तत्कालीन केन्द्र सरकार ने मान्य किया था।

इस तथ्य पर भी विचार किया जा सकता है कि क्यों न स्वास्थ्य तथा विकलांगता क्षेत्र में समन्वय स्थापित किया जाए और इसका युक्तिसंगत एकीकरण हो, क्योंकि ये दोनों क्षेत्र एक-दूसरे के पूरक हैं। यहां पर सावधानी आवश्यक होगी की प्रभावी क्षेत्र हावी न हो जाए।

स्वास्थ्य आयोग के गठन तथा तर्कसंगत अनुशंसाओं के क्रियान्वयन से स्वास्थ्य सेवाओं की कमियाँ, विसंगतियाँ तथा प्रतिदिन की कठिनाइयों के निराकरण तथा असंतोष को दूर करने के साथ राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों को नई ताकत मिलेगी तथा उपेक्षित ग्रामीण क्षेत्र को उपयुक्त तथा पर्याप्त स्वास्थ्य सेवा का लाभ मिल सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

चिकित्सा व्यवस्था में परिवर्तन -

एक महती आवश्यकता

- डॉ. एम.सी. नाहटा

भारत के संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 47 के अनुसार 'पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने को राज्य का कर्तव्य' माना है। राज्य अपने लोगों को पोषाहार और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य, विशिष्टतया, मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक औषधियों के औषधिय प्रयोजनों से भिन्न उपभोग का प्रतिबेध करने का प्रयास करेगा।

स्वास्थ्य गतिविधियों को योजनाबद्ध रूप से संचालित करने हेतु प्रदेश के मूलभूत स्वास्थ्य विभाग का विभाजन 15 जून 1995 में चिकित्सा व्यवस्था को अधिक युक्तिसंगत तथा सुदृढ़ करने हेतु किया गया था। अपेक्षा थी कि चिकित्सा शिक्षा के स्तर में गुणात्मक सुधार होगा। विभाजन के बाद स्वास्थ्य विभाग दो विभागों में बाँट दिया गया।

1. लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण

2. चिकित्सा शिक्षा

मध्यप्रदेश के गठन के बाद से ही चिकित्सा व्यवस्था की दयनीय स्थिति यथावत है। इसमें कोई सुधार नहीं हुआ है। 1980-85 छठी पंचवर्षीय योजना के ड्राफ्ट प्लान में वर्णित स्थिति के अनुसार वर्ष 1977 में ऐलोपैथिक चिकित्सालयों तथा डिस्पेंसरी प्रति 1000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में 2 थी जो देश के अन्य राज्यों की तुलना में सबसे कम थी। वहीं अन्य राज्य जैसे केरल में यह संख्या 32, पंजाब में 16, तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल में 14 थी। 15 प्रमुख राज्यों की औसत 6 थी जो मध्यप्रदेश से तीन गुनी थी।

इन्हीं चिकित्सीय संस्थाओं में शैयाओं की संख्या भी न्यूनतम थी— 1000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में मध्यप्रदेश में यह संख्या 42 थी जबकि 15 अन्य राज्यों की औसत 164 थी। कई राज्य जैसे केरल में यह संख्या 1357, पश्चिम बंगाल में 592, तमिलनाडु में 352 तथा पंजाब में 263 थी। स्वाभाविक रूप से मध्यप्रदेश इस सुविधा में भी सबसे निचले क्रम पर था। अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि सामान्य नागरिक को चिकित्सीय लाभ न तो उस समय मिल पा रहा था न ही आज मिल रहा है।

अतः आमूल परिवर्तन, प्रशासकीय व्यवस्था में सुधार तथा नियंत्रण, बजट में आवश्यक प्रावधान और उपयोग, अनावश्यक व्यय पर रोक, राष्ट्रीय कार्यक्रमों का उचित संचालन तथा जनसंख्या वृद्धि में रोक इस परिवर्तन के प्रमुख बिन्दु होना चाहिए। जनसंख्या वृद्धि में रोक हेतु 'मेटरनल तथा चाइल्ड केयर' के लिये अधिक ध्यान, स्वस्थ शिशु हेतु 'न्यूट्रीशन कार्यक्रम' तथा प्रत्येक जिले में एक 'निओनेटल क्लिनिक' स्थापना आवश्यक है। सड़क दुर्घटनाओं में आहत व्यक्तियों को त्वरित चिकित्सा उपलब्ध कराने हेतु चलित 'एम्बुलेंस' सेवा का महत्व भी कम नहीं है। चिकित्सकों तथा चिकित्सा कर्मियों की कठिनाइयों की पहचान, निराकरण तथा इस क्षेत्र में व्यावसायिकता पर रोक, निजी नर्सिंग होम में उचित तथा सामान्य मूल्यों पर चिकित्सा की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु सुझाव से या उपाय प्राप्त करने हेतु चिकित्सा आयोग गठित करने से संभव है।

उपरोक्त सुधारात्मक उपायों पर विचार के पूर्व आवश्यक है कि हम वर्तमान व्यवस्था पर दृष्टि डालें। वर्तमान में प्रदेश की जनसंख्या 6 करोड़ 64 लाख से अधिक है। इस जनसंख्या का 37 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा जनजाति का है। प्रदेश में जनसंख्या वृद्धि दर 24.34 है जो देश की 21.34 दर से 3 प्रतिशत अधिक है। जन्म दर, मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर की भी लगभग वही स्थिति है जो क्रमशः 31.1, 10.4 तथा 90 है जो

देश के अन्य हिन्दी भाषी राज्यों की तुलना में अधिक है (उत्तरप्रदेश को छोड़कर)

स्वास्थ्य विभाग के लिये आवंटित बजट में लगातार कमी हुई है। इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार से भी चिकित्सा सेवाओं के स्तर में गिरावट आई है। दूसरी ओर आवंटित धन का भी पूरा उपयोग नहीं होता है। स्पष्ट रूप से यह प्रशासनिक अक्षमता का द्योतक है। वर्ष 1996 में प्रदेश का बजट 4.9% स्वास्थ्य विभाग को आवंटित किया था जो घटकर 2002-2003 में 1.68% रह गया है।

चिकित्सीय उपचार के लिए 12 प्रकार की संस्थाएं कार्यरत मानी जाती हैं। प्रदेश के 45 जिलों में से 36 में ही जिला चिकित्सालय स्थापित है। व्यवस्था का विवरण निम्नानुसार है -

1. जिला चिकित्सालय	36	7. टी.बी. सेनीटोरियम	2
2. शहरी सिविल अस्पताल	57	8. टी.बी. अस्पताल	7
3. शहरी सिविल डिस्पेंसरी	97	9. मेंटल हॉस्पिटल	2
4. सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र	229	10. परिवार कल्याण प्रशिक्षण केंद्र	3
5. प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र	1192	11. जिला प्रशिक्षण केंद्र	36
6. उप स्वास्थ्य केंद्र	8874	12. विशेष हॉस्पिटल	5

(लेप्रोसी होम एंड हास्पिटल)

संस्थागत व्यवस्था के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम जैसे कुष्ठ नियंत्रण, अंधत्व निवारण इत्यादि तथा केन्द्रीय क्षेत्रीय योजना, केन्द्र प्रवर्तित योजना के अंतर्गत संचालित है।

जनसंख्या नियंत्रण का कार्य भी त्रिस्तरीय बनाया गया है। राज्य जनसंख्या एवं विकास परिषद, क्रियान्वयन समिति तथा जिला समितियों के माध्यम से संचालित है। जन स्वास्थ्य रक्षक योजना, दाई प्रशिक्षण

कार्यक्रम, आयुष्मति योजना, रोगी कल्याण समिति, राज्य बिमारी सहायता निधि, राज्य प्राथमिक सेवा कोष, संक्रामक रोगों की रोकथाम, परिवार कल्याण कार्यक्रम, पल्स पोलियो, राष्ट्रीय मलेरिया रोधी कार्यक्रम, क्षय नियंत्रण, कुष्ठ उन्मूलन, दृष्टिहीनता नियंत्रण, नारू रोग उन्मूलन, याज उन्मूलन, जीवन ज्योति स्वचलित चिकित्सालय, प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य परियोजना, एकीकृत जनसंख्या एवं विकास परियोजना, एड्स नियंत्रण सेक्टर निवेश कार्यक्रम, बुनियादी स्वास्थ्य सेवा सहयोग परियोजना, राजीव गाँधी सामुदायिक स्वास्थ्य मिशन, जाइका हेल्थ डेव्हलपमेंट स्टडी, बार्डर क्लस्टर जिला स्वास्थ्य कार्यक्रम, डेनिडा फ्रेज-III सूचना शिक्षा संचार तथा खाद्य एवं औषधि प्रशासन जैसी व्यवस्थाएँ स्थापित हैं।

उपरोक्त योजनाओं और कार्यक्रमों से स्पष्ट है कि बगैर किसी मौलिक सोच, समन्वय की चिन्ता, परिणामों की समीक्षा तथा अपेक्षित परिणाम की परवाह, आधारहीनता तथा संबंधित विशेषज्ञों से परामर्श के बगैर जिसने जो चाहा तथाकथित कार्यक्रम आरंभ कर दिया। इस अव्यवस्था को गति देने में प्रशासनिक तथा राजनीतिक सततता न रहना भी जिम्मेदार है। उपयुक्त होगा कि इस अव्यवस्था के मोटे कारणों पर दृष्टि दौड़ाएं तथा दूर करने का आश्वासन हम प्रदेश की जनता को दें।

अव्यवस्था के मोटे कारण

1. आवश्यक धन की अनुपलब्धता तथा अपव्यय
2. दूरदृष्टि तथा वैचारिकता का अभाव
3. दुर्बल राजनीतिक इच्छाशक्ति तथा प्रतिदिन हस्तक्षेप
4. प्रशासनिक व्यवस्था में सुविधानुसार परिवर्तन
5. पौष्टिक भोजन, शुद्ध पेयजल, स्वच्छ सेनीटरी तथा हायजनिक व्यवस्था का अभाव

6. चिकित्सालयों में शैयाओं की कमी
7. दवाई क्रय पर नियंत्रण का अभाव
8. चिकित्सकों, चिकित्साकर्मियों की समस्याओं की उपेक्षा
9. क्षेत्र में व्यावसायिकता तथा व्यवसायियों का प्रवेश

इस स्थिति में सुधार करने हेतु दो स्तरीय प्रयास करने होंगे जिनमें से कुछ संसाधन आधारित होंगे।

(1) अल्प सूत्री

(2) दीर्घ सूची

अव्यवस्था हेतु प्रदेश की तीन स्तरीय माना जाना उचित होगा।

(1) आदिवासी अंचल

(2) ग्रामीण अंचल

(3) शहरी क्षेत्र

स्वास्थ्य का क्षेत्र ऐसा है जो व्यय आधारित है। इस विभाग से आय की अपेक्षा करना बेमानी है, विडम्बना है कि एक ओर तो जनसंख्या वृद्धि और दूसरी ओर धन आवंटन में कमी तथा आवंटित धन का पूरा उपयोग नहीं होना जैसी स्थिति है। इसे हमें उलटना होगा। जनसंख्या वृद्धि पर रोक, आवंटित धन का पूरा उपयोग, आवंटन में वृद्धि तथा अपव्यय पर प्रतिबंध यह हमारी पहली प्राथमिकता होना चाहिए। प्रदेश के बजट का 5% स्वास्थ्य विभाग को दिया जाना चाहिये और इसमें 0.5=1.0% प्रतिवर्ष वृद्धि हो ऐसी व्यवस्था की जावे आदिवासी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा व्यवस्था के विकास हेतु धन की कमी नहीं होने दी जाना आवश्यक है।

संस्थागत चिकित्सा व्यवस्था को एकीकृत कर चार स्तरीय बनाया जावे—

उप स्वास्थ्य केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा जिला चिकित्सालय ।

प्रस्तावित परिवर्तन

(1) शैयाओं की संख्या में वृद्धि— वर्तमान में प्रति एक लाख जनसंख्या पर 35 शैयाओं का प्रावधान है । परिवर्तन के आधार पर प्रत्येक जिले में 500 शैयाएं उपलब्ध कराई जावे ।

(2) प्रत्येक जिला मुख्यालय पर एक सुसज्जित जिला चिकित्सालय हो जिसमें हर क्षेत्र के विशेषज्ञ पदस्थ रहें । ऐसे विशेषज्ञों की संख्या 9 से कम नहीं होना चाहिये ।

(3) प्रत्येक जिला चिकित्सालय पर एक सुसज्जित चलित एम्बुलेंस हो जो दुर्घटना स्थान पर चिकित्सा उपलब्ध करावेगी तथा আহত व्यक्ति को जिला चिकित्सालय तक पहुँचावेगी । यह सेवा 24 घंटे उपलब्ध होना । आज की महत्ती आवश्यकता है ।

(4) प्रत्येक जिले में परिवार कल्याण केन्द्र एक स्त्री रोग विशेषज्ञ के अन्तर्गत कार्यरत रहे यह सुनिश्चित किया जावे । इसका प्रमुख कार्य परिवार नियोजन आधारित होना चाहिए ।

(5) उप स्वास्थ्य केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या में जनसंख्या आधारित वृद्धि की प्रक्रिया सतत होना चाहिये ।

(6) जनसंख्या वृद्धि रोकने हेतु —

(i) विवाह की न्यूनतम आयु सीमा में वृद्धि

(ii) शासकीय कर्मचारियों/जनप्रतिनिधि के संबंध में दिशा—निर्देश के समकक्ष अन्य वर्ग जो शासन से किसी भी प्रकार का सहयोग, सहायता, ऋण अथवा अन्य सुविधा प्राप्त करने की अपेक्षा रखने वाले व्यक्ति/संस्था

संगठन पर भी लागू किये जावें। इस कार्य में सामाजिक तथा स्वयंसेवी संगठनों, धर्मगुरुओं तथा स्थानीय/क्षेत्रीय प्रभावशाली व्यक्तियों की भागीदारी तथा मार्गदर्शन प्राप्त किया जाना अपेक्षित है।

(iii) इस पवित्र तथा राष्ट्रीयता आधारित कार्य के लिए अपेक्षित परिणाम देने वाले व्यक्ति/संस्था/संगठन को सम्मानित किया जाना आवश्यक है।

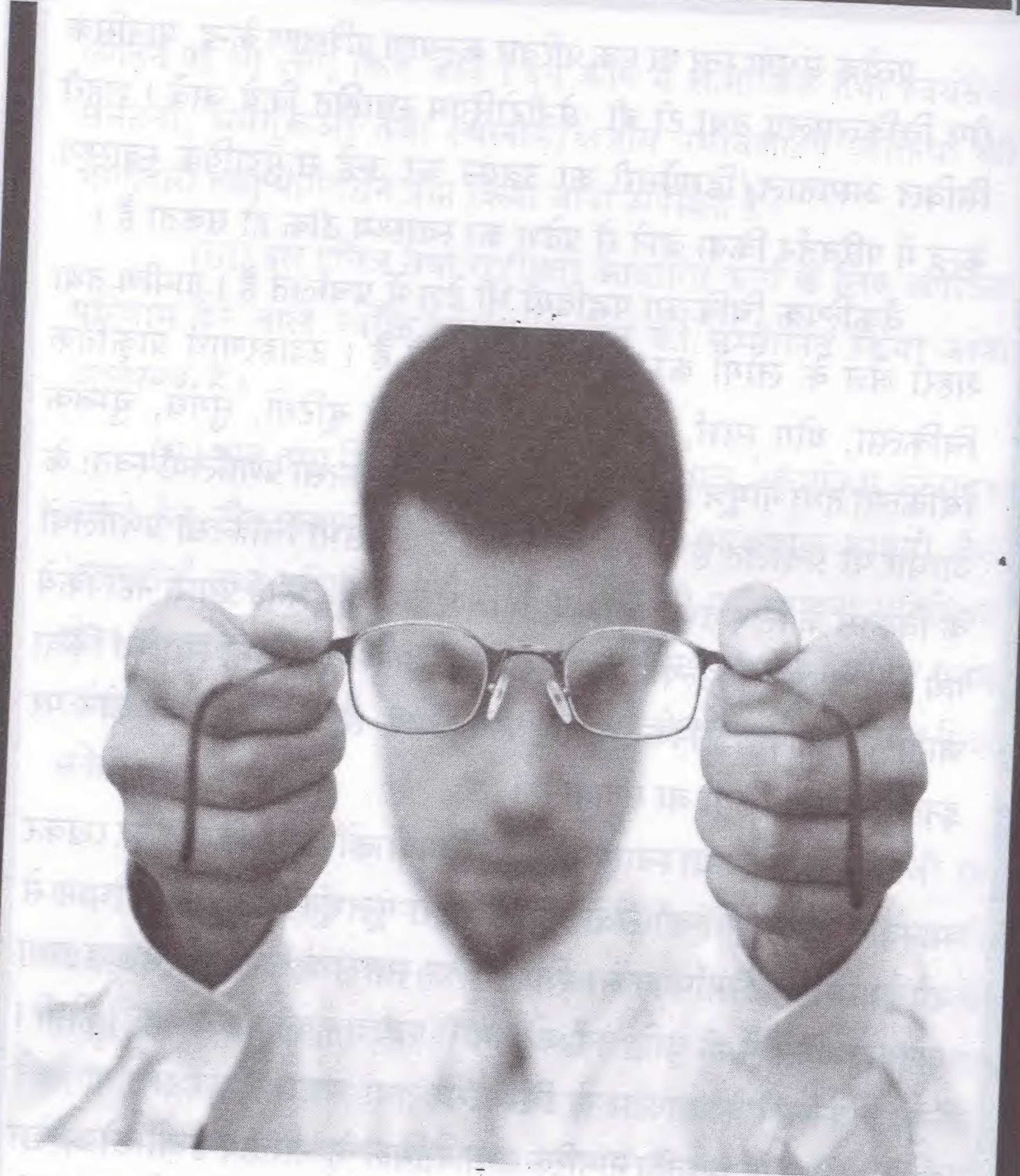
(7) मातृ तथा शिशु स्वास्थ्य हेतु 'एम.सी.एच.' कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाने हेतु टीकाकरण अनिवार्य किया जावे। आवश्यक सामग्री जैसे 'व्हेक्सीन' तथा प्रशिक्षित तकनीकी कर्मियों की पद स्थापना सुनिश्चित होना आवश्यक है। समय-समय पर शिशु तथा स्त्री रोग विशेषज्ञ एवम् सामाजिक कार्यकर्ताओं के क्षेत्र में भ्रमण करने से आशातीत परिणाम मिल सकेंगे।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम का वर्तमान स्वरूप लगभग कागजी रह गया है। इन कार्यक्रमों पर न तो किसी का नियंत्रण है, न ही समीक्षा की व्यवस्था। इन कार्यक्रमों का लाभ तथा प्रभाव वर्ग विशेष-स्लम एरिया के रहवासियों में तो दिखता ही नहीं है। इनको प्रभावी बनाने हेतु स्थानीय जन भागीदारी आवश्यक बनाई जावे। गलत जानकारी तथा आँकड़े देना दंडनीय किया जावे। यह बिन्दु भी चिकित्सा आयोग के विचारार्थ प्रस्तुत किया जावे। चलित नेत्र इकाइयाँ दो स्तर पर कार्यरत हैं—(1) केन्द्रीय (2) जिला स्तरीय। चलित इकाइयाँ लगभग ढाणापंथी हो गई है। पूरे वर्ष में केवल 3 माह भी इनका उपयोग नहीं हो पाता है। भविष्य में इन इकाइयों को समग्र नेत्र चिकित्सा का रूप देकर ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत रखा जाना उचित होगा। ये इकाइयाँ अल्पदृष्टि का कार्य भी करे तथा प्रशासनिक व्यवस्था जिले के प्रथम श्रेणी नेत्र विशेषज्ञ के अंतर्गत रहे।

प्रत्येक संभाग स्तर पर एक परिवार कल्याण प्रशिक्षण केन्द्र, मानसिक रोग चिकित्सालय तथा टी.बी. सेनीटोरियम स्थापित किये जावें। शहरी सिविल अस्पताल/डिसपेंसरी का उन्नयन कर उन्हें सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में परिवर्तन किया जाने से प्रदेश का स्वास्थ्य ठीक हो सकता है।

वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ भी देश में प्रचलित हैं। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के लोगों का इनमें विश्वास भी है। उदाहरणार्थ प्राकृतिक चिकित्सा, योग स्पर्श, आयुर्वेद, विभिन्न जड़ी बूटियों, सुगंध, चुम्बक चिकित्सा तथा गौमूत्र चिकित्सा इत्यादि। ये चिकित्सा प्रणालियाँ स्वतः के आधार पर प्रचलित हैं। योजनाबद्ध रूप से इन सभी चिकित्सा प्रणालियों के विकास के लिए तथा प्रमाणिकता सिद्ध करने हेतु कोई प्रयास नहीं किये गये। अतः एक वैकल्पिक चिकित्सा तथा अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया जाना चाहिये। वैज्ञानिक आधार पर परीक्षण होगा और सफल होने पर इनका उपयोग किया जा सकता है।

हम समृद्धि तथा स्वास्थ्य संबंधी विषयों को राजनीति से ऊपर रखकर मानवीय कार्य सूची को सर्वोपरी रखें। इस मूलभूत सिद्धांत के माध्यम से नये भारत का निर्माण करें। शिक्षा तथा स्वास्थ्य क्षेत्रों की संख्या तथा गुणवत्ता दोनों में ही वृद्धि करें जो हमारी पायदान की पहली सीढ़ी होगी। 'गुड गवर्नन्स' के माध्यम से चिकित्सा तथा स्वास्थ्य को संजोया जावे ताकि भविष्य के भारतीय नागरिक तथा वर्तमान के भारतीय बच्चों को अच्छा स्वास्थ्य मिल सके। यही हमारी कार्यशैली के आधार और मूलमंत्र भी हो यह हमारी अपेक्षा है।



विभिन्न रंगों के प्रकाश के प्रयोग से निम्नलिखित बातें ज्ञात हुई हैं—

सूर्य के प्रकाश में विभिन्न रंगों के प्रकाश के प्रयोग से निम्नलिखित बातें ज्ञात हुई हैं—

आप भी इनका उपयोग नहीं हो पाता है। यद्यपि यह प्रकाश का संपूर्ण विखंडन का एक बेहतर चित्रण है।

आप भी इनका उपयोग नहीं हो पाता है। यद्यपि यह प्रकाश का संपूर्ण विखंडन का एक बेहतर चित्रण है।

आप भी इनका उपयोग नहीं हो पाता है। यद्यपि यह प्रकाश का संपूर्ण विखंडन का एक बेहतर चित्रण है।

नेत्र चिकित्सा

अनुक्रमाणिका

1. मध्यप्रदेश में नेत्र चिकित्सा संस्थान की दरकार
2. मोतियाबिंद - अतीत से आज तक बदला परिदृश्य
3. उपेक्षित नेत्र रोग कांचबिंद (ग्लूकोमा)
4. आयु आधारित रोग - मेक्युलर डीजनरेशन
5. दृष्टिदोष भी दृष्टिहीनता का कारण है
6. बालकों में दृष्टिहीनता की रोकथाम आवश्यक
7. नेत्रकोष - कार्निया प्रत्यारोपण - समीक्षा
8. अल्पदृष्टि - समस्या और समाधान
9. नेत्र से संबंधित भ्रांतियां दूर कीजिए
10. नेत्र सुरक्षा - धूप से हानि होती है
11. स्वस्थ आँखे - उपयोगी बातें
12. अलबीनीजम

मध्यप्रदेश में नेत्र चिकित्सा संस्थान की दरकार

— डॉ. एम.सी. नाहटा

Life without sight is difficult
Life without vision is impossible

दृष्टिहीनता की रोकथाम तथा प्रतिशत को कम कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने के प्रयास के अन्तर्गत भारतवर्ष विश्व का पहला देश है जिसमें योजनाबद्ध प्रयास के रूप में एक राष्ट्रीय कार्यक्रम 1976 में बनाया गया था। किन्तु दृष्टिहीनता का प्रतिशत अपेक्षित रूप से कम न हो पाया और हम जहां के तहां हैं। अतः आवश्यक है कि इस विषय पर गंभीर विवेचना कर उपाय खोजे जाएं।

इस उद्देश्य तथा लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समय-समय पर सर्वेक्षण कर समस्या की विकरालता जानने के प्रयास किए गए। 1974 में भारतीय अनुसंधान परिषद् द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार दृष्टिहीनता का प्रतिशत 1.38 था। भारत सरकार / विश्व स्वास्थ्य संगठन 1986-89 के अनुसार यह प्रतिशत 1.49 था तथा विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर देश में दृष्टिहीनों की संख्या 1.2 करोड़ बताई गई। दृष्टिहीनता के प्रमुख कारणों में मोतियाबिन्द 62.6, दृष्टिदोष 19.7, कांचबिन्द 5.8, पोस्टरीयर सेगमेंट 4.7, कार्निया के रोग 0.9, शल्य चिकित्सा के कारण 1.2 तथा अन्य 5 प्रतिशत हैं।

एक अन्य संस्था अन्तर्राष्ट्रीय कौंसिल फॉर आफ्थेलमालाजी के अनुसार मोतियाबिन्द 47, कांचबिन्द 12, आयु आधारित मेक्युलर डिजनरेशन 9, मधुमेह 5, कार्निया रोग 5, शिशु वर्ग 4, रोहे 4 तथा अन्य 13 प्रतिशत है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन 2006 द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारी के आधार पर दृष्टि प्रभावित व्यक्तियों की संख्या 314 मिलियन है। जिनमें 153 मिलियन दृष्टिदोष से प्रभावित हैं। इस संख्या में 5-15 की आयु वर्ग की संख्या 13 मिलियन एक चिन्ता का विषय है। चिन्ता इस बात की भी है कि इस संख्या का 90 प्रतिशत भाग आर्थिक रूप से कमजोर देशों में है। अतः दुबले में दो असाढ़ की कहावत चरितार्थ होती है।

इस अवसर पर यह जानना सामयिक होगा कि 100 करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले देश भारत में नेत्र विशेषज्ञों की संख्या 11,000 है। अतः लगभग एक लाख से अधिक जनसंख्या को केवल एक नेत्र विशेषज्ञ की सेवा का लाभ मिलता है। चूंकि अधिकांश विशेषज्ञ शहरी क्षेत्र में कार्य करते हैं अतः ग्रामीण क्षेत्र की स्थिति और अधिक गंभीर तथा भयानक है जहां 2.5 लाख की जनसंख्या पर एक विशेषज्ञ उपलब्ध है – अत्यन्त सोचनीय स्थिति है। साथ ही नेत्र चिकित्सा विज्ञान में प्रशिक्षित पैरामेडिकल व्यक्तियों की संख्या भी अप्रत्याशित रूप से कम होने के कारण एक चिकित्सक को 1.3-1.4 पैरामेडिकल कार्यकर्ता की सहायता प्राप्त होती है – स्वाभाविक रूप से गुणवत्ता प्रभावित होती है।

हम शैक्षणिक संस्थाओं पर विचार करें तो नेत्र चिकित्सा विज्ञान की शीर्ष संस्थान दिल्ली में है तथा 11 क्षेत्रीय संस्थान अन्य स्थानों पर कार्यरत हैं। 1984 में मध्यप्रदेश में स्थापित क्षेत्रीय संस्थान की प्रारंभिक अवस्था में हुई दुर्दशा की जितनी चर्चा की जाए कम ही होगी। यह संस्थान चिकित्सा महाविद्यालय के नेत्र विभाग के रूप में कार्य करने को बाध्य हुई और स्थिति यथावत है। प्रदेश में शासकीय चिकित्सा महाविद्यालयों की संख्या 5 है। पिछले कुछ वर्षों में निजी चिकित्सा महाविद्यालय भी स्थापित किए गए जो अपने शैशव काल में होने के साथ सेवानिवृत्त चिकित्सा शिक्षकों के

पुनर्वसन केन्द्र बन गए। निजी चिकित्सा महाविद्यालयों से इस प्रकार की अपेक्षा करना बेमानी है।

प्रदेश का स्वास्थ्य विभाग भी दृष्टिहीनता नियंत्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत स्कूली छात्रों के नेत्र परीक्षण तथा अन्य कार्यक्रम संचालित करता है — गंभीरता दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती है। परिणामस्वरूप ये कार्यक्रम कागजी बन गए हैं।

प्रदेश की चिकित्सा शिक्षा संस्थाएं गुणवत्ता आधारित प्रशिक्षित चिकित्सक उपलब्ध कराने का दायित्व निभाने तथा अनुसंधान के पवित्र उद्देश्य हेतु स्थापित किए गए हैं। प्रदेश के स्वास्थ्य हेतु इन शैक्षणिक संस्थाओं की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन संस्थाओं में हर प्रकार की बीमारी के उपचार हेतु प्रशिक्षण देना अपेक्षित है। प्रत्येक नेत्र विभाग में मोतियाबिन्द के अतिरिक्त कांचबिन्द, कार्निया तथा रिफ्रेक्टिव सर्जरी, रेटिना तथा व्हिट्रियस, भेंगापन, अल्पदृष्टि तथा पुनर्वसन, सामुदायिक नेत्र चिकित्सा विज्ञान तथा शिशु वर्ग में होने वाले नेत्र रोग एवं कास्मेटिक सर्जरी इत्यादि के उपचार की व्यवस्था होना चाहिए ताकि इन क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जा सके। एक अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु है— देश के औसत नागरिक की औसत आयु में वृद्धि हुई है जिसके कारण आयु आधारित रोगों में वृद्धि हुई है अतः अल्पदृष्टि की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार की व्यवस्था वर्तमान में विद्यमान नहीं है इस हेतु एक प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए जो निम्नांकित सिद्धान्तों पर आधारित हो —

1. समाज की आवश्यकता।
2. व्यापक आई केयर का स्वास्थ्य केयर में समावेश।
3. आई केयर हेतु समूहों का गठन जिसमें नेत्र विशेषज्ञ के अतिरिक्त पैरामेडिकल, परिचारिका तथा आवश्यक रूप से ऑप्टोमैट्रिस्ट सम्मिलित हों।

4. प्रशिक्षण हेतु तथा प्रशिक्षणोपरांत अद्योसंरचना की उपलब्धता।
5. नेत्र सुरक्षा तथा दृष्टिहीनता की रोकथाम हेतु प्रयास – स्मरण रहे वर्तमान में नेत्र चिकित्सा विज्ञान का यह सर्वाधिक उपेक्षित क्षेत्र है।

वर्तमान में देश में दक्षिण भारत में चैन्नई, मदुराई तथा हैदराबाद में क्रमशः शंकर नेत्रालय, अरविन्द नेत्र चिकित्सालय तथा एल.व्ही. प्रसाद जैसी संस्थाएं विद्यमान हैं किन्तु दिल्ली स्थित डॉ. राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान के अतिरिक्त इस प्रकार की संस्थाएं मध्यप्रदेश सहित देश के किसी भी भाग में नहीं हैं। मध्यप्रदेश के नेत्र चिकित्सा विज्ञान की स्थापना हेतु पर्याप्त वातावरण उपलब्ध है। जिसका श्रेय प्रदेश के प्रमुख नगर इन्दौर को जाता है। इस नगर में नेत्र चिकित्सा के क्षेत्र के अनेक विशेषज्ञताओं-इलेक्ट्रोरेटीनोग्राफी भेंगापन, नेत्र कोष तथा कार्निया प्रत्यारोपण, मोतियाबिंद के उपचार हेतु कृत्रिम लेंस, रेटीना तथा विट्रीयस शल्य चिकित्सा, लेजर चिकित्सा, अल्पदृष्टि, रिफ्रेक्टिव सर्जरी, नेत्र सुरक्षा इत्यादि के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य हुआ है। स्थानीय शासकीय चिकित्सा महाविद्यालय का 72 बिस्तरों वाला नेत्र विभाग प्रदेश का सबसे बड़ा विभाग भी है। इसी नगर में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण हेतु अध्ययनरत विद्यार्थियों, नेत्र चिकित्सकों तथा नेत्र सुरक्षा के क्षेत्र में प्रोत्साहन हेतु क्रमशः डॉ. पंडित, डॉ. जी.एस. वागले तथा डॉ. एम.सी. नाहटा के नाम से स्थापित देश का नेत्र सुरक्षा के क्षेत्र में संभवतया प्रथम पुरस्कार दिया जाता है। राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन भी आयोजित हो चुके हैं। तात्पर्य है कि प्रदेश में नेत्र चिकित्सा संस्थान का पर्याप्त वातावरण है। किन्तु इसका उपयोग नहीं किया गया। जिसका खामियाजा प्रदेश की जनता को उठाना पड़ता है और प्रदेश के बाहर उपचार हेतु जाने को बाध्य होना पड़ता है।

स्पष्ट है कि प्रदेश में उच्च स्तरीय चिकित्सा संस्थाओं की आवश्यकता है। नेत्र चिकित्सा संस्थान प्राथमिकता के आधार पर प्रथम पायदान पर है जिसके माध्यम से हर तरह की कम खर्चीली नेत्र चिकित्सा प्रदेशवासियों को प्राप्त हो सके। इस संस्थान की स्थापना से नेत्र चिकित्सा से संबंधित क्षेत्र जैसे-आप्टोमिटरी, चशमों के उत्पादन कांटेक्ट लेंस, कास्मेटिक सर्जरी तथा नेत्र चिकित्सा में नर्सिंग प्रशिक्षण इत्यादि विधाएँ भी स्थापित हो सकेगी तथा अन्य कमियों के दूर होने का मार्ग भी प्रशस्त होगा। उपरोक्त स्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए राज्य शासन को नेत्र चिकित्सा संस्थान की स्थापना का संकल्प लेना चाहिये जो सबके हित में होगा, हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकेगी और दृष्टिहीनता का प्रतिशत भी कम होगा जिस हेतु हम सतत प्रयासरत हैं।

मोतियाबिंद - अतीत से आज तक बदला परिदृश्य

डॉ. एम.सी. नाहटा

मोतियाबिंद आयु आधारित नेत्र रोग है। इस रोग के प्रत्येक पहलु में क्रांतिकारक परिवर्तन हुए हैं। जिसका लाभ मोतियाबिंद पीड़ित व्यक्ति को मिल रहा है। इस रोग की चर्चा नेत्र विशेषज्ञों के समूह के अतिरिक्त, सामाजिक तथा धार्मिक आयोजनों में भी हो रही है। यह शुभ संकेत है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस रोग का उल्लेख प्राचीन साहित्य में 3000 वर्ष पूर्व सुश्रुत तथा 1753 में जेकक्वेस्ट डेव्हीयल के नाम से उपलब्ध है।

मोतियाबिंद का उपचार एक सूत्रीय उद्देश्य आधारित है कि अपारदर्शी लेंस को आंख की ज्योति रेखा से हटाना। आज तक रोकथाम के सारे प्रयास असफल रहे हैं और किसी भी प्रकार की औषधि इस रोग से निजात दिलाने में सफल नहीं हो पाई है। अतः शल्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प चिकित्सकों के सामने है तथा विभिन्न प्रणालियों से होने वाले लाभ-हानि तथा अनुभव के आधार पर परिवर्तन करते हैं। कल की श्रेष्ठ विधि आज श्रेष्ठ नहीं रही है और इसी गति से आज की विधि भविष्य में नहीं रहने की संभावना है।

सर्वप्रथम शल्य चिकित्सा का श्रेय भारतीय विशेषज्ञ सुश्रुत को प्राप्त है। जिन्होंने काऊचिंग नामक प्रणाली से शल्य चिकित्सा आरंभ कर भविष्य में उपचार की प्रणाली की रेखांकित किया था। प्रणाली से आशातीत लाभ नहीं मिला अपितु विषमताओं के कारण हानि हुई थी। अतः परिवर्तन एवं सुधार के प्रयास अपेक्षित थे। परिणाम स्वरूप 1753 में डेव्हीयल नामक विशेषज्ञ ने एक्सट्राकेपसुलर टांके रहित प्रणाली विकसित कर चिकित्सा समाज के सामने प्रस्तुत किया। यह प्रणाली सुरक्षित तो थी किन्तु नेत्र ज्योति में आशातीत अपेक्षित सुधार नहीं होता था। सतत् अनुसंधान के

फलस्वरूप इंट्राकेपसूलर प्रणाली का विकास हुआ तथा कारलेट 1894, बेरेकर 1917 एवं तत्पश्चात् आरुगा ने इंट्राकेपसूलर प्रणाली विभिन्न प्रकार से करने का सफल प्रयास किया। इसके बाद क्रायो सर्जरी विधि का विकास हुआ तथा लोकप्रिय भी हुई। इंट्राकेपसूलर प्रणाली में सुरक्षा की दृष्टि से टांके लगाना अनिवार्य माना जाता था। किंतु टांकों की वजह से एस्टीगमेटिसम दृष्टि दोष होता था। जिसकी पूर्ति चश्मे में सीलेड्रीकल लेंस के माध्यम से की जाती थी। उस समय इस प्रणाली को कठिन किंतु अधिक लाभदायक माना जाता था। तत्पश्चात् कृत्रिम लेंस प्रत्यारोपण का युग प्रारंभ हुआ जिसके अंतर्गत 1949 में ब्रिटेन के शल्य चिकित्सक रिडले ने कृत्रिम लेंस प्रत्यारोपित कर पूरे विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। इस प्रणाली में लगातार परिवर्तन तथा सुधार हो रहे हैं। इन्हीं प्रयासों से वर्तमान फेको इमल्सी फीकेशन प्रणाली पर पहुंचे हैं। इस प्रणाली में मशीन द्वारा लेंस के छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें निकाला जाता है और उसी स्थान पर कृत्रिम लेंस प्रत्यारोपित किया जाता है। यह प्रणाली भी टांके रहित होती है। वैसे फेको मशीन नई नहीं है किन्तु अवश्य ही इसमें दिन प्रतिदिन परिवर्तन हो रहे हैं और सुरक्षा तथा सफलता का प्रतिशत नए शिखर पर पहुंच चुका है।

फेको अर्थात् आधुनिक प्रणाली के विकास का श्रेय उन वैज्ञानिकों को भी जाता है जिन्होंने नैत्र विशेषज्ञों की आवश्यकता आधारित मशीनों का निर्माण किया है। आधुनिक प्रणाली की सफलता फेको मशीन, माइक्रोस्कोप, स्केन तथा विशेष प्रकार के पदार्थ तथा औषधियों के बगैर संभव नहीं है जो वर्तमान में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। कृत्रिम लेंस की गुणवत्ता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

इस आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के लाभ एक नहीं अनेक हैं—

1. मरीज को चिकित्सालय में रहने की आवश्यकता नहीं होती।
2. शल्य चिकित्सा के कुछ ही दिनों बाद अपने काम पर लौट सकते हैं।
3. मरीज को मोतियाबिंद के पकने की प्रतीक्षा नहीं करना पड़ती है, इस बिन्दू पर सतर्कता की आवश्यकता है। अति उत्साह में इसका दुरुपयोग न होने लगे।
4. शल्य चिकित्सा के बाद लगाने वाले चश्मे का नंबर बहुत कम होता है।
5. नजदीक के काम हेतु चश्मा लगाना अनिवार्य है।

वर्तमान आधुनिक चिकित्सा प्रणाली पहले की तुलना में खर्चीली है तथा इस प्रणाली से शल्य चिकित्सा चिकित्सालय में ही संभव है। नेत्र शिविर में इस प्रणाली से शल्य चिकित्सा न तो संभव है न ही की जाना चाहिए। उसी प्रकार इस प्रणाली से शल्य चिकित्सा में समय अधिक लगता है जिसकी और न तो चिकित्सक को न ही मरीज को ध्यान देना चाहिए - शल्य चिकित्सकों का एक मात्र उद्देश्य है कि खोई हुई नेत्र ज्योति पुनः मिल जाए जिसके लिए चिकित्सक यथा संभव प्रयास कर रहे हैं - यह उत्साहवर्धक है।

उपेक्षित नेत्र रोग कांचबिंद (ग्लाकोमा)

डॉ. एम.सी. नाहटा

अंधत्व निवारण, नेत्र रोग तथा नेत्र सुरक्षा पर चर्चा असामान्य बात नहीं है। दूरगामी परिणामों को दृष्टिगत रखते हुवे आवश्यक भी है।

उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार पूरे विश्व में दृष्टिहीनों की संख्या 5 करोड़ से अधिक है। इस विशाल संख्या का 50 प्रतिशत भाग भारत सहित अन्य विकासशील देशों में है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार कांचबिंद दृष्टिहीनता के प्रमुख कारणों की तीसरी पायदान पर है। इस रोग के संभावित प्रकरणों की संख्या भी 1 करोड़ 5 लाख अनुमानित है। विकासशील देशों में 14-18 प्रतिशत दृष्टिहीन केवल कांचबिंद के कारण हुए हैं। केन्या, मलावी तथा अफ्रीकी देशों में कांचबिंद का प्रतिशत 18-20 है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विकसित देशों में 40 वर्ष से अधिक आयु वर्ग में यह रोग 1.5-2 प्रतिशत व्यक्तियों को प्रभावित करता है। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार भारतवर्ष में भी इस रोग का प्रतिशत 14-18 है। अमेरिका जैसे सम्पन्न, विकसित तथा शिक्षित जनसंख्या वाले देशों में भी प्रति 7 दृष्टिहीन व्यक्तियों में से एक कांचबिंद के कारण हैं।

इस भयानक स्थिति के बावजूद अनिश्चित तथा अनअपेक्षित परिणाम के भय, शल्य चिकित्सा की जटिलता, ईलाज के पश्चात नेत्र ज्योति में सुधार नहीं होना तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की मानसिक अवधारणाओं ने नेत्र विशेषज्ञों में इस रोग के प्रति अरुचि उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस रोग के उचित उपचार के बाद नेत्र ज्योति कम नहीं होती है। दुःखद है कि यह महत्वपूर्ण तथ्य भी नजर अंदाज हो गया है। फलस्वरूप मध्य प्रदेश सहित अनेक प्रदेशों में कांचबिंद के निदान, उपचार तथा रोकथाम के लिए एक भी सुसज्जित केन्द्र स्थापित नहीं हो पाया है। अपवाद स्वरूप पूरे देश में दिल्ली के राजेन्द्रप्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान, हैदराबाद स्थित

एल.व्ही. प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान तथा शंकर नेत्रालय चैन्नई जैसे कुछ गिने चुने स्थानों पर ही कांचबिंद की उपयुक्त उपचार व्यवस्था उपलब्ध है। आज पूरे विश्व में कांचबिंद के कारण दृष्टिहीनों की संख्या 85 लाख है।

इसके विपरित मोतियाबिन्द की बाहुल्यता, सरल शल्य चिकित्सा, त्वरित अपेक्षित परिणाम तथा अधिक आर्थिक लाभ ने मोतियाबिन्द के प्रति नेत्र चिकित्सकों तथा स्वयंसेवी संगठनों को अप्रत्याशित रूप से आकर्षित किया है। परिणाम स्वरूप नेत्र शल्य चिकित्सा, मोतियाबिन्द तक सीमट गई, पूरा ध्यान मोतियाबिन्द पर केन्द्रीत हो गया तथा वातावरण ही मोतियाबिन्द मय बन गया है। अतः लगभग 25 प्रतिशत नेत्र रोगों से ध्यान हट गया है। कांचबिन्द इनमें अग्रिम पंक्ति में है। इस स्थिति के निर्माण हेतु किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष को दोष देना उचित नहीं है। दोष तो परिवर्तित मानसिकता तथा व्यवस्था का है जो हम सबने निर्मित की है। सामान्य रूप से यह रोग 50 वर्ष की आयु के पश्चात् होता है। जन्म से इस रोग के होने की संभावना होती है। जन्मजात रोग को इन्फेन्टाईल ग्लाकोमा कहते हैं जो दोनों आँखों को प्रभावित कर सकता है। वंशानुगत तथा चोटग्रस्त आँख में कांचबिन्द होने की संभावना अधिक होती है।

चिकित्सकों ने वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर कांचबिन्द को दो प्रकार का माना है—

1. प्रायमरी

2. सेकेंडरी

प्रायमरी ग्लाकोमा (कांचबिन्द) भी दो प्रकार का होता है—

(अ) ओपन एंगल (ब) क्लोस्ड एंगल

एक तथ्यपरक बात है कि जब हम कांचबिन्द की चर्चा करते हैं, हमारा तात्पर्य हमेशा प्रायमरी ग्लाकोमा से ही होता है। कांचबिन्द से संबंधित

जानकारी सामान्य जनमानस के लिये उपयोगी तथा आवश्यक है जो कि इस जटिल रोग के निराकरण में सहयोगी की भूमिका निभा सकती है।

कांचबिन्द से तात्पर्य : जिस प्रकार शरीर का सामान्य रक्तचाप होता है, ठीक उसी प्रकार नेत्र का भी सामान्य दबाव-पेशर होता है जिसे (इंट्राआक्युलर प्रेशर) कहते हैं। यह प्रेशर टोनोमीटर जैसे साधारण यंत्र से मापा जा सकता है। आंख का सामान्य प्रेशर 15-25 मी.मी. ऑफ मरक्युरी होता है। 25 मी.मी. से अधिक प्रेशर कांचबिन्द का घोटक है। यह स्थिति आंख में प्रतिक्षण बनने वाले तरल पदार्थ (एक्वीयस ह्यूमर) के निर्गम में अवरोध से उत्पन्न होती है। अपवाद स्वरूप कुछ प्रकरणों में सामान्य प्रेशर के बावजूद भी कांचबिन्द की स्थिति होती है जिसकी पहचान लोटेंशन ग्लाकोमा के रूप में की जाती है।

कांचबिन्द रोग के लक्षणों में अत्यधिक विभिन्नता होती है जो कि बिमारी के स्वरूप पर आधारित है। प्रायमरी ओपन एंगल ग्लाकोमा तो लगभग लक्षण विहिन होता है। अतः कई बार अन्य कारणों से कराये गये नेत्र परीक्षण के समय बीमारी का पता लगता है तब तक नेत्र ज्योति में काफी क्षति हो चुकी होती है।

इससे भिन्न क्लोस्ड एंगल ग्लाकोमा में बल्ब या अन्य प्रकार की रोशनी के आस-पास रंगबिरंगे चक्र दिखते हैं। आंख में लाली, पानी आना, सिर तथा आंख में दर्द तथा नेत्र ज्योति में कमी हो सकती है। इन लक्षणों को गंभीरता से न लेने से स्थायी दृष्टिहीनता हो जाती है।

कांचबिन्द के निदान में सावधानी अत्यन्त आवश्यक है। प्रारंभिक अवस्था में निदान तथा उपचार से नेत्रज्योति में होने वाली कमी को रोका जा सकता है। यही रोकथाम की रामबाण दवा है। निदान के लिये टोनोमीटर, पैरीमीटर, जेरेम स्क्रीन तथा गोनियोस्केप उपकरण नितान्त आवश्यक हैं। विशेष प्रकार के उपकरण तथा जांच जैसे टोनोग्राफी, इलेक्ट्रो रेटिनोग्राफी,

फलोरोसिन एंजीयोग्राफी तथा डार्क अडाप्टेशन मापक यंत्र तथा परीक्षण से रोग की बारीकियों को अधिक सक्षमता से समझा जा सकता है। उपकरणों द्वारा परीक्षण से पाए गए तथ्य उपचार निर्धारण में अत्याधिक सहायता व उपयोगी होते हैं।

कांचबिंद का उपचार, औषधि तथा शल्य चिकित्सा द्वारा किया जाता है। विभिन्न प्रकार की औषधियां उपलब्ध भी हैं। औषधि द्वारा उपचारित रोगियों को निश्चित समय पर नियमित रूप से चिकित्सकों द्वारा परीक्षण कराना आवश्यक है। दूर-दराज के क्षेत्र में रहने वाले रोगी तथा अन्य कारणों से ऐसा न कर पाने की स्थिति में शल्य चिकित्सा ही उपचार का एकमात्र विकल्प है। शल्य चिकित्सा लेजर मशीन से भी की जा सकती है और परिणाम भी उत्साहवर्धक है। यह प्रशिक्षित चिकित्सकों का कार्यक्षेत्र है और चिकित्सा प्रणाली के चयन में वो ही सक्षम है।

कांचबिंद से संबंधित परिदृश्य के परीक्षण से स्पष्ट है कि वर्तमान स्थिति निराशाजनक है। निदान के लिए न्यूनतम उपकरण तो चिकित्सा महाविद्यालय के नेत्र विभाग में संभवतया उपलब्ध है, किंतु उपयोग कभी कभार ही होता है। अतः ख्यातनाम चिकित्सक भी इस क्षेत्र में अनभिज्ञ होते हैं और प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले स्नातकोत्तर छात्र (भविष्य के नेत्र विशेषज्ञ) इस क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। इस स्थिति के निर्माण में चिकित्सा शिक्षकों के पास समय की कमी तथा कार्य की बाहुल्यता भी दोषी है, किंतु इससे रोग की उपेक्षा को न्यायोचित तो नहीं ठहराया जा सकता है। जिला तथा अन्य नेत्र चिकित्सालयों में तो स्थिति अत्यधिक दयनीय तथा चिंताजनक है, जहां न तो उपकरण उपलब्ध है और न ही उपयोग के लिए प्रशिक्षित चिकित्सक हैं। पर्याप्त सुधार की अविलंब आवश्यकता है। विडम्बना है कि दृष्टिहीनता को कम करने के लिए ढेर सारे प्रयासों में कांचबिंद जैसे महत्वपूर्ण रोग के निदान तथा उपचार

के किसी भी उपाय का समावेश नहीं हुआ है।

इस स्थिति से निजात पाने के पवित्र उद्देश्य से पाश्चात्य देशों में प्रयास प्रारंभ हो चुके हैं। दिनांक 6-7 मई 2000 को बाल्टिमोर अमेरिका में 60 विशिष्ट व्यक्तियों के समूह ने एक बैठक आयोजित कर विचार विमर्श किया। इस बैठक में विश्व स्वास्थ्य संगठन, दाना सेंटर फार प्रिवेंटिंग ऑफ लमालाजी, विलमर इंस्टीट्यूट तथा जान हाफकिंस विश्व विद्यालय ने भी भागीदारी की थी।

इसके अतिरिक्त कांचबिंद रोग के विभिन्न पहलुओं पर नार्थ अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, मांगोलिया, सिंगापुर में कुछ सर्वेक्षण भी किए गए तथा महत्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश भी डाला गया है। इसी प्रकार की एक अन्य बैठक वर्ल्डवाइड ग्लाकोमा 2000 में चर्चा के माध्यम से अंधत्व तथा स्वास्थ्य कार्यक्रम में सम्मिलित करने हेतु एक योजना का प्रारूप भी तैयार किया है।

भारत सहित अन्य विकासशील देशों में भी उपेक्षित नेत्र रोग कांचबिंद के निदान, उपचार तथा रोकथाम हेतु योजनाबद्ध प्रयासों की त्वरित आवश्यकता है। इस कार्य में चिकित्सक, समाज तथा शासन के संगठित प्रयास ही सफलता की कुंजी हो सकती है। नेत्र विशेषज्ञों का सहयोग तथा मार्गदर्शन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रस्तावित योजना में निम्नलिखित बिंदुओं का समावेश अनिवार्य प्रतीत होता है—

1. जनजागरण तथा रोग की जानकारी।
2. 50 वर्ष से अधिक आयु वाली जनसंख्या का प्रतिवर्ष नेत्र परीक्षण।
3. प्रत्येक चिकित्सा महाविद्यालय के नेत्र विभाग में कांचबिंद प्रकोष्ठ की स्थापना, उपकरणों की उपलब्धता तथा उपयोग की सुनिश्चितता।

4. जिला तथा अन्य नेत्र चिकित्सालयों में उपकरण तथा प्रशिक्षित विशेषज्ञों की उपलब्धता।
5. ग्रामीण क्षेत्र में पदस्थ तथा कार्यरत विशेषज्ञों के लिए 2 वर्ष में एक बार प्रशिक्षण व्यवस्था।
6. ग्रामीण तथा आदिवासी अंचलों में कांचबिंद निदान शिविर का आयोजन।
7. वर्तमान स्वरूप में आयोजित होने वाले नेत्र शिविरों की व्यवस्था में सुधार अन्यथा प्रतिबंध।

नेत्र चिकित्सा तथा सामाजिक संगठन के समन्वित प्रयास से उद्देश्य तथा लक्ष्य की प्राप्ति संभव है। वर्तमान भूमिका शासकीय तंत्र से अपेक्षा करना बेईमानी है।

आयु आधारित नेत्र रोग - मेक्युलर डीजनरेशन

डॉ. एम.सी. नाहटा

बढ़ती आयु से नेत्र सहित शरीर के सारे अंग प्रभावित होते हैं। आयु आधारित नेत्र रोग मोतियाबिंद सर्वाधिक चर्चा का विषय है - जिसके एक नहीं अनेक कारण हैं। मोतियाबिंद की बाहुल्यता, उपचार व्यवस्था तथा नेत्र शिविरों के आयोजनों ने इस रोग के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके सुखद परिणाम भी मिले हैं - इस रोग का बेकलाग समाप्त हो चुका है। इसका दुसरा पहलु भी है मोतियाबिंद के उपचार के सरलीकरण, समुचित व्यवस्था तथा सफलता के कारण समाज, शासन तथा नेत्र चिकित्सक अन्य जटिल रोगों से विमुक्त हैं। इस श्रेणी के रोगों में मेक्युलर डीजनरेशन के प्रतिशत में एक ओर वृद्धि हो रही है और दूसरी तरफ इस रोग के निदान तथा उपचार की व्यवस्था लगभग उपेक्षित है। स्थिति तो इतनी निराशाजनक है कि विशेषज्ञों के सम्मेलन में इस विषय पर या तो चर्चा ही नहीं होती ओर होती है तो वहाँ उपस्थिति नगण्य होती है।

बढ़ती मानवीय औसत आयु के युग में इस रोग के प्रतिशत में वृद्धि अवश्यस्भावी है जो अल्पदृष्टि का प्रमुख कारण बन जावेगा। अतः आवश्यक है कि इस रोग के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श करें। सामयिक होगा कि नेत्र संरचना तथा नेत्र के कर्तव्य पर भी हम दृष्टि दौड़ावें।

मानव शरीर का अंग नेत्र आकार में सबसे छोटा किन्तु कर्तव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसकी संरचना भी विशेष प्रकार की है तथा कार्य प्रणाली भी उतनी ही विलक्षण है। सामान्य रूप से देखने के अतिरिक्त नेत्र सतत बदलते बिम्ब श्री डायमेशेलिटी, रंगों के बीच छोटा सा अन्तर, केन्द्र बदलने की अद्वितीय क्षमता और तीव्रगति से बदलते परिदृश्य को पहचानना उनमें प्रमुख माने जाते हैं। उसी प्रकार नेत्र की संरचना के बारे में सर्वाधिक

महत्वपूर्ण तथ्य है कि मस्तिष्क से शुरू होने वाली 12 नसों में से 50 प्रतिशत याने 6 नेत्रों के कार्यों को संचालित करती है।

नेत्र के प्रत्येक भाग की भी अलग-अलग भूमिका है। मेक्यूलर डीजनरेशन में रेटिना जिसे आंख का पर्दा कहते हैं का मेक्युला के नाम से पहचाना जाने वाला मध्य भाग प्रभावित होता है। रेटिना एक पारदर्शी 10 लाख से अधिक नर्व सेल तथा सपोर्टिंग टीश्यु से बना है जो कि सम्मिलित रूप से आप्टिक नर्व बनाते हैं तथा नेत्र से मस्तिष्क के ज्योति केन्द्र पर पहुंचाती है जिससे हम देखते हैं।

इस प्रारंभिक जानकारी के पश्चात आवश्यक है कि हम इस रोग के सम्भावित कारणों तथा उपचार के बारे में विचार विमर्श करें। यह कहना सामयिक होगा कि नेत्र रोगों के उपचार का इतिहास प्राचीन भी है और रोचक भी है। वर्तमान में रोहे के नाम से जाना जाने वाले रोग के बारे में उल्लेख 5000 वर्ष पूर्व इजीप्शियन साहित्य में हुआ था। इसके पश्चात 2200 वर्ष पूर्व आंसुग्रंथी की बीमारी का उल्लेख हुआ। मोतियाबिंद तथा कांचबिंद के बारे में प्रामाणिक रूप से तथ्य 19 वीं शताब्दी के मध्य से मिलना प्रारम्भ हुए थे। किन्तु संदर्भित मेक्युलर डीजनरेशन के बारे में जानकारी कभी कभार मिलती थी। इसका यह तात्पर्य नहीं कि रोग होता ही नहीं था - यथार्थ तो यह है कि रोग की जानकारी ही उपलब्ध नहीं थी क्योंकि विशेषज्ञों की इस विषय में अरुचि थी। इस रोग के बारे में जांच तथा अध्ययन का कार्य आफथेलमोस्कोप नामक उपकरण के आविष्कार के 100 वर्षों बाद आरम्भ हुआ। वर्तमान स्थिति भी उत्साहपूर्वक नहीं है एवं इस परिदृश्य में निम्न कारणों से यह रोग होना सम्भावित माना जाता है।

1. बढ़ती हुई आयु

2. वंशानुगत

3. तम्बाकु, शराब तथा कुछ विशेष औषधियों जैसे स्तनकैंसर, लुपस तथा मानसिक रोग निवारण हेतु दी जाने वाली औषधियों जैसे क्रमशः टेनोक्सीपेन, क्लोरोप्रोरेन, मेलेरील तथा थोराम्पीन ।
4. पर्यावरण आधारित - वायुमंडल को दुषित करने वाले कण, सल्फर डाय आक्साइड, कार्बन मानोआक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड तथा पृथ्वी पर ओझोन परत पर बढ़ती विषमता ।
5. खाद्य पदार्थ संबंधित - भोजन में व्हीटामिन तथा मिनरल्स की कमी विशेषकर लूटिन नामक तत्व की कमी जो हरी पत्ती वाली सब्जियों जैसे पालक में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है ।
6. अधिक वजन
7. रेटिना के पीछे रक्त स्राव में कमी । नेत्र विशेषज्ञ इस रोग को दो तरह का मानते हैं - 1. वेट, 2. ड्राय - ड्राय प्रकार की बिमारी अधिक मात्रा में होती है जब कि वेट प्रकार की बिमारी के उपचार में सफलता के अवसर अधिक होते हैं ।

प्रभावित व्यक्ति की सामान्य नेत्र ज्योति तो कम होती ही है किन्तु इसके साथ ही आंख के सामने काला धब्बा जिसे स्कोटोमा कहते हैं आता है जिससे असुविधाओं का अम्बार लग जाता है । स्वाभाविक रूप से इस पड़ाव पर प्रश्न उठता है कि क्या इस रोग का इलाज सम्भव है तथा इससे निजात मिल सकती है या नहीं ।

उपचार हेतु अनेक विधियां विद्यमान हैं जैसे लेजर प्रणाली, फोटोडायनेमिक तथा रेडीयेशन थेरेपी । कुछ औषधियाँ तथा शल्य चिकित्सा द्वारा भी उपचार किया जाता है इनका उपयोग वेट मेक्युलर डीजनरेशन में अधिक सार्थक माना जाता है किन्तु इतना सब होने के बावजूद

हम सफलता से दूर हैं। अन्ततः यह रोगी अल्पदृष्टि की श्रेणी में आ जाता है और अल्पदृष्टि विशेषज्ञ की सहायता आवश्यक हो जाती है। उनके मार्गदर्शन तथा सहायक यंत्रों के उपयोग से जीवन सार्थक रूप से व्यतीत किया जा सकता है। सम्भव है भविष्य में वैज्ञानिकों के अन्य तथा सतत प्रयासों से उपचार के परिदृश्य में सार्थक परिवर्तन हो जावे ताकि या तो इस रोग की रोकथाम हो सके या इसका सफल परिणामजनक उपचार। इन प्रयासों का यही लक्ष्य तथा उद्देश्य भी है, इसी अपेक्षा के साथ हम प्रतिक्षारत भी हैं।

दृष्टि दोष भी दृष्टिहीनता का कारण है

डॉ. एम.सी. नाहटा

दृष्टिहीनता के कारण तथा दृष्टिहीन लोगों की संख्या के बारे में समय-समय पर जानकारी प्रकाशित होती रहती है- यह उत्साहवर्धक है तथा रोकथाम के प्रयासों में सहायक भी है। किन्तु दृष्टिदोष की ओर ध्यान केन्द्रित होना शेष है।

विश्व में दृष्टिदोष के कारण दृष्टिहीन व्यक्तियों की संख्या कम नहीं है। बड़े नंबर के चश्मों की आवश्यकता होकर भी चश्मा न पहनने वालों की संख्या भी अधिक है- परिणामस्वरूप वो दृष्टिहीनों की श्रेणी में आ जाते हैं। इस श्रेणी के लोगों की संख्या मोतीयाबिंद के बाद दूर की जा सकने वाली दृष्टिहीनता के कारणों में दूसरे क्रम पर है। अतः गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। भारत तथा पाकिस्तान में सामान्य जनसंख्या का 0.20 प्रतिशत इस व्याधि से प्रभावित है। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार जांच की गई जनसंख्या में प्रति 280 व्यक्तियों में एक दृष्टिदोष से पीड़ित पाया गया। भारत वर्ष में ही 40 वर्ष से अधिक आयु की जनसंख्या में 1.06 प्रतिशत दृष्टिदोष है- वहीं चीन में दृष्टिदोष का प्रतिशत 0.59 है। इस प्रकार की दृष्टिहीनता के कुप्रभाव मानवीय जीवन को प्रभावित करते हैं जो प्रमुख रूप से शिक्षा तथा व्यक्तिगत विकास में बाधा होते हैं, कार्यों में अवसरों की कमी तथा समाज में आर्थिक बोझ के रूप में देखे जाते हैं। अतः दृष्टिदोष के विभिन्न बिन्दुओं पर विचार आवश्यक है।

यह जानना सामयिक होगा कि नेत्र की लंबाई 24 मिमी होती है। लंबाई के कम या अधिक होने पर या आंख के अगले काले चमकदार भाग कार्निया के असामान्य घुमाव-कर्वेचर से दृष्टिदोष होते हैं। इस प्रकार के दृष्टिदोष निम्नांकित होते हैं-

मायोपिया - निकटदृष्टिता

हायपरमेट्रोपिया - दूरदृष्टिता

एस्टीगमेटाज्म - दृष्टिवेष्म्य

मायोपिया – एक ऐसी स्थिति है जिसमें किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल (रेटिना) पर नहीं बनता है। इस दृष्टि दोष के कारणों में आज भी अनिश्चय का वातावरण है। किन्तु इसे वंशानुगत, अन्तश्चावी या अन्दर की ग्रन्थियों के रस के उत्पादन में गड़बड़ी, कुपोषण तथा कमजोरी इसके लिए दोषी माने गए हैं इस प्रकार के दृष्टिदोष के लक्षण है—

दूर की वस्तु साफ नहीं दिखना

पास का काम करने में असुविधा

आंख के सामने काले धब्बे आना

आंख में चमक महसूस करना

आंख में लाली तथा पानी आना

पुतली तथा आंख असाधारण रूप से बड़ी होना

आंख में तिरछापन भी संभव है

उपचार—

उपयुक्त चश्मा या कांटैक्ट लेंस का उपयोग

काम के समय उचित प्रकाश व्यवस्था

भोजन में पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक तत्वों का समावेश विशेष कर प्रोटीन्स पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है।

वर्तमान में मायोपिया में चश्मे से निजात पाने हेतु रिफ्रेक्टिव सर्जरी अत्यधिक लोकप्रिय है। यहां तक कि इसका दुरुपयोग भी हो रहा है। सामान्य जनमानस को इससे बचाव हेतु भारत सरकार ने 11 पेजी दस्तावेज जनहित में प्रकाशित किया है जिसके मुख्य बिन्दु चिकित्सकों से संबंधित है—

- * शल्य चिकित्सा से मायोपिया के शतप्रतिशत ठीक होने की आश्वासन न देने की सलाह ।
- * आवश्यक रूप से बताया जावे कि शल्य चिकित्सा के पश्चात भी चश्मा लगाना पड़ सकता है ।
- * संदर्भित शल्य चिकित्सा केवल कांतिवर्धक (कास्मेटिक) है ।
- * जब तक चश्में का नंबर स्थिर न हो जावे शल्य चिकित्सा करना अनुचित है ।
- * शल्य चिकित्सा के बाद आंख का पर्दा अपने स्थान से खिसक सकता है (डिटेचमेंट ऑफ रेटिना) ।
- * शल्य चिकित्सा एक बार असफल होने के पश्चात् दूसरी बार न की जाए ।

हायपरमेट्रोपिया— इस दोष में आंख की लम्बाई सामान्य से कम होती है फलस्वरूप प्रतिबिंब दृष्टिपटल के पीछे बनता है । जन्म के समय प्रत्येक शिशु की आंख हायपरमेट्रोपिक होती है । आयु के साथ आंख की लम्बाई बढ़ती है और यह दोष समाप्त हो जाता है । इस दोष में पास का काम विशेषकर कृत्रिम प्रकाश में काम करने में कठिनाई अधिक होती है ।

इसके लक्षण है—

आंख में सुखापन

जलन, दर्द, भारीपन तथा सिरदर्द

पलकों का अधिक झपकना, तिरछापन भी हो सकता है ।

उपचार—

उपयुक्त चश्मे का उपयोग ही इसका उपचार है ।

एस्टीगमेट्रीसम-दृष्टिवैषम्य- इस दोष में प्रकाशबिंदु दृष्टिपटल पर प्रतिबिंब को समोचित नहीं कर पाता है। कार्निया की गोलाई में त्रुटि या पारदर्शिता प्रभावित होने से दोष संभव है। इसके लक्षण हैं—

दृष्टिदोष, अक्षरों का मिलाजुला दिखना
भारीपन, नेत्रगोलक (आईबाल) में दर्द

उपचार—

हेतु चश्में का उपयोग आवश्यक है। इसमें विशेष प्रकार के लेंस (सिलेड्रींकल) दिए जाते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में कांटेक्टलेंस भी दिए जाते हैं।

प्रेसबायोपिया—यह दोष आयु आधारित है और सामान्य स्थिति में 40 वर्ष की आयु के पश्चात् ही होती है। इसका एक मात्र कारण है— बढ़ती आयु के कारण आंख के अंदर के लेंस का लोच कम होना। इस प्रकार के दोष में आरंभ में शाम के समय कम प्रकाश में पास की वस्तु या पढ़ने लिखने में कठिनाई होती है।

उपचार—चश्में द्वारा ही होता है जिसे प्रति दो वर्ष में बदलना पड़ता है। क्रम 60 वर्ष की आयु तक चलता है। चश्मे में उत्तक-कानवेक्स लेंस दिए जाते हैं।

अफेकिया—मोतियाबिंद की शल्य चिकित्सा के बाद की स्थिति को अफेकिया कहते हैं। इसमें भी आँख हायरपरमेट्रोपिक होती है तथा उपचार भी उसी प्रकार होता है।

एनआयसोमेट्रोपिया—इस स्थिति में दोनों आँखों के रिफ्रेक्शन-अपवर्तन में उल्लेखनीय अंतर होता है। थोड़ा अंतर तो सामान्य है किंतु यदि अन्तर 2 डी से अधिक हो तो वह एनआयसोमेट्रोपिया माना जाता है। इसका उपचार भी चश्मे या कांटेक्ट लेंस का उपयोग ही है।

स्पष्ट है कि इतनी अधिक मात्रा में होने वाले इस दोष के बावजूद इसके निराकरण हेतु गंभीर प्रयास नहीं हो रहे हैं। इस प्रयास में आष्ट्रोमेटरीस्ट तथा डिसपेन्सींग ऑप्टीशियन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह कार्य केवल शासकीय स्तर पर नहीं हो सकता है। स्वयंसेवी संगठनों को सरकार के साथ मिलकर योजनाबद्ध रूप से संयुक्त प्रयास करना चाहिए जिसका वर्तमान में अभाव है।

बालकों में दृष्टिहीनता-रोकथाम आवश्यक

डॉ. एम.सी. नाहटा

दृष्टिहीनता एक विश्वव्यापी समस्या है जो अलग-अलग देशों में अलग-अलग रूप में विद्यमान है। दृष्टिहीनता देश की आर्थिक स्थिति का भी संकेत देती है। यह तथ्य विकसित तथा विकासशील देशों में दृष्टिहीन व्यक्तियों की संख्या से स्पष्ट दिखता है। दृष्टिहीनता प्रत्येक आयु वर्ग को प्रभावित करती है तथा अलग-अलग आयु वर्ग में नेत्र रोग भिन्न-भिन्न रूप में देखे जा सकते हैं। यह एकमात्र ऐसी त्रादसी है जो जन्म के पूर्व से भी प्रारंभ हो सकती है। अतः आवश्यक है कि हम उन तथ्यों पर प्राथमिकता के आधार पर विचार करें जो बालक वर्ग को प्रभावित करते हैं।

भारतवर्ष की आबादी वर्तमान में 120 करोड़ के लगभग है जिसमें दृष्टिहीनों की संख्या 15 लाख, दृष्टिबाधित 5.2 करोड़ तथा दृष्टिहीन बालकों की संख्या 2.7 लाख है। बालकों से संबंधित इस मानवीय समस्या पर गंभीरतापूर्वक प्राथमिकता के आधार पर विचार आवश्यक है चूंकि उन्हें दृष्टिहीन के रूप में लंबा जीवन व्यतीत करना होता है तथा उनके व्यक्तिगत, शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक मानसिक तथा भावनात्मक जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करता है। यह जानना सामयिक होगा कि पूरे विश्व में प्रतिवर्ष 5 लाख बच्चे नेत्र ज्योति खोते हैं जिनमें से 60 प्रतिशत विकासशील देशों में दृष्टिहीन होने के एक वर्ष के भीतर ही मर जाते हैं।

एक बालक गर्भ में आने के बाद तथा किशोरावस्था प्राप्त करने के समय तक विभिन्न अवस्थाओं से निकलता है। इन स्थितियों में अनेक प्रकार के नेत्र रोग संभावित हैं। इन स्थितियों की—

गर्भकाल, जन्म के पूर्व, जन्म के समय, जन्म के तत्काल बाद, नवजात शैशव, बचपन, किशोरावस्था के रूप में जाना जाता है।

इस अवसर पर यह जानना सामयिक होगा कि 95 प्रतिशत दृष्टिहीनता नेत्र रोगों के कारण तथा 5 प्रतिशत चोट के कारण होती है, जिनका निम्नांकित रूप होता है—

- जन्मजात नेत्र की बनावट में विकृति
- दृष्टिदोष
- रतोंध, दृष्टिपटल की विषमताएं तथा आप्टिक नर्व के नाम से जानी जाने वाली नस का सूखना, पीलापन
- विशेष प्रकार का मोतियाबिंद, कांचबिंद
- नेत्र श्लेष्मला (Conjunctivitis) जो आफथेलिमया निओनेटोरम के नाम से जाना जाता है तथा रेटोनीपेथी ऑफ प्रिमेचुरिटि।
- विटामिन ए की कमी से उपजी विषमताएं जैसे झिरोसिस, केरेटोमलेशिया, रतोंध तथा कार्नियल ओपेसिटी, चोट।

उपरोक्त नेत्र रोग होने का अलग-अलग समय है और कारण भी भिन्न है। आनुवांशिक रोगों का बिजारोपण तो गर्भ के पूर्व या गर्भावस्था में हो जाता है। गर्भवती महिला को अगर विवाह के पूर्व रुबेला संक्रमण हुआ हो तो मोतियाबिंद, कांचबिंद, रतोंध तथा नेत्र आकार में छोटा होना संभावित है जो स्वाभाविक रूप से दृष्टिहीनता का कारण बनता है। प्रसव के समय तथा तत्काल बाद विशेष प्रकार के जीवाणु से नेत्र श्लेष्मला होता है। उसी प्रकार यदि शिशु का जन्म समय से पूर्व हुआ हो जिसे आक्सीजन अधिक मात्रा में दिया हो या नर्सरी में अधिक प्रकाश में रखा गया हो तो रेटिनोपेथी ऑफ प्रिमेचुरिटि हो सकती है।

शैशवकाल में विटामिन ए की कमी के परिणाम स्वरूप झिरोसिस, केरेटोमलेशिया तथा कार्नियल ओपेसिटी होती है। यही समय है जब बालक को चोट लगने की संभावना अधिक होती है।

दृष्टि दोष की ओर भी ध्यान जाता है जो मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं -

मायोपिया - निकटदृष्टिता

हायरपरमेट्रोपिया - दूरदृष्टिता

एस्टीगमेटिसम - दृष्टिवेष्य

- दृष्टिदोष आनुवांशिक माना जा सकता है। भोजन में पौष्टिक तत्वों की कमी, कमजोरी तथा लंबी तथा गंभीर बीमारी भी इसके कारण हो सकते हैं।
- परंपरागत उपचार प्रणाली भी दृष्टिहीनता के लिए दोषी हो सकती है।
- सौभाग्यवश नेत्र कैंसर बहुत ही कम मात्रा में होते हैं। एक विशेष प्रकार का कैंसर रेटिनोब्लास्टोमा बालकों में होता है।
- भारतवर्ष एक उष्ण कटिबंधी (Tropical) देश है जहां धूप बहुतायत में वर्ष में 10 माह उपलब्ध होती है। इसमें अल्ट्रावायलेट किरणें UVA तथा UVB निकलती है जिनसे मोतियाबिंद मेक्युलर डीजनरेशन तथा पलक के पास की चमड़ी के कैंसर होने की संभावना हमेशा रहती है।

अब हमारे सामने सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दू आता है- इन स्थितियों के रोकथाम हेतु हमें-

- जन जागरण का सहारा लेना आवश्यक है। आनुवांशिक रोगों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने तथा निकट संबंधियों में विवाह न करने की सलाह देना आवश्यक है।

- टीकाकरण-प्रत्येक महिला को 18 वर्ष की आयु में विवाह के पूर्व रुबेला प्रतिरोधात्मक टीकाकरण अनिवार्य रूप से करने से नेत्ररोगों की रोकथाम हो सकती है।
- प्रत्येक बालक को खसरा (Measels) से बचाव हेतु टीकाकरण।
- शिशु के जन्म के 21 दिनों के अंदर आंख से पानी आवे तो नेत्र श्लेषमा के निदान हेतु नेत्र विशेषज्ञ से परामर्श तथा उपचार।
- रेटिनोपेथी ऑफ प्रिमेचुरिटी से बचाव हेतु निम्नांकित प्रयास उपयोगी होंगे समय से पूर्व प्रसव न हो ऐसे प्रयास, आक्सीजन का कम उपयोग, नर्सरी में रखे शिशु हेतु प्रकाश कम होना, शिशु रोग विशेषज्ञ के परामर्श से विटामिन ई देना, जन्म के तत्काल बाद नेत्र परीक्षण।
- भोजन में विटामिन ए तथा प्रोटीन्स पर्याप्त मात्रा में होने से कार्निया के रोग कम होंगे।
- चोट से बचाव - फटाखे तथा नुकीले खिलौने न दिए जाएँ।
- प्रयोगशाला, झलाई तथा कार्यशाला में काम करते समय सुरक्षात्मक चश्मे का उपयोग।
- धूप में काम करने के समय सुरक्षात्मक रंगीन चश्मे का उपयोग।

वर्तमान में दृष्टिहीनता की रोकथाम के गंभीर प्रयास नहीं हो रहे हैं—उसी का परिणाम है कि दृष्टिहीन व्यक्तियों की संख्या यथावत है। अतः यह आवश्यक है कि स्वयंसेवी संगठन इन मानवीय कार्य में सक्रियता से भाग लेकर इस अभिशाप को दूर करने में सहायक बने।

नेत्रकोष - कार्निया प्रत्यारोपण समीक्षा

डॉ. एम.सी. नाहटा

शारीरिक संरचना के आधार पर आँख के अगले काले चमकदार भाग को कार्निया कहते हैं— जो पारदर्शी होता है। इसकी पारदर्शिता समाप्त होने पर नेत्र ज्योति समाप्त हो जाती है तथा संबंधित व्यक्ति दृष्टिहीनों की श्रेणी में आ जाते हैं जो परिवार, समाज तथा देश पर एक बोझ के रूप में देखे जाते हैं। मोतियाबिन्द के बाद दृष्टिहीनता का यह प्रमुख कारण भी है। कार्निया की पारदर्शिता इस उत्तक के संक्रमण, कुपोषण विशेषकर विटामीन ए की कमी, चोट तथा जन्मजात रोगों के कारण समाप्त होती है और अन्ततः दृष्टिहीनता हो जाती है। इस समस्या का निराकरण कार्निया प्रत्यारोपण से किया जाता है। अंग प्रत्यारोपण के क्षेत्र में इसे श्रेष्ठ भी माना जाता है।

इस अवसर पर कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी रोचक तथा उत्साहवर्धक होगी।

विश्व में प्रथम कार्निया प्रत्यारोपण 1903 में भर्म नामक विशेषज्ञ ने जेकोस्लावाकिया में किया था। परिणाम स्वरूप कार्निया की मांग में वृद्धि होने लगी इसकी योजनाबद्ध पूर्ति हेतु अमेरिका के चिकित्सक डॉ. पेटन ने 1944 में प्रथम नेत्र कोष स्थापित किया तत्पश्चात् 1961 में आई बैंक एसोसिएशन का भी गठन हुआ। भारत में 1945 में चेन्नई में प्रथम नेत्र कोष स्थापित हुआ। वर्तमान में नेत्र कोष की संख्या 600 है। इस प्रयास को उत्साहित करने हेतु पूर्व बाम्बे प्रदेश में (1957) में कानून बना— तत्पश्चात् 1994 में अंग प्रत्यारोपण कानून बनाया गया।

यह कहना सामयिक होगा कि नेत्रदान, नेत्र कोष तथा कार्निया प्रत्यारोपण एक दूसरे के पूरक हैं। देश में प्रतिवर्ष लगभग 40 लाख व्यक्तियों की मृत्यु होती है विडम्बना है कि एक रपट के अनुसार लगभग 14000-15000 कार्निया ही प्रत्यारोपण हेतु प्राप्त होते हैं। आई बैंक ऑफ इण्डिया

के एक सदस्य तो इस संख्या को 7500 ही मानते हैं। स्पष्ट है मांग तथा आपूर्ति में एक ओर तो विशाल अंतर है तथा दूसरी ओर वर्तमान नेत्र कोषों की स्थिति भी संतोषजनक नहीं है। सुधारात्मक परिवर्तन हेतु केन्द्र सरकार ने आई बैंक एसोसिएशन से विचार विमर्श के बाद आई बैंक हेतु मानक निर्धारित किये किन्तु खेद है कि निर्धारित मानकों का पालन 8 नेत्र कोष ही करते हैं। वर्तमान में अधोसंरचना, नेत्र कोष संचालन हेतु जानकारी का अभाव, शासकीय स्तर पर नेत्र कोष स्थापित करने हेतु अनुमति देने के प्रति उदासिनता तथा आवश्यक धन की अनउपलब्धता ने नेत्र कोष तथा कार्निया प्रत्यारोपण को विपत्ति में डाल रखा है।

अधिकतम नेत्र कोषों में न तो आवश्यक उपकरण हैं न ही नेत्रदान करने वाले व्यक्ति की एच.आय.व्ही, हिपेटाइटिस बी जैसे रोगों हेतु जांच की जाती है जिन्हें आवश्यक माना गया है। स्मरण रहे केवल कार्निया प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है — उसका उपयुक्त होना भी आवश्यक है।

वर्तमान कार्यप्रणाली के अन्तर्गत नेत्रदान-कार्निया प्राप्त करने में भी अनेक बाधाएं हैं — प्रमुख रूप से इस कार्य में स्वास्थ्यकर्मियों की अरुचि, उत्तक को सुरक्षित रखने हेतु सुविधाओं की अनउपलब्धता तथा सामान्य जनमानस में जानकारी का अभाव एवं कानूनी प्रावधानों का न होना जैसे बिन्दु इस कार्य में अवरोध बने हुए हैं।

यह जानना भी उपयुक्त होगा कि अधिकतम संगठन जो नेत्र कोष संचालित करने की बात करते हैं— यथार्थ में वो नेत्रदान केन्द्र से अधिक कुछ नहीं हैं। हमारे लिए प्रति दो करोड़ की जनसंख्या पर एक सुसज्जित नेत्रकोष का होना पर्याप्त माना गया है। जिससे 40 नेत्रदान केन्द्र सम्बद्ध रहें। इस आधार पर देश में 50 सुसज्जित नेत्र कोष की आवश्यकता प्रतीत होती है। इनमें से कुछ चयनित नेत्र कोषों पर प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी आवश्यक मानी गई है। इस आधार पर मध्यप्रदेश में 4-5 सुसज्जित नेत्रकोष स्थापित करना प्राथमिकता होना चाहिए— मध्यप्रदेश के 5 शासकीय

चिकित्सा महाविद्यालयों में यह कार्य किया जा सकता है। इसका तात्पर्य कदापि नहीं कि निजी क्षेत्र के नेत्र चिकित्सालय यह कार्य न करें। केन्द्र शासन ने तो निजी क्षेत्र चिकित्सालयों में नेत्रकोष स्थापित करने हेतु प्रति नेत्र कोष को 18 लाख का अनुदान देने का प्रावधान किया है और उसकी प्रक्रिया भी निर्धारित की गई है।

कार्निया प्रत्यारोपण एक विशेष प्रकार की नेत्रशल्य चिकित्सा है जिस हेतु उपयुक्त प्रशिक्षण आवश्यक है। उतना ही आवश्यक है शल्य चिकित्सा के पश्चात विशेष देखभाल की ताकि शल्य चिकित्सा पश्चात होने वाली विषमताओं का उपचार किया जा सके।

वर्तमान में यह कार्य सुनियोजित रूप से नहीं हो रहा है। इसे विकसित करने हेतु एक सशक्त, योजनाबद्ध कार्यप्रणाली की आवश्यकता है। नेत्रदान का कार्य स्वयंसेवी संगठनों द्वारा करने से नेत्रदान करने वाले व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो सकेगी तथा सामान्य जनमानस में प्रेरणादायक संदेश भी जावेगा।

इस कार्य में संबंधित तीन वर्गों की भूमिका महत्वपूर्ण है— सरकार, कार्निया शल्य चिकित्सक तथा नेत्रकोष संचालन करने वाली संस्थाएं — इसमें आपसी समन्वय तथा संवाद की आवश्यकता के महत्व को कम नहीं आंका जा सकता है।

वर्तमान में इस कार्य के प्रोत्साहन तथा संरक्षण हेतु 160 देशों में कानूनी प्रावधान उपलब्ध है। भारत में भी कानून बनाया गया है— उपयुक्त तथा पर्याप्त प्रावधानों के न होने से सहायता नहीं मिल पा रही है। इस विषय पर विचार—विमर्श के बाद या तो नया कानून बनाया जावे या वर्तमान में आवश्यक संशोधन किया जावे।

सर्वाधिक उपेक्षित बिन्दु है नेत्र सुरक्षा — नेत्र रोगों विशेषकर वर्तमान संदर्भ में कार्नियल रोगों की रोकथाम हेतु विशेष प्रयास आवश्यक है। यदि ऐसा हो सका तो हम एक और गंभीर मानवीय समस्या से मुक्ति पा सकेंगे।

अल्पदृष्टि-समस्या और समाधान

पिछले दशक से अल्पदृष्टि समस्या के बारे में समय-समय पर अनेक स्थानों पर चर्चा हो रही है। अल्पदृष्टि समस्या को औसत आयु में वृद्धि से जोड़ा जा रहा है जो तथ्यपरक भी है। वर्तमान में भारतवर्ष में वरिष्ठ नागरिकों की संख्या 5.5 करोड़ से अधिक है और अपेक्षा है कि यह संख्या सन 2011 तक 13 करोड़ का आंकड़ा पार कर लेगी। साथ ही वर्तमान में अल्पदृष्टि से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या पूरे विश्व में 16 करोड़ से अधिक है। भारतवर्ष में वर्तमान में 4.5 करोड़ अल्पदृष्टि बाधित है जो अगले 25 वर्षों में दुगुनी हो जावेगी। इन तथ्यों से अल्पदृष्टि समस्या की गंभीरता का अनुमान सहज की लगाया जा सकता है। अतः उपयुक्त भी है, सामायिक भी है और आवश्यक भी है कि इस समस्या के विभिन्न बिन्दुओं पर गंभीरता से विचार-विमर्श किया जाए तथा इसके निराकरण के उपायों के बारे में चर्चा तथा योजना भी बनाई जाए अन्यथा यह समस्या एक त्रासदी का रूप धारण कर लेगी। इस दृष्टि से सर्वप्रथम अल्पदृष्टि को परिभाषित करना आवश्यक है। जब व्यक्ति विशेष की दृष्टि 6/60 से 6/18 तथा फील्ड आफ विजन 20 डिग्री से कम हो उसे अल्पदृष्टि की संज्ञा दी जाती है।

सर्वप्रथम इस मौलिक तथ्य से अवगत होना चाहिए कि अल्पदृष्टि दृष्टिहीनता नहीं होती है। प्रभावित व्यक्ति में एक ओर दृष्टि में अर्थवान कमी होती है तो दूसरी तरफ सार्थक अर्थवान ज्योति विद्यमान भी रहती है जिसे महत्वपूर्ण माना जाता है। इस वर्ग से संबंधित एक और महत्वपूर्ण तथ्य है कि सामान्य रूप से दृष्टिहीन माने जाने वाली जनसंख्या के 90 प्रतिशत वर्ग में उपयोग लायक दृष्टि होती है जो उनके लिए रामबाण के समान है।

अल्पदृष्टि बाधित व्यक्ति दृष्टि दोष तथा कमी के कारण सामान्य दैनिक कार्य करने में भी कठिनाई महसूस करता है। विडम्बना है कि इस स्थिति का उपचार किसी भी प्रकार की औषधि, शल्य चिकित्सा तथा सामान्य

चश्मों से संभव नहीं है। चिकित्सकीय रूप से अल्पदृष्टि बाधित व्यक्तियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है।

1. संतुलित (माडरेट) मापदंड के अनुसार दृष्टि 6/24 - 6/36
2. तीव्र मापदंड के अनुसार दृष्टि 6/60 - 3/60
3. गहरा (प्रोफाउंड) दृष्टि 2/60 - 1/60 के लगभग

स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि इस प्रकार की बीमारी जिसका उपचार संभव नहीं है तो विचार-विमर्श ही क्यों किया जाए। सतही तौर पर यह तर्क उचित प्रतीत होता है किन्तु सचमुच में यह तर्क सत्यता से परे है। वास्तविकता तो यह है कि अल्पबाधित व्यक्ति को सहायक यंत्रों के माध्यम से कार्य करने योग्य बनाया जा सकता है और यही हमारा लक्ष्य तथा उद्देश्य भी है।

इस पड़ाव पर यह जानना आवश्यक है कि अल्पदृष्टि के कारण क्या हैं ? अल्पदृष्टि की स्थिति क्यों निर्मित होती है ? अल्पदृष्टि नेत्र रोगों से होती है जो जन्मजात भी होते हैं और जन्म के बाद होने वाले रोगों से भी।

जन्मजात— नेत्र रोगों की सूची में निस्टेगमस, अलबीनीजम प्रिमेचुरीटी तथा रतोंध अर्थात् रेटिनाईटीस पीगमेंटोसा सम्मिलित है।

जन्म के बाद— होने वाले नेत्र रोगों में मेक्युलर डीजनरेशन, कांचबिंद (ग्लाकोमा) डायबिटिक रेटिनोपेथी (मधुमेह के कारण आंख के पर्दे (रेटीना) पर कुप्रभाव चोट, स्ट्रोक, मस्तिष्क पर चोट, पारकिसन बीमारी, मल्टीपल स्लरोसीस, लुपस तथा जायंट सेल आरटराईटीस सम्मिलित है। अतिरिक्त रूप से वृद्धावस्था में भी अल्पदृष्टि की संभावना अधिक होती है।

अल्पदृष्टि की वर्तमान अनियंत्रित स्थिति के अनेक कारण हैं— प्रमुख रूप से विषय की जानकारी का अभाव, प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी, विशेषज्ञों की इस कार्य में अरुचि, उपचार के लिए स्थापित सुसज्जित केन्द्रों

का अभाव तथा नगण्य संख्या आवश्यक सहायक यंत्रों की अनुपलब्धता तथा अत्यधिक कीमत इत्यादि वर्तमान स्थिति के लिए दोषी है।

दुर्भाग्य है कि कुछ भ्रमित करने वाली मान्यताएँ भी विषमता का रूप बढ़ाने में सहायक का काम करती है। प्रमुख रूप से यह मान्यता की बची हुई नेत्र ज्योति के उपयोग से यह ज्योति भी समाप्त हो जाती है—एक और दुःखद पहलू है कि समाज अल्पदृष्टि को लांछन के रूप में देखता है।

अल्पदृष्टि रूपी विषमता से किसी भी आयु का व्यक्ति प्रभावित हो सकता है किन्तु महिला तथा युवा वर्ग के लिए यह स्थिति अत्यन्त भयानक होती है।

अतः हमारा दायित्व है कि इस बढ़ती हुई गंभीर समस्या के निराकरण के उपायों पर विचार करें। इसके पूर्व यह जानना सामयिक होगा कि वर्तमान में अल्पदृष्टि विषमता के उपचार हेतु स्थापित केन्द्रों की संख्या नगण्य है। उच्चकोटि के तीन केन्द्र दक्षिण भारत में हैं।

सामान्य रूप से नेत्र रोग तथा दृष्टि आधारित विषमताओं का उपचार नेत्र विशेषज्ञों के कार्यक्षेत्र में आता है— ठीक भी है किन्तु अल्पदृष्टि को अलग रूप से देखा जाता है— इस समस्या का समाधान नेत्र विशेषज्ञ के अतिरिक्त ऑप्टोमिटरिस्ट भी करने में सक्षम होते हैं। इन दोनों वर्गों के अतिरिक्त अन्य वर्गों की सहायता भी आवश्यक है। अतः अल्पदृष्टि विषमता के निराकरण हेतु समूह कार्य प्रणाली विकसित करना आवश्यक है तथा समूह में इस विषय में विशेष रूप से प्रशिक्षित नेत्र विशेषज्ञ, ऑप्टोमिटरिस्ट, ऑप्टीशियन, उपकरण उत्पादक औद्योगिक संस्था, स्वयंसेवी तथा सामाजिक संगठन तथा विशेष रूप से शिक्षकों का समावेश होना चाहिए। इस कार्य प्रणाली को पूरे देश में विकसित करने से आवश्यक वातावरण तथा जागरूकता उत्पन्न होगी जो समस्या के समाधान के लिए अति आवश्यक है।

उपरोक्त प्रयास के अतिरिक्त विशेषज्ञ की इस क्षेत्र के प्रति अरुचि को रुचि में परिवर्तित करने के लिए परिवार कल्याण कार्यक्रम के समकक्ष प्रोत्साहन राशि, नेत्र विशेषज्ञ तथा आप्टोमेटरीस्ट के पाठ्यक्रमों में इस विषय का समावेश करने से इस क्षेत्र के विशेषज्ञों की संख्या में वृद्धि होगी जो हमारी आवश्यकता है। विक्रेन्द्रीकरण के सिद्धान्त के अनुरूप कार्यप्रणाली को विकसित करने के प्रयास में क्षेत्रीय अल्पदृष्टि संस्थानों की स्थापना करना चाहिए। यह कार्य भारतीय पुनर्वसन परिषद सरलता से करने में सक्षम है। उपकरणों की उपलब्धता में वृद्धि हेतु उत्पादन क्षमता में वृद्धि तथा भारत सरकार की एडीप योजना के साथ समन्वय स्थापित करने से हम अपने उद्देश्य तथा लक्ष्य प्राप्ति के निकट पहुँच सकेंगे। साथ ही विद्यार्थी वर्ग हेतु पाठ्यपुस्तकों को बड़े अक्षरों (लार्ज प्रिंट) में छापना उपयुक्त तथा सहायक होगा ऐसा हमारा विश्वास है। समग्र रूप से देखने से तथा अनुभव के आधार पर विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि अंधत्व निवारण कार्यक्रम के समकक्ष एक अल्पदृष्टि राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया जाए तो एक ऐतिहासिक उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है जो पूरे विश्व के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करेगा तथा इस समस्या से स्थायी रूप से निजात भी मिल सकेगी।

नेत्र से संबंधित भ्रांतियाँ दूर कीजिए

डॉ. एम.सी. नाहटा

यह अति आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है कि कल्पना को हकीकत से दूर रखना चाहिए- यह और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जब इस प्रकार की स्थिति नेत्र तथा नेत्र ज्योति से संबंधित हो। अन्धत्व से बचाव, आंखों की सुरक्षा, नेत्रज्योति की स्थिरता ऐसे बिन्दू हैं जो पूरे जीवन करना चाहिए। इस हेतु कुछ ऐसी भ्रांतियाँ हैं जो समाज में प्रचलित हैं, जिन पर आम व्यक्ति का विश्वास भी है किन्तु सत्यता से परे होने के कारण उनसे लाभ नहीं हानि हो सकती है अतः उन्हें दूर करना हमारी आवश्यकता है—

1. भ्रांति—उचित चश्मे के उपयोग के अभाव में आंखों को नुकसान होता है।

तथ्य—उचित चश्मे या कांटेक्ट लेंस के उपयोग से नेत्र ज्योति ठीक होती है, देखने में सहायता मिलती है किन्तु उपयोग न करने के परिणाम स्वरूप नेत्र ज्योति और अधिक कम नहीं होती।

2. भ्रांति—कम रोशनी में पढ़ने लिखने से नेत्र ज्योति कम होती है।

तथ्य—कम रोशनी में पढ़ने लिखने से आंखों में थकान महसूस हो सकती है किन्तु नेत्र ज्योति कम नहीं होती है।

3. भ्रांति—गाजर खाने से नेत्र ज्योति बढ़ती है।

तथ्य—यह सत्य है कि गाजर में विटामिन ए की मात्रा काफी अधिक होती है। विटामिन ए नेत्र ज्योति के लिए आवश्यक है किन्तु अच्छी रोशनी के लिए विटामिन ए छोटी मात्रा में ही आवश्यक है।

4. भ्रांति—नेत्र ज्योति कम होने से रोका जा सकता है।

तथ्य—नियमित नेत्र परीक्षण तथा उचित चश्मे के उपयोग से नेत्रज्योति कम होने से रोका जा सकता है।

5. भ्रांति-नेत्र परीक्षण की आवश्यकता नेत्र संबंधी समस्या की स्थिति में ही आवश्यक है।

तथ्य-प्रत्येक व्यक्ति को नेत्र संबंधी स्वास्थ्य कार्यक्रम का अनुसरण करना चाहिए। कोई समस्या न होने की स्थिति में, कोई भी लक्षण न होने की स्थिति में नेत्र ज्योति की सुरक्षा हेतु नेत्र परीक्षण नियमित रूप से होना चाहिए।

यह भी उतना ही आवश्यक है कि नियमित नेत्र परीक्षण विशेषज्ञों द्वारा ही किया जाना चाहिए। यह भी देखने में आता है कि यदा कदा अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञ भी नेत्र रोगों, आंखों के बारे में सलाह दे देते हैं जो बहुधा वास्तविकता से परे होती है- ऐसा करने से लाभ नहीं हानि होता है। ऐसी स्थिति से बचना, बचाना आवश्यक है।

नेत्र सुरक्षा - धूप से हानि होती है

डॉ. एम.सी. नाहटा

भारत वर्ष एक उष्णकटिबंधी-ट्रापिकल देश है जहाँ धूप लगभग 10 माह तक उपलब्ध होती है। धूप से अल्ट्राव्हायलेट किरणें निकलती हैं जिनसे आंख पर कूप्रभाव हो सकता है- प्रमुख रूप से मोतियाबिंद, मेक्यूलर डीजनरेशन तथा पलकों के पास की चमड़ी का कैंसर होने की संभावना अधिक होती है। धूप से उन व्यक्तियों को हानि अधिक होती है जो लम्बे समय तक धूप में काम करते हैं- जिनका मोतियाबिंद का आपरेशन हो चुका होता है- जिनको रेटिना की बिमारियाँ हो- जो व्यक्ति विशेष प्रकार की औषधियाँ जैसे टेट्रासाक्लिन, सल्फाड्रूग्स, गर्भ निरोधक गोलियाँ, मुत्रवर्धक औषधि, प्रशान्तक (ट्रन्कुलाइज़र) जैसी औषधियाँ लेते हैं क्योंकि उपरोक्त औषधियों से रेटिना की संवेदनशीलता बढ़ती है। अतः नेत्र सुरक्षा तथा बचाव की आवश्यकता है। बचाव का केवल एक ही उपाय है- धूप के चश्में का उपयोग। अतः यह जानना आवश्यक है धूप के चश्मे के मापदंड क्या हो? उन चश्मों का उपयोग किया जावे जो-

चकाचौंध (ग्लेअर) कम करे। -अल्ट्राव्हायलेट किरणों-दोनों प्रकार यु.व्ही.ए. तथा यु.व्ही.बी. को हटाये/कम करे।

नेत्र सुरक्षा से प्रेरित हो। -पहनने में सहज हो। -रंगों को विकृत न करे। अतः नेत्र सुरक्षा हेतु नियमित रूप से धूप से चश्में के उपयोग से नेत्र रोगों के प्रतिशत को कम करने में सहायता मिलेगी जो हमारी उपेक्षा है।

स्वस्थ आँखें – उपयोगी बातें

डॉ. एम.सी. नाहटा

स्वस्थ आँखों में भोजन की महत्वपूर्ण भूमिका है। भोजन में पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने से अनेक रोगों की रोकथाम हो सकती है। इस प्रकार के पौष्टिक तत्वों में एंटीआक्सीडन्ट्स – लुटीन तथा Zeaxanthin, बीटाकेरोटीन विटामीन-सी, विटामीन-ई, विटामीन-ए तथा झींक होने से अनेक रोगों से मुक्ति/ बचाव हो सकता है। अतः आवश्यक है कि हम जाने की उपरोक्त पोष्टिक तत्व किस प्रकार के कौन से भोजन में पाये जाते हैं –

विटामीन-सी अधिकांश फलों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

विशेषकर संतरा, अंगूर, स्ट्रॉबेरी, पपाया, टमाटर तथा हरी मिर्च।

विटामीन-ई अधिकांश भोज्य पदार्थों में सुक्ष्म मात्रा में पाया जाता है किन्तु वनस्पति तेल जैसे— फूलों तथा मक्का का तेल, बादाम, गेहूं के ज्वारे, सूर्यमुखी फूल के बीज इत्यादि।

बीटा केरोटीन गहरी हरे रंग की पत्तीवाली सब्जियां जैसे पालक, गहरे पीले रंग के संतरे, पीले फल, गाजर, आम, शकरकंद, अखरोट, आड़ू, विलायती खरबूजा जैसे पदार्थों में उपलब्ध है।

लुटिन तथा झेन्थाथिन अनेक खाद्य पदार्थों में विशेषकर हरे पत्ती वाली सब्जियों में अधिक मात्रा में होता है। मक्का, मटर तथा फूलगोबी में भी मिलता है। मांसाहारी पदार्थों

में माँस, लीन्हर, शेलफीश तथा दूध, गेहूं के जवारे, पूरे अनाज में पर्याप्त मात्रा में होता है।

विटामीन-ए

हरे पत्तेवाली सब्जी, पालक, गाजर, टमाटर, कद्दू, पपाया, आम इत्यादि में रहता है।

आखों को स्वस्थ रखने हेतु उचित समय पर नियमित रूप से नेत्र परीक्षण भी किया जाना नेत्र सुरक्षा तथा नेत्र रोगों से बचाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस हेतु

20-40 वर्ष की आयु में एक बार

40-65 वर्ष की आयु में दो से चार वर्ष में एक बार

65 वर्ष से अधिक आयु से प्रतिवर्ष

बच्चों में 6 माह 14 माह तथा 5 वर्ष की आयु में एक बार नेत्र परीक्षण होना आवश्यक है।

स्कूली छात्रों का परीक्षण नियमित रूप से तथा विशेष लक्षण होने पर तत्काल किया जाना वांछनिय है।

भोजन तथा नेत्र परीक्षण के अतिरिक्त आँखों का धूप से बचाव हेतु धूप के चश्मे का उपयोग लाभदायी है।

नेत्र सुरक्षा तथा दृष्टिहीनता की रोकथाम से तम्बाकू तथा शराब से दूर रहना ही चाहिए। इस सामाजिक कमजोरी के कुप्रभावों का समाज के सामने प्रस्तुत करने में समाजसेवी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अलबीनीजम

डॉ. एम.सी. नाहटा

अलबीनीजम एक वंशानुगत रोग है, जिसमें पूरे शरीर में रंजक की कमी होती है। यह एक ऐसी शारीरिक स्थिति है, जिसकी पहचान दूर से देखने मात्र से ही हो जाती है। सामान्य जनमानस इस स्थिति को सूरजमुखी कहते हैं, इसका मौलिक कारण शरीर में मेलेनीन नामक रंजक का अभाव या अनुपलब्धता है। इस विशेष असामान्य शारीरिक स्थिति में शरीर में मेलेनीन पीगमेंट बनने की क्षमता भी नहीं होती है, अतः शरीर में मेलेनीन पीगमेंट बनता ही नहीं है। शरीर में मेलेनीन रंजक बनने की प्रक्रिया कई चरणों में होती है। वंशानुगत विभिन्नता के कारण यह रोग एक नहीं अनेक रूप में देखा जाता है, इस प्रकार इसे तीन प्रकार का माना गया है—

1. आक्युलर, 2. आक्युलो क्युटेनस, 3. क्युटेनस

तात्पर्य है कि मेलेनीन रंजक की अनुपलब्धता के कारण, आंख, चमड़ी तथा बाल प्रभावित होते हैं। आंख पर हुए कुप्रभाव के कारण शारीरिक कार्यक्षमता कम होती है। प्रभावित व्यक्ति को अल्पदृष्टि के वर्ग में वर्गीकृत किया जा सकता है।

इस रंजक की अनुपलब्धता के कारण शरीर के अनेक अवयवों को अल्ट्रा वायलेट लाइट के कुप्रभाव से बचाना संभव नहीं हो सकता है। अतः आंख, बाल तथा चमड़ी प्रभावित होते हैं। नेत्र संबंधित अनेक विषमताएं होती हैं। प्रमुख रूप से नेत्र ज्योति में अत्यधिक कमी होती है जो कि आंख के पर्दे (रेटिना) के मध्यभाग मेक्युला के सर्वाधिक संवेदनशील भाग फोव्हिया की बनावट में दोष का परिणाम होता है। मेलेनीन रंजक की अनुपस्थिति में अनुपयोगी तथा अनावश्यक प्रकाश का प्रवेश प्रतिबंधित नहीं होता है। फलस्वरूप एक और तो प्रकाश असीमित मात्रा में प्रवेश

करता है और दूसरी और इससे निजात पाने की क्षमता न होने के कारण (फोटोफोबिया) प्रकाश से भय की स्थिति होती है।

अलबीनीजम में आंख अनियंत्रित तथा अनजाने से डोलायमान होती है। यह स्थिति नीस्टेगमस के नाम से पहचानी जाती है। नीस्टेगमस भी अनेक प्रकार का होता है और दोनों आंखों को प्रभावित करता है, चूंकि अलबीनीजम पैदाईशी स्थिति हैं अतः नीस्टेगमस भी पैदा होते समय से ही होता है। नीस्टेगमस कतिपय स्नायु संबंधी रोगों में भी पाया जाता है। मीडब्रेन, सेरेबेलम, वेस्टीबुलर ट्रेक्ट, आक्युपेशनल न्यूरोसिस जैसे रोग तथा खदानों में लंबे समय तक काम करने से भी होता है, किंतु इन बीमारियों तथा स्थितियों में मेलेनीन रंजक शरीर में होता है। अतः कारणों में तथा निस्टेगमस होने की आयु में भिन्नता होती है। नीस्टेगमस के अतिरिक्त अलबीनीजम में आंख में भेंडापन भी हो सकता है तथा बायनाक्युलर विजन नहीं होता है।

अलबीनीजम से प्रभावित व्यक्ति को सनबर्न-धूपतामृता होने की संभावना अधिक होती है। धूपतामृता समुद्रतट के अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर अधिक होती है, किंतु विशेष परिस्थिति जैसे रेतीले तथा चमकीले क्षेत्र में कम ऊंचाई वाले स्थानों पर भी हो सकती हैं। उचित वस्त्र तथा धूप के चश्मे के उपयोग से धूपतामृता से बचाव हो सकता है। स्मरण रहे गीले वस्त्र पहनने पर धूपतामृता से बचाव नहीं हो पाता है।

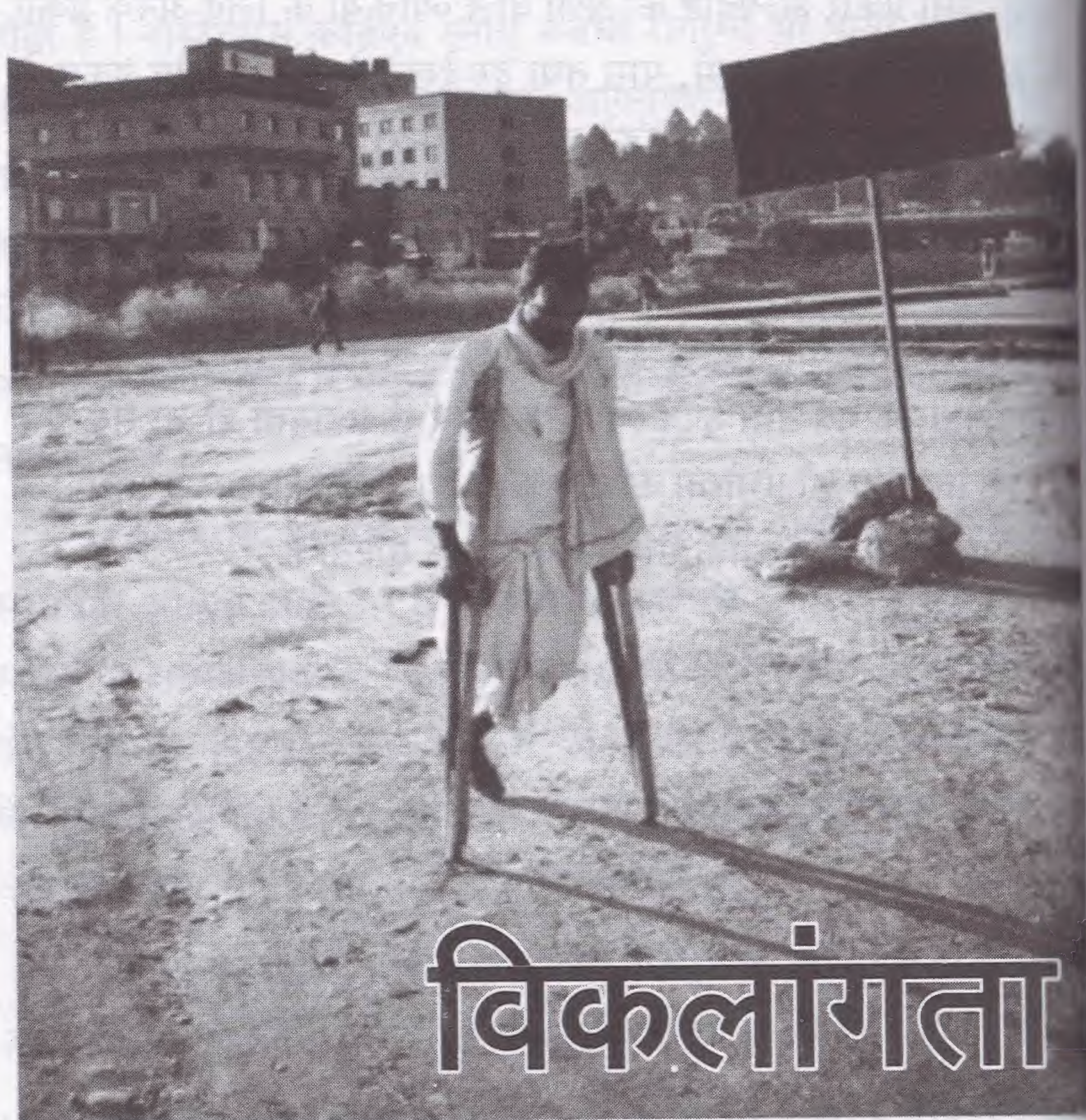
अलबीनीजम का आंख, बाल तथा चमड़ी के अतिरिक्त खून तथा अन्य प्रकार की दैहिक बीमारियों से भी निकट का संबंध है।

शारीरिक विषमताओं के साथ अलबीनीजम वाले व्यक्ति भावनात्मक रूप से भी असामान्य होते हैं, उनमें अनेक परेशानियां विद्यमान होती हैं। इसका एक मात्र कारण है कि सामान्य व्यक्ति से भिन्न दिखना।

नेत्र दोष के कारण प्रभावित कार्यक्षमता की तीव्रता को कम करने हेतु अनेक उपाय किए जा सकते हैं। धूप से बचाव हेतु फील्टर का उपयोग, नंबर के चश्मे, कान्टेक्स लेंस तथा पढ़ने-लिखने के लिए कम आयु में भी बायफोकल चश्मे के उपयोग से सहायता मिलती है। इस शारीरिक स्थिति में पास से पढ़ने की आवश्यकता हो सकती है। इस प्रवृत्ति पर रोकथाम की आवश्यकता नहीं है।

उसी प्रकार अल्पदृष्टि की श्रेणी वाले व्यक्तियों के लिए अनेक प्रकार के सहायक यंत्र जैसे चश्में, पास तथा दूर देखने के लिए विशेष प्रकार के सहायक उपकरण हाथ में पकड़ने वाले टेलीस्कोप, इलेक्ट्रानिक तथा भेद दिखलाने वाले यंत्र पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, इनके उचित उपयोग से प्रभावित व्यक्ति की कार्यक्षमता में वृद्धि हो सकती है।

इस वंशानुगत रोग को उपचार से ठीक तो नहीं किया जा सकता है, किंतु सहायक यंत्र तथा उपकरणों के माध्यम से सहायता दी जा सकती है जो कि विषमता की गंभीरता को कम करते हैं। बचाव तथा अन्य साधनों के उपयोग से प्रभावित व्यक्ति सामान्य कार्य कर सकता है।



विकलांगता

अनुक्रमाणिका

1. विकलांग समुदाय हेतु चार सूत्रीय कार्यक्रम
2. विकलांगता समग्र रूप से देखिए
3. कैसे हो ग्रामीण विकलांगों का कल्याण
4. कैसे हो दृष्टिहीनों के लिए समुचित शिक्षा
5. दृष्टिहीनों के पुनर्वास हेतु युद्ध स्तरीय प्रयास किए जाएं
6. मानसिक विकलांग परिदृश्य
7. मानसिक विकलांग व्यक्तियों के कल्याण हेतु नेशनल ट्रस्ट
8. जरूरी है सेरीब्रल पाल्सी की रोकथाम और पुनर्वसन
9. ध्वनि प्रदूषण और श्रवण क्षमता
10. वृद्धावस्था का रोग आस्टीयोपरोसीस
11. वृद्धावस्था के रोग ध्यान दीजिये
12. Helpline Project for Disabled
13. श्रवण दोष : कारण एवं निराकरण

विकलांग समुदाय हेतु चार सूत्रीय कल्याण कार्यक्रम

डॉ. एम.सी. नाहटा

विकलांग समुदाय की संख्या संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 10 प्रतिशत तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक 20 प्रतिशत है। अतः भारत वर्ष में यह संख्या 2 करोड़ तक हो सकती है, जिसका 70 से 80 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्र में रहता है और सामान्य अनुमान से 50 प्रतिशत महिलाएं होगी।

विकलांग वर्ग शारीरिक रूप से असमर्थ होता है, जिसका पुनर्वसन कठिन तो है, किंतु असंभव नहीं है। यह कार्य विशेष प्रकार के योजनाबद्ध कार्यक्रम के क्रियान्वयन से संभव है, किंतु आज तक इस दिशा में कोई कार्यक्रम बनाया ही नहीं गया, इतना अवश्य है कि कुछ स्वयंसेवी संगठनों ने क्षमतानुसार कार्य करने का प्रयास किया, किंतु अनेक कारणों से वो लक्ष्य से बहुत दूर है। शासकीयस्तर पर 1992 में भारतीय पुनर्वसन परिषद कानून 1995, में परसन्स वीथ डीसएबीलिटी एक्ट तथा 1999 में नेशनल ट्रस्ट गठन हेतु कानून बनाया। ये संस्थाएं भी व्यक्तिगत लाभ के अतिरिक्त कुछ अधिक नहीं कर पाईं। अतः चार सूत्रीय विकलांग कल्याण कार्यक्रम इस वर्ग की शिक्षा, दीक्षा, कल्याण तथा पुनर्वसन में रामबाण का काम कर सकता है। इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम में चार बिंदु हैं।

1. ब्राउन रिन्होल्युशन
2. कम्यूनिटी बेस्ड रिहेबिलीटेशन शैक्षणिक संस्था की स्थापना।
3. उपलब्ध सेवाओं का पुर्नगठन।
4. डिसएबीलीटी कमीशन की स्थापना।

ब्राउन रिन्होल्युशन—अनेक क्षेत्रों में भारतीय समुदाय की कठिनाइयों के निराकरण हेतु उत्कृष्ट कार्य सफलतापूर्वक किए गए। 1943 के बंगाल

के अकाल के पश्चात हरितक्रांति के परिणाम स्वरूप खेद्यानों में देश आत्मनिर्भर बन गया। आनंद (गुजरात) की श्वेत क्रांति ने विकास में आ रहे अवरोधों को समाप्त किया और सुखद परिणाम हमारे सामने हैं। इनफरमेशन तथा टेक्नालाजी के क्षेत्र में ब्लू रिन्होलुशन ने हमारी कार्यप्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया। विकलांग व्यक्ति के कल्याणार्थ तथा पुर्नवसन हेतु एवं आदिवासी, आदिवासी जनजाति, अल्पसंख्यक, महिला, शिशु, वृद्ध तथा बेरोजगार युवाओं हेतु अनेक योजनाएं बनाई गई, जिनसे न तो लाभ मिला न ही सफलता मिल पाई, क्योंकि समस्त कर्ताधर्ता तथा मंत्रालय एकांकी रूप से काम करते हैं, जहां अधिसारिता का संपूर्ण अभाव है। ब्राउन रिन्होलुशन (ब्राउन से तात्पर्य है कल्याण) के अंतर्गत प्रत्येक मंत्रालय में एक केन्द्र स्थापित करना पड़ेगा, ताकि समस्त योजनाएं इसके आसपास कार्य करे और मानीटर भी कि जा सके, यही सफलता का मूल मंत्र तथा कुंजी होगा।

प्रस्तुत कार्यक्रम का दूसरा बिंदु है—

समाज आधारित शैक्षणिक संस्था की स्थापना - भारत में वर्तमान में आडियालाजी, आस्थेटीक प्रोस्थेटीक तकनीकी क्षेत्रों में विशेष शिक्षा हेतु कुछ केन्द्रों तथा राष्ट्रीय संस्थानों में सुविधाएं उपलब्ध है। हमारे पास तकनीकी ज्ञान तकनीक तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। वर्तमान में हम विदेशों से आयातित तकनीक का उपयोग करते हैं, किंतु विडम्बना है कि हमारे पास व्यक्ति विशेष के पुनर्वसन की व्यवस्था तो है किंतु इस प्रकार की व्यवस्था को ग्रामीण क्षेत्रों में ले जाने की व्यवस्था नहीं है। यह कार्य उपरोक्त संदर्भित संस्था के माध्यम से सरलता से किया जा सकता है। अतिरिक्त रूप से यह संस्था वर्तमान स्थिति का आकलन करेगी तथा ग्रामीण एवम शहरी क्षेत्र में समान रूप से उपयोगी होगी। इस संस्था के माध्यम से ही उपलब्ध संसाधनों का भरपूर उपयोग तथा अन्य बिंदुओं पर विचारोपरान्त

भविष्य के लिए उपाय भी सुझा सकेगी। इस विषय पर व्याप्त भ्रान्तियों का निराकरण भी इस संस्था के माध्यम से हो सकेगा। स्मरण रहे कि इस प्रकार का विचार तथा योजना पहली बार प्रस्तुत की गई है और स्थापना परान्त यह विश्व की पहली संस्था होगी। इसकी उपयोगिता का वर्णन शब्दों में संभव नहीं है।

इस कार्यक्रम का तीसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है -

विकलांगता के क्षेत्र में उपलब्ध सेवाओं का पूर्णगठन-

भारत के प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रत्येक विकलांग व्यक्ति को पुनर्वसन सेवा की उपलब्धता हेतु अनेक कार्यक्रम तथा योजनाएं बनी हैं। इमानदार प्रयासों तथा नए-नए विचारों पर कार्य होने के बावजूद विकलांगता हेतु उपलब्ध सेवाएं न केवल अपर्याप्त हैं वरन् पूर्ण रूपेण असंतोष जनक भी हैं। इसके प्रमुख कारणों में से प्रमुख है - एक ही प्रकार की योजना को अलग-अलग नाम देकर कार्यान्वित करने का प्रयास। अतः पुनर्वसन सेवा को भी त्रिस्तरीय बनाना उपयुक्त तथा आवश्यक है।

अपेक्स टरशरी, प्रायमरी, डिस्ट्रीक्ट
रीजनल सेकंडरी, सेकंडरी, रिजनल
डिस्ट्रीक्ट प्रायमरी, टरशरी, अपेक्स

अपेक्स (Apex)— शीर्ष स्तर पर सेवाएं राष्ट्रीय संस्थानों के माध्यम से दी जा सकती हैं जिनकी संख्या वर्तमान में देश में पांच है। इन शीर्ष संस्थानों में विशेष प्रकार के कार्य किये जाना वांछित होगा जैसे मानव संसाधन विकास, अनुसंधान, सर्विस डीलव्हरी कार्यक्रम, जानकारी का आदान प्रदान तथा स्वयंसेवी संगठनों को मार्गदर्शन, हांलाकि इन शीर्ष संस्थानों के कार्य निर्धारित किए जा चुके हैं। किन्तु फिर भी ऐसी गतिविधियों में भी उन्हें भाग लेना पड़ता है जो उनके लिए निरर्थक हैं तथा

आर्थिक संसाधनों की बर्बादी भी है। रिजनल (Regional) - क्षेत्रीय स्तर पर कार्य काम्पोजिट रिहेबीलीटेशन सेंटर बहुत सरलता से कर सकते हैं। एक क्षेत्रीय संस्था का कार्य क्षेत्र 10 जिलों तक निर्धारित किया जा सकता है जिनकी जनसंख्या लगभग एक करोड़ होगी।

प्राथमिक (Primary)—प्राथमिक स्तर पर यह कार्य डी.डी.आर.सी. (D.D.R.C.) कर सकते हैं। जो कि ग्रामीण अंचलों को मौलिक सेवा उपलब्ध करावेंगे। एक डी.डी.आर.सी. के क्षेत्र की जनसंख्या लगभग 10 लाख होगी जो ब्लॉक तथा ग्रामीण विकलांगों को सेवा उपलब्ध करावेंगे। इस प्रकार के केन्द्र प्रत्येक जिले में स्थापित करना पड़ेगा। प्रत्येक डी.डी.आर.सी. स्वयंसेवी संगठन तथा पेरा रिहेबीलीटेशन कार्यकर्ताओं के माध्यम से अपना कार्य करेंगे। अपने अपने क्षेत्र में निदान शिविरों का आयोजन तथा अल्प दृष्टि केन्द्रों की स्थापना भी डी.डी.आर.सी. करेगा। स्थानिय भाषाओं में जानकारी उपलब्ध कराने का कार्य भी डी.डी.आर.सी. ही करेगा। इस कार्यप्रणाली से विकलांग व्यक्ति तथा उसके परिवार को राहत मिल सकेगी। इस प्रकार के पूरे देश में 580 केन्द्र स्थापित करना पड़ेंगे।

इस कार्यक्रम का चतुर्थ एवं ऐतिहासिक बिन्दु है -

डिसएबिलिटी आयोग की स्थापना—विकलांगों की संख्या आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति, भाषा कानूनी मुद्दे तथा अपर्याप्त पूर्णवसन सुविधाओं एवं भारतीय पुनर्वसन परिषद, पी.डब्ल्यू.डी. तथा नेशनल ट्रस्ट के कानूनी प्रवधानों के अन्तर्गत कार्य में अनेक कठिनाईयां हैं। यह उपयुक्त समय है कि स्थिति पर विचार तथा चिंतन किया जावे जो कि डिसएबिलिटी आयोग के माध्यम से किया जा सकता है। अतः आज इसकी महती आवश्यकता है। आयोग से सम्मुख विचारार्थ निम्नांकित बिन्दु प्रस्तुत करने से इस वर्ग तथा इससे संबंधित व्यक्तियों की समस्याओं का निराकरण हो

सकेगा । प्रस्तावित आयोग निम्नांकित बिन्दुओं पर विचार करेगा -

- विकलांग वर्ग हेतु आवश्यक तथा उपलब्ध सुविधाओं के भारी अन्तर को पाटना ।
- विकलांग वर्ग हेतु शिक्षा के स्तर को समान तथा गुणवत्ता आधारित बनाना ।
- प्रशिक्षण देने वाले शिक्षकों की गुणवत्ता में सुधार के उपाय ।
- अधोरसंरचना, सुविधाएं विशेष रूप से स्पेशल स्कूल में रहने तथा भोजन व्यवस्था में सुधार हेतु मार्गदर्शिका का निर्धारण ।
- विशेष शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षक तथा कर्मचारी की तनख्वाह तथा अन्य सेवा शर्तों में सुधार हेतु प्रस्ताव ।
- प्रारंभिक इंटरवेंशन कार्यक्रम, विकलांग वर्ग की उच्च शिक्षा हेतु अधिसंरचना हेतु सुझाव तथा सुधार के उपाय ।
- विकलांग वर्ग की शिक्षा हेतु आगामी दस वर्षों की कार्य योजना बनाना ताकि विकलांगता की रोकथाम, मानव शक्ति विकास हेतु प्रशिक्षण केन्द्रों की संख्या तथा साधनों में वृद्धि ।
- उपलब्ध तकनीक के उपयोग तथा विकास के उपायों को प्रस्तुतिकरण ।
- पाठ्यक्रम, शैक्षणिक साधन, गुणवत्ता आधारित शिक्षा एवं अन्य बिन्दुओं में परिवर्तन भी यह आयोग सुझाएगा ।

अन्त में मेरा विनम्र सुधाव है कि मेरे द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम को एक पायलट प्रोजेक्ट के रूप में प्रेदश के आदिवासी जिलों में आरंभ किया जा सकता है । इस प्रकार का कार्यक्रम देश में प्रथम होगा तथा इसकी सफलता में लेश मात्र का भी संशय नहीं है ।

विकलांगता-समग्र रूप से देखिये

डॉ. एम.सी. नाहटा

विकलांग समुदाय की कठिनाइयों, शिक्षा, पुनर्वसन तथा अन्य संबंधित विषयों पर चर्चा पिछले कुछ वर्षों से एक साधारण तथा आम बात हो गई है, किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि चर्चा अधिक तथा काम लगभग नगण्य है। विकलांग समुदाय के कितने व्यक्ति लाभान्वित हो रहे हैं, यह अनुसंधान का विषय है। यह भी उतना ही सत्य है, इस क्षेत्र में काम कठिन नहीं तो सरल भी नहीं है। स्थिति तो यहां तक है कि इस वर्ग की वास्तविक संख्या के आंकड़े भी भिन्न-भिन्न स्रोतों ने भिन्न-भिन्न उपलब्ध कराए हैं। वैसे विकलांग व्यक्ति शारीरिक रूप से असमर्थ होता है। यह स्थिति दृष्टिहीनता, अल्पदृष्टि, कुष्ठ रोग से मुक्त रोगी, श्रवण बाधित, मानसिक विलंबित तथा मानसिक बीमारी के रूप में देखी जा सकती है।

1981 के एक सर्वेक्षण के अनुसार सामान्य जनसंख्या का 1.8 प्रतिशत विकलांग है। दस वर्ष बाद 1991 में इसी संस्था द्वारा किए गए पुनः सर्वेक्षण के अनुसार यह संख्या 1.9 प्रतिशत है तथा अतिरिक्त रूप से 2-2.5 प्रतिशत को मानसिक रूप से विकलांग माना गया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन क्रमशः विकलांग संख्या का 10 और 20 प्रतिशत मानते हैं। भारत की जनसंख्या के 5 प्रतिशत भाग के विकलांग होने के आधार पर 5 करोड़ व्यक्ति विकलांग है। लिंग आधारित रूप से संख्या पुरुषों में 22.77 तथा महिलाओं में 16.95 प्रति एक हजार है। उसी प्रकार शहरी क्षेत्रों में यह संख्या 16.75 तथा ग्रामीण क्षेत्र में 19.75 प्रति एक हजार है। वरिष्ठ नागरिकों (60 वर्ष की आयु से अधिक) में 36 प्रतिशत विकलांग है। यहां तक कि कई राज्य जैसे आंध्रप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, पंजाब तथा तमिलनाडु, राज्यों में

दूसरे प्रदेशों की तुलना में विकलांगता का प्रतिशत अधिक है। चिकित्सकीय कार्यों में सुधार, विकलांगता क्षेत्र में किए जा रहे कार्यों, बचाव तथा अन्य सुधारात्मक परिस्थितियों के बावजूद न तो विकलांगता के प्रतिशत में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है, न ही शिक्षा तथा पुनर्वसन की प्रमाणिक संख्या में वृद्धि हुई है। अतः हम यह विश्वास करने का बाध्य हैं कि वर्तमान में किए जा रहे कार्य परिणामजनक नहीं हैं। यह अवश्य संतोषप्रद है कि अंधत्व निरोधक तथा पोलियो उन्मुलन के प्रभावी कार्यक्रमों में परिणामस्वरूप अंधत्व तथा पोलियो आधारित अस्थिबाधित विकलांगता में कमी आई है। वहीं दूसरी ओर अन्य कारणों तथा परिस्थितियों के कारण अल्पदृष्टि, दुर्घटनाओं से उत्पन्न अस्थिबाधित विकलांगता तथा जन्म के समय कम वजन वाले शिशुओं के जीवित रहने के परिणामस्वरूप सेरीब्रल पाल्सी तथा मानसिक विलंबित की संख्या में वृद्धि हुई है। उसी प्रकार आत्म विमोह, अधिक सक्रियता तथा सीखने में कमी के प्रकारण भी अधिक देखने को मिल रहे हैं। तात्पर्य है कि विकलांगता का प्रतिशत कम नहीं हुआ है-इसमें वृद्धि ही हुई है।

विकलांगता से संबंधित बिन्दुओं पर विचार करने के पूर्व अति आवश्यक है कि हम विकलांगता के कारणों से अवगत हो। इस स्थिति के प्रमुख कारणों में स्त्रियों में गर्भावस्था में घटिया भोजन, पोषण, नवजात शिशु का कम वजन, समय से पूर्व प्रसव, जननिक कारण, दस्त से उत्पन्न निर्जलीकरण, उच्च ताप से मस्तिष्क पर प्रभाव के कारण सेरीब्रल पाल्सी तथा दौरा, स्वच्छता, भीड़ भरे वातावरण में आवास तथा घटिया भोजन से उत्पन्न एवं अन्य रोग, बुनियादी स्वास्थ्य तथा पुनर्वसन सेवा तथा टीकाकरण की अनुपलब्धता, गर्भावस्था के समय अनावश्यक तथा अनुचित औषधियों के सेवन, दुर्घटना, कुष्ठ रोग, भोजन, पानी वायुमंडल तथा कार्यस्थली पर विषैले पदार्थ, केसरीदाल, पीने के पानी द्वारा किए गए

विशेष प्रकार की विषमता से प्राप्त हड्डी में क्षति तथा बढ़ती आयु प्रधान सहयोगी कारक है।

उपरोक्त परिस्थितियों में इस क्षेत्र की आवश्यकताओं पर विचार आवश्यक है। मेरे मत में निम्न बिन्दुओं पर विचार तथा कार्यवाही महत्वपूर्ण तथा निर्णायक हो सकती है—

1. बचाव, 2. प्रारंभिक अवस्था में कार्यवाही, 3. पुनर्वसन के माध्यम से सामान्य अवस्था में वापसी के उपाय - शिक्षा, रोजगार तथा समाजीकरण के माध्यम से संभव है। विकलांगता के क्षेत्र में सरकार तथा स्वयंसेवी संगठन कार्यरत है तथा सक्रिय भी है। सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों पर नजर दौड़ाना भी सामयिक होगा। सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय द्वारा प्रदत्त जानकारी के अनुसार सर्वप्रथम भारतीय पुनर्वसन परिषद की स्थापना 1992 में की गई, 1995 अधिनियम पारित हुआ तथा 1999 में मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिये एक ट्रस्ट का गठन हुआ। 1999 में 11 जिलों में जिला पुनर्वसन केन्द्र, 4 क्षेत्रीय पुनर्वसन प्रशिक्षण केन्द्र, 6 राष्ट्रीय संस्थान, 57 जिला विकलांग पुनर्वसन केन्द्र, 5 संयुक्त क्षेत्रीय केन्द्र, 4 क्षेत्रीय स्पाइनल तथा अस्थिबाधित विकलांग पुनर्वसन केन्द्र तथा ऐसा ही एक केन्द्र नई दिल्ली में स्थापित है। एक राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा भविष्य की कार्य योजना के अंतर्गत 106 केन्द्रों को फंक्शनल बनाना, 4 सहायक उत्पादक केन्द्र एवं पुनर्वसन महाविद्यालय, मानसिक विकलांगों के लिए हाफ वे होम्स, 1995 अधिनियम में संशोधन, राष्ट्रीय संस्थानों का पुनः रीक्षण तथा पदों की सूची में सुधारात्मक परिवर्तन प्रस्तावित है।

एक अमब्रेला योजना भी कार्यरत है, जिसके अंतर्गत 90:10 के अनुपात में विकलांगों के पुनर्वसन हेतु व्यवसायिक प्रशिक्षण, विशेष स्कूलों

की स्थापना, सामुदायिकता आधारित पुनर्वसन प्रकल्प के लिए पूरे देश में 549 स्वयंसेवी संगठन अनुदान प्राप्त कर रहे हैं।

शासकीय प्रयासों के अतिरिक्त स्वयंसेवी संगठन अपने-अपने प्रयासों से विभिन्न स्रोतों से आर्थिक तथा अन्य सहायता प्राप्त कर रहे हैं। विदेशों से प्राप्त आर्थिक सहायता भी कम नहीं है। इतना सब होने के बाद भी परिणाम उंट के मुंह में जीरे के समान है। अतः आवश्यक है कि हम समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर समाधान हेतु उपाय ढूँढें। विचार करते समय इस तथ्य को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता कि लाभान्वित विकलांगों की प्रतिवर्ष की संख्या सचमुच कितनी है। कितने व्यक्तियों ने स्वरोजगार के माध्यम से जीविका कमाना प्रारंभ किया है।

यह सर्वविदित है कि स्वयंसेवी अलंकार से नवाजे गए संगठन लगभग पूर्णतया शासकीय सहायता पर निर्भर हो गए हैं। शासकीय व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण अनुदान प्राप्त करना भी असंभव है। नई योजना प्रस्तुतिकरण के समय संबंधित अधिकारियों के अंशदान का योजना में समावेश करने को बाध्य है। इन तथा अन्य विषम परिस्थितियों पर नियंत्रण हेतु हमें एक मुश्त निर्णय करना पड़ेगा क्या यह कार्य हम स्वयं करने में सक्षम हैं, अन्यथा हमें वर्तमान व्यवस्था से समझौता करना पड़ेगा। मेरे मत में दोनों ही परिस्थितियाँ संभव नहीं हैं। अतः हमें व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा में अग्रसर होना पड़ेगा। परिवर्तन दो स्तरीय आवश्यक है।

1. स्वयंसेवी संगठनों के स्तर।

2. शासकीय व्यवस्था में।

इस विषय पर गंभीर चिंतन के पश्चात् मेरा मत है कि -

1. विकलांग व्यक्तियों की संख्या के आधार पर स्वयंसेवी संगठनों की संख्या तथा कार्य क्षेत्र का निर्धारण किया जावे।

2. स्वयंसेवी संगठनों के लिए वर्तमान कानून रजिस्ट्रेशन ऑफ फर्मस तथा सोसायटी में आमूल परिवर्तन ।
3. स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकर्ताओं के लिए अर्हताएं निश्चित ही जावें ।
4. स्वयंसेवी संगठनों को आवंटन सीधा किया जावे ।

शासकीय व्यवस्था के क्षेत्र में क्रांति की आवश्यकता है । मूलरूप से शासन का कार्य है धन का आवंटन तथा उपयोग पर निगरानी, परिणामों की समीक्षा तथा उपकृत लोगों की संख्या की जानकारी प्राप्त करना । विकेद्रीकरण के मूलभूत सिद्धांत पर आधारित यह कार्य स्थानीय रूप से (उपलब्ध हो तो) उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश या उसके समकक्ष अधिकारी की अध्यक्षता में एक तीन सदस्यीय समिति को दिया जावे, किंतु सुनिश्चित होना चाहिए कि प्रत्येक प्रकरण का निराकरण निर्धारित समयावधि में हो जो किसी भी स्थिति में 6 सप्ताह से अधिक न हो ।

इसी प्रकार की व्यवस्था का निर्धारण केन्द्रीय स्तर पर भी किया जाना उचित प्रतीत होता है । परिवर्तन के पूर्व आवश्यक है कि स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधियों से चर्चा भी की जाए, किंतु चर्चा के बहाने विलंब करने से हम अपने उद्देश्य को प्राप्त करने से दूर ही रहेंगे, जो न कोई चाहता है न ही हमारा उद्देश्य है ।

सामाजिक न्याय—ग्रामीण विकलांगों के कल्याण हेतु प्रयास

डॉ. एस.सी. नाहटा

भारत का संविधान सिद्धांतिक रूप से सबको समान अवसर का अधिकार प्रदान करता है, किन्तु इस पर पूरी तौर से अमल नहीं हो पा रहा है। एन.एस.एस.ओ. द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार 104 करोड़ की वर्तमान जनसंख्या वाले हमारे देश में 5 करोड़ व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की विकलांगता से प्रभावित है। बच्चों, नौजवानों तथा उत्पादक आयु वर्ग के विकलांग व्यक्ति बड़ी संख्या में हैं। 36 प्रतिशत विकलांग 60 वर्ष से अधिक आयु के हैं। इस विकलांग आबादी का 75 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्र में तथा 15 प्रतिशत छोटे गांवों, कस्बों में रहता है, जहां उनके लिए पुनर्वसन की व्यवस्था नाम मात्र को भी नहीं है। जहां सुविधा उपलब्ध है वहां भी इसका लाभ सीमित व्यक्तियों को ही मिल पाता है। स्वाभाविक रूप से निष्कर्ष निकलता है कि 95 प्रतिशत विकलांग जनसंख्या को पुनर्वसन सेवा उपलब्ध नहीं है। दूसरी ओर इतनी बड़ी विकलांग जनसंख्या का पुनर्वसन करना भी गुरुतम कार्य है। संसाधन के अतिरिक्त निष्ठापूर्वक कार्य भी आवश्यक है। विकलांगता की रोकथाम अधिक फलदायी हो सकती है। रोकथाम व्यक्ति विशेष, संस्था, संगठन या क्षेत्र विशेष के अतिरिक्त मुख्य रूप से सरकार के विभिन्न विभागों की सामूहिक जिम्मेदारी है और स्वास्थ्य विभाग का दायित्व सर्वाधिक है चूंकि टीकाकरण, गर्भवती महिला की देखभाल, प्रसव तथा प्रसव पश्चात उचित चिकित्सा, शिशुओं की सतत देखभाल, पोषण व्यवस्था इत्यादि कार्य स्वास्थ्य विभाग के ही कार्य क्षेत्र में आते हैं। केवल स्वास्थ्य विभाग पर जिम्मेदारी डालकर हम अपने दायित्व से नहीं बचना चाहते हैं। हमारा मंतव्य है कि हमारी योजनाएं ग्रामीण विकलांगों के कल्याण आधारित होना परम आवश्यक है। इन विचारों को दृष्टिगत रखते हुए विकलांग समस्या निराकरण हेतु नीति में

परिवर्तन के साथ समय-समय पर अधिनियम बनाए गए हैं— 1992 में भारतीय पुनर्वसन परिषद्, 1995 निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी अधिनियम) तथा 1999 नेशनल ट्रस्ट गठन हेतु कानून भी बनाए गए हैं। केन्द्रिय समन्वय समिति तथा कार्यकारिणी समिति ने 24.10.2000 से 4.9.2000 के बीच निःशक्त अधिनियम की समक्षा की, 51 केन्द्रीय मंत्रालयों / विभागों के सचिवों ने 1995 के अधिनियम क्रियान्वयन हेतु कई बैठकें की, जून 2001 में एक अन्य समिति द्वारा प्रस्तुत सिफारिश को मंजूरी दी। विकलांग व्यक्ति हेतु उपयुक्त पदों को चुना और केन्द्र सरकार द्वारा मंजूरी दी गई है। यह एक उत्साहजनक बात है कि सामाजिक न्याय मंत्रालय ने संतुष्ट होकर बैठ जाने की नीति का अनुसरण नहीं किया वरन् नए-नए विचारों के माध्यम से सुधार हेतु 2002 में एक हाय पावर कमेटी तथा स्वयंसेवी संगठनों की दिशा तय करने हेतु एक अन्य समिति का गठन किया है। स्पष्ट है कि सरकार ग्रामीण क्षेत्र के विकलांग व्यक्तियों के लिए चिंतित है और कुछ करना भी चाहती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु तीन कार्यक्रम — नेशनल प्रोग्राम फॉर परसन्स वीथ डीसएबीलीज, अम्ब्रेला स्कीम तथा जिला विकलांगता पुनर्वसन केन्द्रों की स्थापना तथा गतिशील बनाने के कार्य को हाथ में लिया है।

एन.पी.आर.पी.डी. कार्यक्रम प्रमुख रूप से ग्रामीण क्षेत्र के विकलांग व्यक्तियों को पुनर्वसन सेवा उपलब्ध कराने हेतु प्रारंभ किया गया है। इस कार्यक्रम में चार स्तरीय—ग्राम पंचायत, ब्लॉक, जिला तथा राज्य स्तरीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में 3-5 जिलों का चयन करने का प्रावधान है। समूचे राष्ट्र में आज तक 82 जिलों में यह योजना कार्यान्वित हो चुकी है। 18 राज्यों में जिलों का चयन हो चुका है, मध्यप्रदेश सहित 11 राज्यों में केवल जिलों का चयन ही हो पाया है, 6 राज्यों में कार्य प्रारंभ होना शेष

है। यह स्टेट सेक्टर स्कीम मानी गई है। प्रत्येक जिले को 61.95 लाख तथा प्रादेशिक केन्द्र के लिए 25.00 लाख की राशि दी जाती है। विकलांग कल्याण संबंधित सारे कार्यों का प्रावधान इस योजना के अंतर्गत किया है।

दूसरी योजना- अम्ब्रेला स्कीम के नाम से जानी जाती है। 1960 के पूर्व तथा 1982, 1987, 1992, 1993, 1994 में कार्यरत विभिन्न योजनाओं का एकीकरण कर यह बहुउद्देशीय योजना बनाई गई है। स्वयंसेवी रजिस्टर्ड संगठन, पब्लिक ट्रस्ट तथा कंपनी एक्ट की धारा 25 के अंतर्गत लायसेंसशुदा कंपनी इस योजना के तहत आर्थिक सहायता प्राप्त करने की पात्रता रखते हैं। आर्थिक सहायता दो किशतों में दी जाती है, जिसके लिए आवेदन की अंतिम तिथि 30 जून प्रथम किशत तथा 31 अक्टूबर द्वितीय किशत के लिए निर्धारित है।

आवेदन के साथ निर्धारित प्रमाण पत्रों का संलग्न करना आवश्यक है। सन् 2001-2002 में किए गए निरीक्षण के आधार पर 92 प्रतिशत संस्थाओं का कार्य संतोषजनक पाया गया, 3.33 प्रतिशत प्रोजेक्ट को बंद किया गया, 1.67 प्रतिशत का अनुदान बंद किया गया, 1.33 को काली सूची में डाला गया तथा कुछ संगठनों का पुनः निरीक्षण, कुछ को सुझाव तथा कुछ को कारण बताओ स्मरण पत्र दिए गए।

तीसरी योजना जिला विकलांग पुनर्वसन केन्द्रों की स्थापना की है। इस योजना के अंतर्गत देश के 102 जिलों में केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। उद्देश्य मौलिक रूप से ग्रामीण विकलांग व्यक्तियों के कल्याण तथा पुनर्वसन पर ही आधारित है तथा एन.पी.आर.पी.डी. के अंग होकर प्रादेशिक सरकार की योजना है। इन केन्द्रों की निगरानी जिलाधीश की अध्यक्षता में गठित एक समिति करती है, जिसमें प्रमुख स्वयंसेवी संगठन के प्रतिनिधि के समावेश का प्रावधान है।

स्पष्ट है कि उपरोक्त योजनाएं ग्रामीण विकलांग व्यक्तियों के कल्याण हेतु लगभग समान उद्देश्य, भिन्न कार्य प्रणाली पर आधारित है। तीनों योजनाओं के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था है। हमारे प्रयासों से इन योजनाओं का लाभ ग्रामीण विकलांग वर्ग को मिलना चाहिए। उपयुक्त होगा कि पूर्व के उदाहरण का अनुसरण करते हुए इन तीनों योजनाओं का एकीकरण किया जाए ताकि सफलता के प्रतिशत तथा हितग्राहियों की संख्या में वृद्धि हो सके यही हमारा एकमात्र उद्देश्य भी है।

कैसी सुनिश्चित हो दृष्टिहीनों के लिए समुचित शिक्षा?

— डॉ. एम.सी. नाहटा

विकलांगता का अस्तित्व मनुष्य के साथ जुड़ा है। इसकी मात्रा तथा व्यापकता का भी आपस में निकट संबंध है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पूरे विश्व में प्रति 10 व्यक्तियों में एक विकलांग है। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुसार भारत में दृष्टिहीनों की संख्या 1.2 करोड़ तथा अल्पदृष्टि से पीड़ितों की संख्या 2.86 करोड़ है। 60 वर्ष से अधिक आयु वर्ग में दृष्टिहीनता का प्रतिशत अधिक है जो कि प्रति 1000 में ग्रामीण क्षेत्र में 717 तथा शहरी क्षेत्र में 670 अनुमानित है। इस व्यापकता को देखते हुए स्वाभाविक रूप से दृष्टिहीनों के पुनर्वसन की दिशा निर्धारित करने का प्रश्न सामने आता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिंदु शिक्षा का प्रतीत होता है। इस विषय पर साहित्य का पहला प्रकाशन 1646 में इटली में जैसुयिट लामा टर्जिया द्वारा लिखित 'इन्स्ट्रक्शन्स ऑफ द ब्लाइंड' (दृष्टिहीनों का शिक्षण) नामक पुस्तक के प्रकाशन से हुआ था। इसके बाद इंग्लैंड में 1690 में एक दार्शनिक जॉन लोक के एक लेख 'ऐसे कसर्निंग ह्यूमन अंडरस्टैंडिंग' तथा बिशप वारकले द्वारा लिखित 'ऐसे टुवर्ड्स न्यू थियरी ऑफ विजन' का प्रकाशन हुआ था। इस श्रृंखला में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा आंदोलित करने वाला डेनिस डियोस द्वारा लिखित ऐतिहासिक लेख "लेटर ऑन द ब्लाइंड फॉर दोज हू सी" का प्रकाशन हुआ, जिसमें उन्होंने यह सफलतापूर्वक बताया कि दृष्टि के अभाव में दृष्टिहीनों की शेष इंद्रियाँ अधिक क्षमता से कार्य करती हैं। जो कुछ दृष्टिवंचित के पास है, उस आधार पर शिक्षण दिया जाना चाहिए, न कि जो उसका खो चुका है उसकी चिंता करना चाहिए। इस लेख ने पूरे समाज को झकझोर कर रख दिया।

इसके बाद शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना की श्रृंखला प्रारंभ हुई। 1784 में पेरिस में वेलेन्टाइन हेनी, 1791 में इंग्लैंड के लीवरपुल नगर

में स्कूल की स्थापना तथा 1832 में लुई ब्रेल द्वारा ब्रेल लिपि के आविष्कार के फलस्वरूप पूरे विश्व में दृष्टिहिनों के लिए शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना के कार्य को गति मिली। भारत में यह कार्य 1887 में अमृतसर तथा 1897 में कोलकाता में क्रमशः सुश्री एली शार्प तथा लालबिहारी शाह द्वारा संस्थाओं की स्थापना से प्रारंभ हुआ।

अंतर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष 1981 को इस क्षेत्र के लिए युगांतकारी घटना माना जाता है। मिशनरी संस्थाओं ने भी विकलांगता के क्षेत्र में विशेष स्कूलों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसे बाद में स्वयंसेवी संगठनों ने अपना लिया। स्वतंत्रता के वर्ष 1947 में इसे स्वयंसेवी संगठनों ने अपना लिया। 1947 में इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या 32 थी, जो वर्तमान में 400 है।

विकलांग व्यक्तियों के पुनर्वसन के कार्य को योजनाबद्ध रूप से गति देने के लिए भारतीय संसद में 1992 में एक कानून पारित कर भारतीय पुनर्वसन परिषद के गठन का कार्य प्रशस्त किया गया तथा उसके उद्देश्यों को भी रेखांकित किया, जो मुख्य रूप से नीति, मानव संसाधन विकास के कार्यक्रम निर्धारण तथा पाठ्यक्रमों का मानकीकरण करना है, किंतु इन मौलिक उद्देश्यों से यह संस्था भटक गई तथा निर्धारित क्षेत्र से बाहर काम करने लगी, फलस्वरूप समान कार्यक्षेत्र वाली संस्थाओं के बीच समन्वय विलुप्त हो गया है। वर्तमान में देश में 179 प्रशिक्षण संस्थान तथा विभिन्न प्रकार की विकलांगता के क्षेत्र में कार्यरत 6 राष्ट्रीय संस्थान हैं। प्रतिवर्ष लगभग 5 हजार प्रशिक्षित कार्यकर्ता तैयार किए जाते हैं, जो मुख्य रूप से विशेष शिक्षक तथा ओरियेंटेशन एवं मोबिलिटी विशेषज्ञों की भूमिका निभाते हैं। इसी प्रकार सात प्रकार के विशेषज्ञ दृष्टिबाधित व्यक्तियों को सहायक सेवा देने का कार्य कर रहे हैं। दृष्टिहीनता के क्षेत्र में भारतीय

पुनर्वास परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त केन्द्रों पर पूरे देश में 6 प्रकार की डिग्री/ डिप्लोमा के लिए पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं।

भारतीय पुनर्वसन परिषद प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के चिकित्सकों को विकलांगता के संबंध में जानकारी उपलब्ध कराने हेतु विशेष प्रशिक्षण तथा चिकित्सा शिक्षा के समकक्ष सतत शिक्षण-प्रशिक्षण जैसे कार्यक्रम भी संचालित कर रही है, धन भी उपलब्ध कराती है तथा दो वर्ष में समीक्षा रिपोर्ट भी प्रकाशित करती है। शिक्षा के क्षेत्र में विशेष स्कूलों की स्थापना, एकीकृत शिक्षा, इन्क्लूसिव एजुकेशन जैसी प्रणालियों से शिक्षा देने के विचारों को क्रियान्वित कर रही है।

वैसे तो विशेषज्ञों द्वारा गंभीर विचार-विमर्श के बाद शैक्षणिक प्रणालियों में परिवर्तन पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती परंतु प्रणालियों की असफलता से ध्यान हटाने के उद्देश्य से नई प्रणालियों को प्रस्तुत करना सर्वथा अनुचित है। ऐसा वर्तमान में हो रहा है। इस कार्य में क्षेत्र के स्थापित व्यक्ति अहम भूमिका निभा रहे हैं, इसके अनेक कारण हो सकते हैं। एक बार विभिन्न विचारों तथा प्रणालियों पर गंभीर रूप से विचार-विमर्श केवल विशेषज्ञों (स्थापित नहीं) द्वारा किया जाए।

जरूरत इस बात की है कि इस देश के दृष्टिहिनों/विकलांग व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुरूप एवं उपलब्ध संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए निर्णय लिए जाएं। विशेष स्कूल, एकीकृत शिक्षा, इन्क्लूसिव एजुकेशन, यूनेस्को की सिफारिशों, खुले स्कूल के माध्यम से डिस्टेंस लर्निंग, इंटरएक्टिव टेलीविजन के भरपूर उपयोग, नॉन फार्मल तथा निवास आधारित शिक्षा, कनवर्जन्स तथा को-ऑर्डिनेशन एवं अन्य विचारों पर गहन विचार विमर्श किया जाए। तत्पश्चात निकले निष्कर्षों को तत्काल प्रभाव से कार्यान्वित करने से दृष्टिहिनों की शिक्षा पद्धतियों तथा स्तर में गुणात्मक विकास हो सकेगा। अन्यथा वर्तमान की तरह हम भटकते ही

रहेंगे और लाभ हितग्राहियों को नहीं, आयोजकों को ही होता रहेगा जो हमारा उद्देश्य नहीं है। भारतीय पुनर्वसन परिषद को अपनी वर्तमान कार्यप्रणाली की समीक्षा करना चाहिए तथा—

1. स्वीकारी नीति तथा उद्देश्यों तक सीमित रहना चाहिये।
2. पाठ्यक्रमों की संख्या सीमित करना चाहिये।
3. दृष्टिहीनों—विकलांग व्यक्तियों की संख्या निर्धारण हेतु नये सर्वेक्षण के माध्यम से वस्तुस्थिति का पता लगाना चाहिये, चूंकि पुराने सर्वेक्षणों के परिणामों में भिन्नता अधिक है।
4. स्वयंसेवी संगठनों की योग्यता, कार्यक्षमता तथा निष्पक्ष आकलन के पश्चात ही शैक्षणिक कार्य के लिये अधिकृत करना चाहिये।

स्वयंसेवी संगठनों की कठिनाइयों की ओर भी ध्यान आकर्षित करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ। यह कटु सत्य है कि इस वर्ग में विषमताएं हैं तो दूसरी ओर उपयुक्त और अच्छा काम करने वाले संगठन भी विद्यमान हैं। ये सक्षम संस्थाएँ आर्थिक अभाव तथा कठिनाइयों के कारण अपने कार्यों में कठिनाइयां महसूस कर रहे हैं। अतः आवश्यक है कि इसमें वृद्धि की जावे तथा विकलांग, दृष्टिहीन व्यक्तियों के कल्याणकारी तथा शैक्षणिक कार्य सुगमता से किये जा सके यह मेरा अनुरोध है।

दृष्टिहीनों के पुनर्वास के लिए युद्ध स्तरीय प्रयास किए जाएं

डॉ. एम.सी. नाहटा

विश्व की जनसंख्या का 10 प्रतिशत भाग विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं से प्रभावित है। इसे नियंत्रित करने के लिए वैसे तो प्रयास राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे हैं, किंतु समस्या की विकरालता को देखते हुए प्रयासों में गति लाने की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत विकलांग अधिनियम 1995 संसद ने पारित किया। अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए मध्यप्रदेश में एक सर्वेक्षण भी कराया गया और 14,77,708 व्यक्ति निःशक्तता बाधित पाए गए - दृष्टि बाधित निःशक्त व्यक्तियों की संख्या 3,28,147 पाई गई जो कि जनसंख्या का 0.49 प्रतिशत है। विकलांग दृष्टिबाधित निःशक्त जनों की संख्या 74-80 प्रतिशत ग्रामीण रहवासी है। इसके अतिरिक्त पूरे देश में 8.4 करोड़ व्यक्ति अल्पदृष्टि से ग्रसित हैं। वैसे तो दृष्टिहीन व्यक्तियों के कल्याण तथा पुनर्वसन के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने सुविधाएं उपलब्ध कराई हैं, जो कम नहीं तो अपर्याप्त तो अवश्य है। उपलब्ध सुविधाओं में रेल तथा हवाई यात्रा, डाक सेवा, कस्टम्स, बैंक, शैक्षणिक भत्ता, कम्पनीयों द्वारा डीलरशिप, सेवा में आरक्षण के क्षेत्र में सुविधाएं उपलब्ध हैं। राज्य सरकारों ने भी अपने-अपने स्तर पर सुविधाएं प्रदान की हैं। मध्यप्रदेश में भी सुविधाएं देने का प्रावधान है, किंतु दृष्टिहीनों की कठिनाई तथा आवश्यकता के अनुसार ये सुविधाएं अपर्याप्त भी हैं और इन्हें प्राप्त करना कठिन भी। अतः इस पर पुनः विचार आवश्यक है। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से त्रिस्तरीय समन्वयित प्रयास आवश्यक है। प्रयास केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा एन.जी.ओ. गैरशासकीय संस्थाओं द्वारा पूर्ण समन्वय के साथ होना आवश्यक है।

1. विकलांग अधिनियम 1995 के क्रियान्वयन में गति लाई जाए। इसके वर्तमान स्वरूप में संशोधन के बगैर इसका लाभ विकलांग दृष्टिहीन व्यक्तियों को नहीं मिल सकेगा। इस अधिनियम में गैर शासकीय संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी का समावेश होना चाहिए।
2. अधिनियम के अंतर्गत गठित प्रतिनिधि एवं प्रशासकीय समितियों में ग्रामीण अंचल की पूरी उपेक्षा है। इन समितियों का पुनर्गठन संशोधन के उपरांत किया जाए।
3. अधिनियम के अंतर्गत गठित क्रियान्वयन समिति का अध्यक्ष गैरशासकीय व्यक्ति को होना चाहिए।
4. एनजीओ का गठन 1860 के कानून सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के अंतर्गत किय जाता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस प्राचीन कानून में संशोधन पर विचार ही नहीं हुआ, तदनुसार एन.जी.ओ. का क्षेत्र भी दूषित हो गया है।
5. प्रधानमंत्रीजी द्वारा प्रायोजित न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत दृष्टिहीनों के पुनर्वास पर प्राथमिकता से ध्यान दिया जावे।
6. म.प्र. में दृष्टिहीन व्यक्तियों की Mobility के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया जावे।
7. दृष्टिहीनों को स्वावलंबी बनाने की दृष्टि से एक vocational training workshop की स्थापना की जावे।
8. दृष्टिहीनों को शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएं जैसे ब्रेल लिपी में पाठ्य पुस्तकें, शैक्षणिक सामग्री, केसेट्स इत्यादि निःशुल्क पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराई जाए।

9. पूरे राज्य में कम से कम 1-2 लघु उद्योग इकाई स्थापित की जावे जो केवल दृष्टिहीनों के लिए आवश्यक खेलकूद सामग्री बनाएं।

10. राज्य के प्रत्येक जिले में एक ब्लाइंड स्कूल की स्थापना की जाए।

11. प्रत्येक जिले में एक अल्प दृष्टि केन्द्र स्थापित किया जावे।

मानसिक विकलांगता परिदृश्य

मानसिक विकलांगता किसी देश, समाज या व्यक्ति की समस्या नहीं है। अपितु पुरी मानव जाति से संबंधित गंभीर समस्या है। इसका प्रभाव बच्चों के पालक (माता-पिता) पर सर्वाधिक होता है। प्रतिक्षण उन्हें एक ही बात काटती है, कि उनके बाद उनकी संतान का क्या होगा।

मानसिक विकलांगता दो रूप में देखी जा सकती है— मानसिक रोग या मस्तिष्क मंदता। मंदता में मानसिक विश्वास देरी से या धीमी गति से होता है। अतः संबंधित बच्चा अपनी आयु से बच्चों से पीछे रहता है और शारीरिक तथा मानसिक आयु में अंतर भी होता है। उसी प्रकार मानसिक रोग पीड़ित बच्चा सामान्य कार्य करने में असमर्थ होता है। सामान्य जनसंख्या का लगभग 4 प्रतिशत मानसिक विकलांग है। 1996 के एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की संख्या 30 करोड़ है— इसमें 90 लाख बच्चे मंदबुद्धि (मानसिक मंदता) से ग्रसित है। इतनी व्यापकता के बावजूद इस क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों, प्रशिक्षित व्यक्तियों, शैक्षणिक संस्थाओं के अतिरिक्त जानकारी का अभाव भी उतना ही व्यापक है। कार्यरत संस्थाओं में भी विशेषज्ञों, आपसी सामंजस्य का सर्वत्र अभाव है। फलस्वरूप समस्या के निराकरण के क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति नहीं हुई है और चिंतित अभिभावकों की स्थिति यथावत है।

भारत वर्ष में विकलांग व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति तथा उनकी शिक्षा एवं पुनर्वसन के प्रयास छुटपुट रूप से आदिकाल से होते आए हैं। सुनियोजित प्रयास की आधारशिला संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1982-92 के दशक को विकलांग दशक की संज्ञा देने से रखी गई है। मानसिक विकलांगता के क्षेत्र में भी प्रथम प्रशंसनीय प्रयास ठाकुर हरिप्रसाद मानसिक विकलांग अनुसंधान एवं पुनर्वास संस्थान द्वारा (2 फरवरी से 5 फरवरी 1987) राष्ट्रीय पद्धति बनाने हेतु आयोजित अखिल भारतीय संगोष्ठी से प्रारंभ हुआ

है। यह एक ऐतिहासिक आयोजन माना जाता है। इस संगोष्ठी, में मानसिक बच्चों के अभिभावकों, वैज्ञानिकों, व्यवसायियों, क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों, पद्धति के योजनाकारों, योजना आयोग, कल्याण तथा अन्य मंत्रालयों एवं राज्य सरकारों के संबंधित प्रतिनिधियों ने भाग लेकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। एक रपट तैयार कर 14 जनवरी 1988 को (राष्ट्रीयपद्धति रिपोर्ट) तत्कालिन प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी को प्रस्तुत की थी। त्वरित कार्यवाही करते हुए श्री राजीव गांधी ने न्यायमूर्ति बह्रूल्ल इस्लाम की अध्यक्षता में एक समिति गठित कर एक नई दिशा दी थी जिसके आशातीत परिणाम भी निकले, विधि निर्माण की सिफारिश की गई, आठवीं पंचवर्षीय योजना में पहली बार विकलांगों के लिए कार्यकारी दल बनाया गया, अर्न्त मंत्रालय समिति का गठन किया गया, पुनर्वास परिषद का सविधिकरण भी हुआ जो जनशक्ति विकास से संबंधित समस्त कार्य कर रही है। मानसिक विकलांगों के कल्याण तथा उनके अभिभावकों की चिन्ता निवारण हेतु एक राष्ट्रीय ट्रस्ट स्थापित किया गया जिसके 4 कार्यक्षेत्र भी निर्धारित किए गए हैं। 1993-94 में परिवारों को सशक्त बनाने हेतु एक बहु केन्द्रीय परियोजना भी तैयार की गई है। मानसिक विकलांगता निवारण हेतु प्रयासों को गति देने का प्रयास अधिनियम 1995 में मेंटल रिटार्डेशन तथा मेंटल इलनेस के समावेश द्वारा किया गया।

शासकीय स्तर पर कई रियायतें जैसे माता-पिता को आयकर में छुट, निशल्क उपकरण वितरण व्यवस्था, रोजगार में आरक्षण, रेल्वें किराए में रियायत, छात्रवृत्ति, छात्रावास, स्वरोजगार तथा प्रशिक्षण तथा अन्य कई सुविधाओं का प्रावधान है।

मानसिक विकलांगता निवारण की मौलिक आवश्यकता प्रशिक्षित व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या में निहित है। राष्ट्रीय पुनर्वसन परिषद के अनुसार पूरे देश में इस क्षेत्र की 45 संस्थान कार्यरत है। जिनमें 40 संस्थानों में

प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है। मध्यप्रदेश में केवल एक ही संस्थान उपलब्ध है। इस क्षेत्र के प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या 5116 है, जिनमें से डिग्री तथा डिप्लोमाधारी क्रमशः 194 तथा 3992 हैं। समस्या की विकरालता निवारण हेतु दसवी पंचवर्षीय योजना में 39000 व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता होगी जिस पर 58 करोड़ रुपये का व्यय अनुमानित है। उपरोक्त स्थिति से स्पष्ट है कि युद्ध स्तरीय प्रयास तथा जन-भागीदारी के बगैर समस्या का निराकरण संभव नहीं है। निराकरण के अतिरिक्त रोकथाम की ओर ध्यान भी उतना ही आवश्यक है।

इस वातावरण तथा विषम स्थिति पर विचारोपरांत कई बिन्दु उभरते हैं जैसे -

01. उपलब्ध सुविधाओं की जानकारी कितने लोगों को है।
02. क्या सुविधा प्राप्त करना सरल है।
03. क्या सुविधाएँ पर्याप्त है।
04. लाभान्वित हितग्राहियों की संख्या कितनी है।
05. समस्या निराकरण के उपाय क्या हो सकते हैं।

मेरे मत में पूर्वाग्रहों को छोड़कर भविष्य के कार्य की रूपरेखा की ओर ध्यान देना अधिक सार्थक तथा उपयोगी होगा। प्रत्येक बिन्दु का महत्व एक सा है। अतः सारी दिशाओं में सुनियोजित रूप से एक साथ कार्य प्रारंभ किया जाना चाहिए।

मानसिक मंद व्यक्तियों में अर्थ पूर्ण कार्य करने की क्षमता होती है। उचित प्रशिक्षण तकनीकों के द्वारा अपेक्षाकृत अत्यधिक मानसिक मंद व्यक्ति भी सीख सकते हैं और वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं जिससे उनकी कमाई हो सके और अर्थ पूर्ण व्यवसाय मिल सके। यह लक्ष्य विशेष स्कूल तथा रोजगारोन्मुख प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना से प्राप्त हो सकता है।

उसी प्रकार मानसिक मंद व्यक्ति को समान अवसर देने के लिए और उनके शिक्षण, प्रशिक्षण एवं रोजगार के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए समाविष्ट विधान की आवश्यकता है। वर्तमान विधान मानसिक मंद व्यक्तियों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता है। वर्तमान सुविधाओं की जानकारी उपलब्ध कराने हेतु जिलेवार कार्य योजना बनाना चाहिए। अगर हमारी पंचायती राज व्यवस्था सफल है, तो क्यों न यह कार्य उन्हें दिया जावे, जिसकी समीक्षा भी राज्य के बाहर के विशेषज्ञ दल द्वारा समय-समय पर की जावे।

वर्तमान में सुविधाएं विस्तार के विचार को स्थगित रखकर उपलब्ध सुविधाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया के सरलीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की पैरवी करता हूँ, क्योंकि आज की कार्यप्रणाली के अंतर्गत सुविधाएं प्राप्त करना ही एक जटिलतम समस्या है इसके लिए नजराने की भी आवश्यकता होती है। नौकरशाही को इससे दूर रखना श्रेष्ठकर होगा। वरिष्ठ नागरिक इसको सक्षमता से अंजाम दे सकते हैं। उनके अनुभव का इससे अच्छा उपयोग नहीं हो सकता है। देश में आज भी व्यापारिक संगठन तथा उद्योगपति इस प्रकार के कार्य में विशेष रूचि रखते हैं। खेद है कि इस वर्ग का आज तक दोहन नहीं किया गया। औद्योगिक संगठनों के साथ समूह चर्चा आयोजित करने से आशातीत परिणाम निकल सकते हैं, मैं तो निःसंकोच कहना चाहूंगा कि मानसिक विकलांगता के वर्तमान परिदृश्य को बदलने का इससे अच्छा कोई माध्यम ही नहीं हो सकता है।

जन शक्ति विकास एक अनिवार्यता है। अतः प्रत्येक राज्य में एक क्षेत्रीय संस्थान स्थापित करने से इस दिशा में अपेक्षित परिणाम की ओर अल्प समय में ही अग्रसर हो सकते हैं। हैदराबाद स्थित राष्ट्रीय संस्थान को यह उत्तरदायित्व दिया जा सकता है। इस संस्थान को विस्तार कार्यक्रम के अंतर्गत यह कार्य करना चाहिए।

मानसिक विकलांगता निवारण के लिए स्वयंसेवी संगठन अच्छा माध्यम है। मानसिक विकलांग बच्चों की आवश्यकताएं अनन्य हैं। इसी प्रकार परिवार की भी है। अभिभावक अपने बच्चे के बारे में सही समय पर सही जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। यह कार्य चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, अध्यापक या सामाजिक कार्यकर्ताओं का एक समूह कर सकता है। ऐसी समूह दल प्रथा अभी स्थापित नहीं हुई है। इस कार्य के लिए स्वयंसेवी संगठन एक सशक्त माध्यम हो सकता है। रोकथाम के उपाय भी अनेक हैं। प्रमुख रूप से नजदीकी रिश्तेदारों में विवाह तथा 18 वर्ष से कम आयु से पूर्व गर्भधारण प्रतिबंधित होना चाहिए। गर्भधारण के विचार तथा निश्चय के पूर्व विशेष परिस्थिति जैसे बार-बार गर्भपात, गर्भधारण में कठिनाई, परिवार में जन्मजात कमी (बर्थ डिफेक्ट) मधुमेह तथा आर.एच. निगेटिव ब्लड ग्रुप की स्थिति में चिकित्सक का मार्गदर्शन आवश्यक है। गर्भधारण करने की आयु के पूर्व प्रत्येक महिला को रूबेला के लिए प्रतिरोधात्मक टीका लगवाना चाहिए। गर्भावस्था, प्रसव के समय तथा नवजात शिशुओं में विशेष ध्यान देने से भी मानसिक विकलांगता की रोकथाम हो सकती है। अतः सुधार, सामंजस्य, सहयोग, विशेषज्ञता तथा विस्तार की क्रिया अपनाना आवश्यक है और समस्या निराकरण की कुंजी भी है। आवश्यकता है इमानदार प्रयासों की, जिनके प्रारंभ होने की प्रतीक्षा है ईश्वर से प्रार्थना भी है।

मानसिक विकलांग व्यक्तियों के कल्याण हेतु नेशनल ट्रस्ट

डॉ. एम.सी. नाहटा

भारतवर्ष में निशक्त व्यक्तियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। वर्तमान में यह संख्या 10 करोड़ अनुमानित है। मानसिक विकलांग व्यक्तियों की संख्या सर्वाधिक है। निशक्त व्यक्तियों के कल्याण तथा संरक्षण हेतु विभिन्न अधिनियम बनाए गए हैं। पूर्व में मानसिक विकलांग व्यक्ति के उपचार तथा देखरेख हेतु 1912 में लुनेसी एक्ट पारित हुआ था। किन्तु इस वर्ग की अधिक संख्या, भिन्न स्थिति, समाज के परिवर्तित दृष्टिकोण तथा अन्य कारणों से 1987 में इस वर्ग के लिए स्वास्थ्य अधिनियम तथा कल्याण हेतु 1999 राष्ट्रीय न्यास अधिनियम बनाया गया है जो कि आटिज्म, प्रमस्तिष्क, अंगघात, मानसिक मंदता तथा बहु विकलांगता ग्रस्त व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करता है तथा पुनर्वसन एवं कल्याणकारी कार्य करने के निर्देश देता है। इन प्रयासों तथा विधिक कार्यों से समय-समय पर संबंधित विषय पर उठते कई प्रश्नों के उत्तर भी ढूंढे जा सकते हैं जैसे— क्या मानसिक रूप से विकलांग व्यक्ति का कोई विधिक अधिकार है, क्या कानून के अन्तर्गत इस वर्ग को सामान्य वर्ग के समकक्ष माना गया है, क्या उन्हें कानूनी तथा अन्य संरक्षण प्राप्त है इत्यादि।

भारत का संविधान भी सामान्य तथा मानसिक विकलांग सहित अन्य सभी विकलांग व्यक्तियों को समान होने का संरक्षण प्रदान करता है। संविधान के विभिन्न अनुच्छेद 14, 15(1), 15(2), 17, 21, 23, 24, 25, 32, 29(2) तथा 47 के अंतर्गत व्यवस्था उपलब्ध है।

1999 के अधिनियम पारित होने के पश्चात मानसिक विकलांग व्यक्तियों के कल्याण हेतु एक नया तथा उत्साहवर्धक वातावरण निर्मित हो

रहा है। सरकार तथा स्वयंसेवी संगठनों की सक्रियता भी बढ़ी है। इस क्षेत्र के कार्यों को नई दिशा भी मिलने लगी है। परिणामस्वरूप संबंधित पक्षों को एक चुनौती मिली है। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय एक आंदोलन रूपी वातावरण तथा सकारात्मक कार्यों द्वारा मानसिक विकलांगों की सुरक्षा, परवाह तथा समावेश का प्रयास करना चाहता है। राष्ट्रीय न्यास कर्तव्य मानते हुए प्रयासरत है कि समाज में ऐसा परिवर्तन लावे, जो कि व्यापक होने के साथ ही मुख्य धारा से जोड़े तथा गुणवत्ता, समानता, न्यायोचित तथा गरिमापूर्ण जीवनयापन करने का अपेक्षित वातावरण निर्मित कर सके। इस परिवर्तन से यह वर्ग समाज की सामाजिक, आर्थिक तथा भावनात्मक गतिविधियों का अंग बन सकता है।

इन मौलिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय न्यास मानसिक विकलांग व्यक्तियों को प्रशिक्षण, आय, सामाजिक समावेश, परिवारों के सशक्तिकरण, भावनात्मक, शारीरिक तथा सूचनात्मक अवरोधों को दूर करने तथा उपलब्ध संभवतया Affordable कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने हेतु प्रयासरत हैं। राष्ट्रीय न्यास के कार्यों की अवधारणा जनजागरण पर आधारित है। इस आधार पर इस वर्ग की संख्या, उपलब्ध सुविधाएं, भविष्य की आवश्यकताओं, कठिनाइयों के निराकरण के उपायों तथा अन्य संबंधित विषयों से अवगत कराने हेतु प्रचार सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित कर समाज के विभिन्न वर्गों को इस क्षेत्र से जुड़ने हेतु प्रेरित करना चाहता है - सफलता समाज विशेष रूप से स्वयंसेवी संगठनों के सहयोग से ही संभव है। राष्ट्रीय न्यास मूल से विकलांग व्यक्ति तथा उसके परिवार स्वयंसेवी संगठनों तथा सुसंस्कृत समाज के बीच हिस्सेदारी चाहता है यह एक पवित्र विचार है। प्राप्ति हेतु स्वयंसहायता समूह, जिला स्तरीय संगठन, सूचना प्रणाली, निभ सकने वाली सेवाएं Network and Multisectorial linkages

जैसी प्राणालियों को विकसति कर इस वर्ग को मुख्य धारा के विकास कार्यों से जोड़ना चाहता है - मेरे मत में समाज के विशिष्ट वर्ग, क्षेत्र के विशेषज्ञ तथा रूचि रखने वाले व्यक्ति एवं संबंधित परिवारों के सहयोग के बगैर सफलता प्राप्त करने में कठिनाई होगी।

100 करोड़ की पूंजी से 1999 अधिनियम के अंतर्गत गठित राष्ट्रीय न्यास में अध्यक्ष के अतिरिक्त 20 सदस्यों का प्रावधान है, 3 सदस्य स्वयंसेवी संगठनों, 3 सदस्य मानसिक विकलांग व्यक्तियों के पालकों के संगठनों तथा 3 सदस्य विकलांगता से संबंधित संगठनों के प्रतिनिधि होते हैं। 8 सदस्य निर्धारित मंत्रालयों के संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारी तथा 3 सदस्य उद्योग तथा वाणिज्य क्षेत्र के न्यास द्वारा मनोनीत सदस्य होते हैं। न्यास की बैठक कम से कम 3 माह में एक बार होना अनिवार्य है। सुव्यवस्थित संचालन के लिए नियम तथा उपनियम भी बनाए गए हैं।

राष्ट्रीय न्यास ने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु वृहद कार्य योजना के अंतर्गत कार्यक्रम भी बनाया है। पंजीकृत संगठनों को वित्तीय सहायता देने का प्रावधान भी किया गया है। एक योजना के अंतर्गत राहत संस्था स्थापित करने का तथा दूसरी योजना के अंतर्गत Caregivers को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है।

राष्ट्रीय न्यास कार्यक्रमों को अमलीजामा पहनाने, उद्देश्यों की प्राप्ति तथा मानसिक विकलांग व्यक्ति के कल्याण तथा पुनर्वसन हेतु स्थानीय स्तर की समितियां गठित करने का प्रावधान भी रखा गया है। स्थानीय समिति में तीन सदस्य होते हैं और अध्यक्ष का भार जिलाधीश को दिया गया है। समिति का कार्यकाल भी 3 वर्ष है। समिति की बैठक तीन माह में एक बार करने की अनिवार्यता है। मध्यप्रदेश में अगस्त 2002 तक 37 समितियां गठित हो चुकी हैं। निःशक्त व्यक्ति के संरक्षण हेतु पालक-संरक्षक

नियुक्त करने की भी व्यवस्था की गई है। सारे कार्य निर्धारित प्रक्रिया के अंदर करना आवश्यक माना गया है।

देश की वर्तमान दूषित स्थिति में मानसिक विकलांग व्यक्तियों की समस्याओं के निराकरण तथा कल्याण एवं पुनर्वसन हेतु देश के प्रबुद्ध वर्ग, वरिष्ठ नागरिकों, बुद्धिजीवी, क्षेत्र के विशेषज्ञों तथा उद्योगपतियों के विशेष सहयोग की आवश्यकता है। स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आवश्यकता है कि एक ऐसा संगठन बनाया जावे, जिसकी शाखाएं जिला स्तर पर स्थापित हो सके, ताकि उपेक्षित ग्रामीण तथा आदिवासी अंचल के मानसिक विकलांग व्यक्तियों की समस्याओं का भी निराकरण हो सके। मानसिक रूप से विकलांग महिलाओं की स्थिति दयनीय तथा भयानक है। समाज तथा क्षेत्र के सक्रिय संगठनों से अनुरोध है कि एक परिचर्चा के माध्यम से एक नई दिशा देने का प्रयास करें।

सेरीब्रल पाल्सी से होती हैं भयानक विकलांगता

विकलांगता एक विश्व व्यापी समस्या है। विश्व स्वास्थ्य संघ के अनुसार पूरे विश्व की 10 प्रतिशत जनसंख्या विकलांग है। इतना बड़ा समुदाय राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र से उपेक्षित हैं। अतः अलग-अलग स्तर पर इस मानवीय समस्या के निराकरण के प्रयास सतत किए जा रहे हैं। इन प्रयासों में भारतीय संसद द्वारा पारित विकलांग अधिनियम 1995 सर्वाधिक प्रशंसनीय माना जा सकता है। स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका भी कम नहीं है। अंधत्व, कमजोर नजर, कोड, मूक बधिर, बाहन की चोट से विकलांगता, मानसिक रोग एवं मस्तिष्क की मन्दता को विकलांग अधिनियम 1995 के अंतर्गत परिभाषित किया गया है।

विकलांगता आयु, लिंग या अन्य किसी आधार पर नहीं होती है। विभिन्न प्रकार की विकलांगता अलग-अलग आयु समूह में देखी जा सकती है। नवजात शिशु भी इसका अपवाद नहीं है। वैसे तो नवजात शिशु में अनेक प्रकार के रोग होते हैं किन्तु (सेरीब्रल पाल्सी) को सर्वाधिक खतरनाक तथा पीड़ादायक माना जाता है। वर्तमान में इस रोग के बढ़ते प्रतिशत से समाज तथा चिकित्सा क्षेत्र के विशेषज्ञ विशेष रूप से स्त्री तथा शिशु रोग विशेषज्ञ चिन्तीत है। फिर भी इस रोग की रोकथाम निदान तथा रोगी के पुनर्वसन के लिए समुचित प्रयास नहीं किए गए हैं।

सेरीब्रल पाल्सी किसी भी देश, समाज या परिवार में हो सकती है। अनुमानतः प्रति 300 जन्में बच्चों में से एक इस विकलांगता का शिकार होता है। उपचार, विशेष शिक्षा तथा तकनीक द्वारा प्रभावित बच्चों को उत्पादक जीवन जीने योग्य बनाया जा सकता है। सेरीब्रल पाल्सी एक ऐसा रोग है जो जन्मजात होता है। इस रोग की विशेषता है कि शिशु की बढ़ती आयु के साथ-साथ प्रभावित बच्चे में बौद्धिक मानसिक और शारीरिक

विकलांगता विकसित होने लगती है। 1999-2000 में प्रकाशित एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार इस रोग का प्रतिशत जन्म के समय कम वजन वाले बच्चों में अधिक होता है—

जन्म के समय वजन	प्रभावित बच्चों की संख्या प्रतिशत
1500 ग्राम से कम	10 प्रतिशत
1500-2500 ग्राम तक	प्रति एक हजार — 25
2500 ग्राम से अधिक	प्रति एक हजार — 04

इस रोग के अनेक कारण हैं जिनमें प्रमुख हैं—

1. गर्भावस्था के दौरान सही पोषण की कमी के कारण शरीर तथा मस्तिष्क का ठीक ढंग से विकसित नहीं होना।
2. गर्भावस्था के समय सिर पर चोट तथा आघात।
3. गर्भवती महिला द्वारा शराब, तम्बाकू, कोकीन तथा अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन।
4. गर्भवती महिला को एच.आई.वी. का संक्रमण।
5. जननिक, गुणसूत्र तथा मस्तिष्क को आवश्यकता से कम खून की प्राप्ति से भी होती है।
6. गर्भवती महिला को न्यूमोनिया, थायरॉइड, मधुमेह, हृदय तथा फेफड़े के रोग होने से मस्तिष्क का विकास अवरूद्ध हो जाता है जिसकी परिणति सेरीब्रल पाल्सी के रूप में होती है।
7. प्रसव के पूर्व या प्रसव के समय जटिलता प्रसवकाल लम्बा होने, बच्चे के नीला पड़ने, देर से रोने के कारण भी यह रोग हो सकता है।
8. गर्भ झिल्ली के सांस में चले जाने से भी यह रोग हो सकता है।

9. क्रोमोसम की असामान्यता, जननिक तथा मस्तिष्क को आवश्यकता से कम खून की प्राप्ति रोग के महत्वपूर्ण कारणों में से है।

इस रोग के लक्षण तीन माह से ही दिखने लगते हैं। एक सामान्य शिशु तीन माह की आयु में करवट लेने लगता है, छः माह की आयु में बैठने लगता है और एक वर्ष की आयु में चलने लगता है जबकि सेरीब्रल पाल्सी का रोगी उपरोक्त क्रियाएं न केवल देर से शुरू करता है वरन् सामान्य रूप से कर भी नहीं पाता है।

प्रायः देखा गया है कि इस रोग की तुलना पोलियो रोग से की जाती है जो कि वास्तविकता नहीं है। सेरीब्रल पाल्सी तथा पोलियो भिन्न-भिन्न रोग हैं। पोलियो रोग में मांस-पेशियां कमजोर होने के कारण विकलांगता होती है जबकि इसके विपरित सेरीब्रल पाल्सी में मांस-पेशियों अत्यधिक तनाव या जकड़न होने से विकलांगता होती है।

दुखदः स्थिति है कि इस रोग के शिकार बच्चे आयु के प्रथम वर्ष में टांगों का सही संतुलन रखने में कठिनाई महसूस करते हैं। नतीजन उनका चलना, बैठना और खड़ा होना ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। अतः बच्चा यदि नौ माह की आयु तक बैठ नहीं पाता और डेढ़ वर्ष की आयु तक चलना शुरू ना करे तो सेरीब्रल पाल्सी का संदेह होना स्वाभाविक है। इस रोग से पीड़ित बच्चों के शरीर में असामान्य सी जकड़न आ जाती है। बच्चा चाहकर भी हाथ-पैरों को ठीक ढंग से हिला नहीं पाता, मांसपेशियां अनियंत्रित रहती हैं। फलस्वरूप हाथ-पैरों पर नियंत्रण नहीं रहता और समस्त शारीरिक गतिविधियां असंतुलित और बेढगीं होती है। कुछ समय के पश्चात ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि बच्चे के हाथ-पैर लकड़ी की तरह अकड़ जाएं क्योंकि मांसपेशियां एकदम काम करना भी बंद कर सकती हैं। फलस्वरूप कोहनियां मुड़ जाती हैं, अंगुठा हथेली के अंदर आ जाता है

और हाथों से कोई भी काम करना संभव नहीं रह जाता है। इसी तरह धड़ के नीचे के भाग में अकड़न के कारण कुल्हे, घुटने, एड़ियां प्रभावित हो जाती हैं। रोगी का एक कदम भी चलना संभव नहीं होता। चेहरे, मुंह और बोलने से संबंधित मांसपेशियों में नियंत्रण में कमी के कारण मानसिक क्षमताओं में कमी अधिक प्रतीत होती है। इस भयानक विकलांगता का प्रभाव न केवल शिशु पर पड़ता है, सत्यता है कि इससे परिवार तथा पूरा समाज प्रभावित होता है। इसकी रोकथाम के लिए विशेष प्रयास आवश्यक हैं। इस प्रकार के समन्वित प्रयासों में स्त्री तथा शिशु रोग विशेषज्ञों के अतिरिक्त विशेष रूप से प्रशिक्षित फिजियोथेरापिस्ट तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के युद्ध स्तरीय प्रयासों से इस इस विभत्सीय विकलांगता को नियंत्रित किया जा सकता है तथा पुनर्वसन भी संभव है।

वर्तमान चिकित्सीय ज्ञान तथा व्यवस्था के अंतर्गत इस रोग का उपचार संभव नहीं है। इस स्थिति के कारण रोकथाम तथा पुनर्वसन उपाय ही कारगर भूमिका निभा सकते हैं। चूंकि मूलरूप से इस रोग की उत्पत्ति गर्भावस्था में ही होती है इसलिए गर्भवती महिलाओं को रोग तथा बचाव की जानकारी उपलब्ध कराने से रोकथाम में सफलता का प्रतिशत अप्रत्याशित रूप से बढ़ सकता है।

सेरीब्रल पाल्सी के कारणों के विश्लेषण से भी स्पष्ट है कि गर्भवती महिला की समुचित देखभाल से इस रोग के प्रतिशत को कम किया जा सकता है। शासकीय स्तर पर गर्भवती महिलाओं की देखभाल के कार्यक्रम क्रियाशील है किन्तु इनके प्रति गंभीरता तथा विश्वास की कमी के कारण समस्या अनियंत्रित है।

रोकथाम के उपायों के साथ इस रोग के रोगी का पुनर्वसन भी उतना ही आवश्यक है तथा महत्वपूर्ण भी। पुनर्वसन कार्य में शिशु रोग, नेत्र, कान, नाक, गला, हड्डीरोग विशेषज्ञों के अतिरिक्त स्पीच थेरेपिस्ट सायको

थेरेपिस्ट तथा फिजियो थेरापिस्ट के योगदान तथा भागीदारी के बगैर पूनर्वसन कार्य सफल नहीं हो सकता है।

स्पष्ट है कि यह कार्य व्यक्ति विशेष नहीं वरन् एक समूह के समन्वित प्रयासों से ही संभव है जिनकी नितांत कमी है। वर्तमान में इस प्रकार के क्षेत्र में कार्यरत केन्द्र देश के कुछ ही चुनिन्दा स्थानों पर उपलब्ध है जिनमें प्रमुख है— मुम्बई का वरली स्थित (स्पास्टीक सोसायटी) पूना, बैंगलोर तथा भोपाल स्थित आशा निकेतन जहां पहुंचना एक सामान्य व्यक्ति की क्षमता के बाहर है। अतः प्रत्येक राज्य में समाज कल्याण तथा स्वास्थ्य विभाग द्वारा एक सेरीब्रल पाल्सी निरोधक तथा पूनर्वसन केन्द्र की स्थापना से समस्या की विकरालता को कम किया जा सकता है। इस प्रकार के केन्द्र का संचालन स्वयंसेवी संगठनों में विषय के जानकार, विशेषज्ञों एवं पीड़ित बच्चों के माता-पिता का सम्मिलित होना आवश्यक है। अन्यथा इस संगठन का हथ्र भी विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत संगठनों जैसा हो जाएगा जो न तो वर्तमान समाज न ही सरकार का उद्देश्य है।

ध्वनि प्रदूषण और श्रवण क्षमता

डॉ. एम.सी. नाहटा

ध्वनि प्रदूषण ने गंभीर समस्या का रूप धारण कर लिया है तथा आधुनिक जीवन प्रणाली ने इसे अत्यधिक विषमता का रूप दे दिया है। ध्वनि प्रदूषण एक ऐसी समस्या है जो कि छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, शिक्षित, अनपढ़ महिला-पुरुष सब श्रेणी के व्यक्तियों को समान रूप से प्रभावित करती है। 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों पर इसका प्रभाव अधिक होता है जिसके गंभीर तथा दूरगामी परिणाम होते हैं। मुख्य रूप से ध्वनि प्रदूषण का कुप्रभाव श्रवण शक्ति पर होता है। श्रवण शक्ति कम होती है, समाप्त भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की शारीरिक व्याधियों को भी ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करता है। गहन विचार-विमर्श तथा चिंतन के अभाव में रोकथाम के पर्याप्त उपाय आज तक नहीं हो पाए हैं।

एक सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के रहवासी बालकों में 33 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्र के 6 प्रतिशत बच्चे श्रवणबाधित हैं। एक अन्य स्वयंसेवी संगठन श्रवण अन्तरराष्ट्रीय के अनुसार 10 वर्ष से कम आयु वर्ग के बालकों में कान की बीमारी-ओटाइटीस मीडिया 10 प्रतिशत बच्चों में पाई जाती है और प्रति 1000 जीवित जन्मे बच्चों में से 4 में श्रवणशक्ति अत्यधिक कम मिलती है।

श्रवणशक्ति कम होने के अनेक कारण हैं - ध्वनि प्रदूषण इनमें अग्रिम स्थान पर है। बढ़ती आयु, कान रोग, ओटाइटीस मीडिया तथा ओटोटाक्सिक श्रेणी की औषधियां भी श्रवण शक्ति को कम करती हैं।

बार-बार, लगातार उच्च स्तरीय ध्वनि (हाई लेवल) से प्रभावित व्यक्तियों में श्रवणशक्ति कम होने का खतरा अधिक होता है। इस प्रकार के ध्वनि प्रदूषण के स्थानों में कतिपय उद्योग, सार्वजनिक तथा निजी आमोद-

प्रमोद के स्थान, ऐसे स्थान जहां विस्फोट तथा गोलाबारी प्रायः होते रहते हैं सम्मिलित है। शोर श्रवण यंत्र के संवेदी कोषाणू को यांत्रिक क्रिया (मेकेनिकल एक्शन) द्वारा, खून कम मात्रा में प्राप्त होने के कारण एवं संवेदी कोषाणू का प्रेवश क्षमता कम हो जाने के परिणाम स्वरूप श्रवणक्षमता को कम करते हैं। चूंकि ध्वनि प्रदूषण द्वारा कम की गई श्रवणशक्ति को वापस नहीं लाया जा सकता है इसलिए रोकथाम के प्रयास ही सार्थक तथा उपयोगी होते हैं।

श्रवण क्षमता एक महत्वपूर्ण संवेदना है जो मनुष्य को प्राप्त प्राकृतिक देन है। यह भी एक स्थापित तथ्य है कि श्रवण विकलांगता दिखती नहीं है जो कि व्यक्ति विशेष को अधिक विकलांग बनाती है। यह जानना सामयिक होगा कि मनुष्य की श्रवणक्षमता 20 हर्ट्ज से 2000 हर्ट्ज तक की आवाज सुनने में सहायता करती है।

हमारी श्रवण यंत्रणा पद्धति ध्वनिक को उसकी तीव्रता तथा बारम्बारिता के अनुसार सुनने के लिए प्रेरक बनकर परिवर्तित करती है। हमारी श्रवण व्यवस्था संवदेशनशील है जो कि प्रत्येक आवाज की तीव्रता और बारम्बारिता को कम ज्यादापन के कारण तथा प्रेरक इच्छित और कौन से अनिश्चित है उसके बारे में जानकारी रखती है। फलस्वरूप अनिश्चित ध्वनि की ओर ध्यान न देने में सहायता करती है। इस प्रक्रिया को स्केवलच इफेक्ट कहते हैं। दोनों कानों से श्रवण करने की विशेषता होने के कारण आवाज की तरफ न देखने पर भी हम आवाज के स्रोतों को निर्धारण कर सकते हैं।

ध्वनि प्रदूषण के परिदृश्य को समझने के लिए इसे व्याखित करना आवश्यक है- जो कि सरल नहीं है क्योंकि ध्वनि प्रदूषण अन्य प्रदूषणों से भिन्न है। अतः किसी भी अप्रिय, प्रतिकूल ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण की संज्ञा

दी जाती है। शोर हमेशा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तथा कल्याण में बाधक होता है अतः इस पर समग्र रूप से विचार आवश्यक है।

इस विषय से संबंधित बिन्दू उभरता है कि क्या शोर को नापा जा सकता है। सतही तौर पर इसका उत्तर नकारात्मक दिखता है जो कि सत्यता से परे है। शोर की तीव्रता को नापना संभव है और इसकी इकाई को डिसीबल कहते हैं। ध्वनि विशेष प्रकार के उपकरण—

1. साउंड लेवल मीटर वीथ अप्रोप्रिएट वेटिंग नेटवर्क
2. नाइज डोज मीटर्स से नापा जा सकता है।

इससे जुड़ा हुआ एक अन्य बिन्दू भी है— स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने के लिए ध्वनि को कितनी उंची कोलाहलपूर्ण होना चाहिए। शोर श्रवणशक्ति को कम करता है यहां तक की उसे समाप्त भी कर देता है। यह विषमता एक दिन में उत्पन्न नहीं होती। लंबे समय तक शोरगुल से प्रभावित व्यक्ति श्रवण बाधित विकलांग होता है। यह बताना संभव नहीं है कि इसके लिए कितनी तीव्रता आवश्यक है फिर भी उपलब्ध जानकारी के अनुसार 45 डेसीबल शोर के वातावरण में नींद नहीं आ सकती है, 120 डेसीबल शोर कान में दर्द पैदा करता है और 85 डेसीबल से श्रवणशक्ति कम होना आरंभ हो जाती है। श्रवणशक्ति की क्षति का शोर से सीधा संबंध है जो कि शनैः शनैः बढ़ती जाती है।

अब प्रश्न उभरता है कि क्या शोर को नापा जा सकता है। सतही तौर पर इसका उत्तर नकारात्मक दिखता है लेकिन ऐसा है नहीं। शोर की तीव्रता को नापना संभव है और इसकी इकाई को डेसीबल कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होने के लिये ध्वनि को कितनी ऊंची कोलाहापूर्ण होना चाहिये। शोर श्रवण शक्ति को कम करता है। यहां तक की उसे समाप्त भी कर देता है। यह विषमता एक दिन में उत्पन्न नहीं होती। लम्बे समय तक शोरगुल से प्रभावित व्यक्ति श्रवण बाधित विकलांग

होता है। यह बताना संभव नहीं है कि इसके लिये कितनी तीव्रता आवश्यक है, फिर भी उपलब्ध जानकारी के अनुसार 45 डेसीबल शोर के वातावरण में नींद नहीं आ सकती, 120 डेसीबल शोर कान में दर्द पैदा करता है और 85 डेसीबल में श्रवणशक्ति कम होना प्रारंभ हो जाती है। श्रवणशक्ति की क्षति का शोर से सीधा संबंध है जो कि शनैः-शनैः बढ़ती जाती है।

श्रवणबाधित विकलांगता के अलावा शोर की वजह से नींद में कमी, डर, चिड़चिड़ापन, अमलशूल, अपच-अजीर्ण, फोड़ा, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग आदि भी हो सकते हैं। कुछ व्यक्तियों में अंतस्त्राव तंत्रिका विज्ञानी तथा कार्डियो वेसकुलर क्रिया में भी परिवर्तन हो जाता है। शारीरिक घबराहट चिरकालीक हो जाती है। तनाव, गंभीर व्यग्रता तथा मानसिक बीमारी भी शोरगुल से हो सकते हैं। यहां तक की कभी-कभी संबंधित व्यक्ति आत्महत्या भी कर लेते हैं।

स्पष्ट है कि प्रदूषण को प्राथमिकता के आधार पर नियंत्रित किया जाना चाहिए और चूंकि नाइज नियंत्रित होने वाले पोल्युटन्ट की श्रेणी में आता है अतः नियंत्रण संभव है। दो स्तरीय प्रयास से मानवीय समस्या का निराकरण हो सकता है—

1. **श्रवण संधारण कार्यक्रम**—इस योजना के अंतर्गत, शोरगुल सर्वेक्षण के माध्यम से शोरगुल के स्थानों का पता लगाना, शोरगुल में घटाव लाना, श्रवणरक्षा तथा श्रवण रक्षक उपायों एवं साधनों का उपयोग तथा ध्वनि नियंत्रण संबंधी कानून का दृढ़ता से पालन करना—कराना।

2. **श्रवणबाधित विकलांगता की रोकथाम**—यह कार्य तीन स्तरीय होना चाहिए—

* **प्राथमिक**—इस प्रयास के अंतर्गत चलित इकाइयों के माध्यम से परीक्षण कर संक्रमण तथा उपलब्ध श्रवण शक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करना तथा कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना।

* सेकण्डरी—द्वितीय स्तर पर विशेषज्ञों द्वारा परीक्षण तथा सामान्य बीमारियों के उपचार के माध्यम से श्रवण शक्ति को कम होने से रोकना ।

* तृतीय—गंभीर स्तर की विषमताओं का उपचार तथा स्थायी रूप से समाप्त हुई श्रवण शक्ति वाले व्यक्तियों का पुनर्वसन तथा रोजगारोन्मुख व्यवसायों में प्रशिक्षण सुनिश्चित किया जाए ।

इतना बड़ा कार्य स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से ही किया जा सकता है । इसके लिए जन-जागरण को प्राथमिकता देनी होगी । देश में एक विकसित अलीयावरगंज राष्ट्रीय श्रवणबाधित संस्था मुंबई में कार्यरत है और उच्च स्तरीय कार्यों में संलग्न है । स्वयंसेवी संगठन इस संस्थान के साथ समन्वय स्थापित कर योजनाबद्ध रूप से कार्य करे तो— इस मानवीय विषमता को नियंत्रित किया जा सकता है । मुंबई स्थापित संस्थान सहयोग के लिए तत्पर रहती है और पूरे देश में कार्यशाला तथा प्रदर्शनी के माध्यम से जन-जागरण कार्यक्रम कार्यान्वित करने में सहयोग देती है । आवश्यकता है प्रबल इच्छा शक्ति की जो उपलब्ध तो है किन्तु अपेक्षित उपयोग प्रतिक्षारत है ।

वृद्धावस्था का रोग - आस्टीयो परोसीस

डॉ. एम.सी. नाहटा

शरीर तथा रोग के बीच सीधा संबंध है। जब तक शरीर रहेगा, रोग होते ही रहेंगे। कुछ रोग ऐसे होते हैं, जो प्रत्येक आयु में होते हैं और कुछ ऐसे रोग हैं, जो आयु आधारित होते हैं। आस्टीयोपरोसीस रोग वरिष्ठ नागरिक या वृद्धावस्था का रोग माना गया है। 75 वर्ष या इससे अधिक आयु के 50 प्रतिशत व्यक्ति इस रोग से प्रभावित होते हैं, जिसके प्रभाव से न केवल संबंधित व्यक्ति परेशान होता है, अपितु परिवारजन भी विभिन्न प्रकार की कठिनाइयां झेलने के लिए बाध्य होते हैं। आर्थिक कठिनाई उनमें प्रमुख हैं। अमेरिका जैसे विकसित देश में 50 वर्ष से अधिक आयु की दो में से एक महिला तथा आठ में से एक पुरुष इस रोग के फलस्वरूप हड्डी टूटने के शिकार होते हैं। इस तरह प्रतिवर्ष 15 लाख लोगों में कुल्हे, रीढ़ तथा कलाई को हड्डी टूटती है, जिससे देश पर 140 करोड़ का अतिरिक्त भार पड़ता है।

भारत के संदर्भ में एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिवर्ष 5 करोड़ लोग इस बीमारी से पीड़ित होते हैं। भारत के 28 राज्यों में से केवल दो ही प्रांत केरल तथा पंजाब हैं, जिसमें आस्टीयोपरोसीस कम मात्रा में होता है। चूंकि वहां के रहवासी कैल्शियम की अधिक मात्रा वाले भोजन तथा सी फुड को प्राथमिकता के आधार पर ग्रहण करते हैं। नेशनल मेडिकल जर्नल में प्रकाशित जानकारी के अनुसार सन 2005 तक भारत में 60 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों की संख्या 16.5 करोड़ हो जावेगी, जो कि देश की आबादी का 12 प्रतिशत होगा। स्मरण रहे कि 50 वर्ष से अधिक आयु के 50 प्रतिशत व्यक्ति आस्टीयोपरोसीस से पीड़ित हो सकते हैं। कुपोषण, अज्ञान तथा दैनिक जीवन में नियमित व्यायाम की कमी तथा उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत में भी इस रोग का प्रतिशत कम नहीं है और भविष्य में

इसकी बढ़ोत्तरी की संभावना को नकारा नहीं जा सकता है ।

भोजन में विटामिन डी की कमी तथा तम्बाकू एवं शराब का सेवन करने वाले व्यक्तियों में इस रोग का प्रतिशत अधिक होता है । मधुमेह की बीमारी भी इस रोग में सहायक की भूमिका निभाती है । इसके विपरीत विटामीन डी इस रोग के प्रतिशत को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । विटामीन डी को उत्पन्न होने में आवश्यक सूर्य प्रकाश तथा धूप भारत में प्रचुरता में उपलब्ध है, अतः विटामीन डी की कमी लगभग नहीं होती है ।

आस्टीयोपेरोसीस से तात्पर्य क्या है ? इस बीमारी में हड्डी पोरस-छिद्रिल हो जाती है । शरीर अस्थीपंजर (स्केलेटन) दुर्बल तथा कमजोर हो जाता है । परिणाम स्वरूप हड्डी टूटने की संभावना बढ़ जाती है, जिसे विभिन्न रूप से देखा जा सकता है । इसके प्रभाव तथा लक्षण प्रभावित हड्डी विशेष पर भी निर्भर करते हैं ।

रीड की हड्डी टूटने के परिणाम स्वरूप शारीरिक लंबाई में कमी के साथ दर्द तथा चिंता सतत बनी रहती है । स्वाभाविक रूप से आवश्यक कार्यों में कमी हो जाती है । विशेष प्रकार का शारीरिक झुकाव होता है । कभी-कभी तो फेफड़ो तथा उदर पर दबाव भी बन सकता है । कुल्हे की हड्डी टूटने के परिणामस्वरूप न केवल विकलांगता होती है, वरन जीवन भी खतरे में पड़ जाता है । यहां तक की 24 प्रतिशत व्यक्तियों की एक वर्ष की अविध में ही मृत्यु हो जाती है । आस्टीयोपेरोसीस एक ऐसा रोग है जो परिस्थितिजन्य तथा अनेक कारणों पर आधारित है । आयु, भोजन, आंतस्ताव (हारमोन) तथा जीवन प्रणाली संबंधी स्थितियां सामूहिक रूप से इसके लिए उत्तरदायी है । वैसे तो इस रोग को आयु आधारित रोग माना गया है, किंतु मूलतः यह केलिशियम की कमी से उत्पन्न होता है और बगैर दर्द के बढ़ता रहता है । इस रोग में सारे शरीर में विशेषकर पीठ में दर्द होता है, जिसे एक चेतावनी माना जाता है ।

महिला वर्ग में इस रोग का प्रतिशत अधिक होता है, इसके विशेष कारण हैं-

1. महिलाओं के अस्थिपंजर छोटा तथा पतला होना।
2. रजोनिवृत्ति के समय शरीर की एक ग्रंथी ओव्हरी के इस्टरोजन हारमोन की उत्पत्ति कम होना, जिसे हड्डी का संरक्षक माना जाता है। इसी महिला वर्ग में रजोनिवृत्ति के 5-10 वर्षों के समय हड्डी की क्षति अधिक होती है, जिसका प्रतिफल आस्टीओपेरोसीस के अधिक प्रतिशत के रूप में देखा जाता है।

यहां यह जानना भी सामायिक होगा कि 65-70 वर्ष की आयु में हड्डी का बनना तथा क्षति पुरुष तथा महिलाओं में समान होती है। अतः आस्टीओपेरोसीस का रोग भी इस आयु के दोनों वर्गों में समान होता है। इसके विपरित शिशु वर्ग में हड्डी का बनना क्षति से अधिक होने के कारण अस्थिपंजर का आकार तथा सघनता में बढ़ना है और 30 वर्ष की आयु के समय शिर्षस्थ पर पहुंच जाता है। 40 वर्ष की आयु के बाद हड्डी की क्षति प्रारंभ होती है। पुरुषों में यह क्षति प्रतिवर्ष एक प्रतिशत तथा महिलाओं में दुगुनी याने दो प्रतिशत प्रतिवर्ष होती है। महिलाओं में आस्टीओपेरोसीस रोग पुरुषों की तुलना में एक दशक पूर्व होता है। कैल्शियम की न्यूनतम आवश्यकता, उपलब्धता के स्रोत तथा अन्य बिंदुओं पर भी विचार करना सामायिक तथा उचित प्रतीत होता है—वैसे तो प्रामाणिक तोर पर कैल्शियम की न्यूनतम आवश्यकता के बारे में बताना संभव नहीं है, किंतु अमेरिका के एक संगठन अमेरिकन डायटेटिक एसोसिएशन के अनुसार 50 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति को 1200 मि. ग्राम कैल्शियम प्रतिदिन मिलना चाहिए, इस आयु वर्ग की महिलाओं में जो इस्टरोजन हारमोन का सेवन नहीं करती, कैल्शियम की प्रतिदिन आवश्यकता 1500 मि. ग्राम होती है, वैसे ही किशोरावस्था में लड़कों में 1000 मि. ग्राम तथा लड़कियों में

850 मि. ग्राम की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। इस अवस्था में पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम मिलने से आस्टीओपेरोसीस रोग देर से शुरू होता है।

शरीर में कैल्शियम प्रचुर मात्रा में होता है, जिसका 99 प्रतिशत दांत तथा अस्थिपंजर में रहता है। बचा हुआ एक प्रतिशत कैल्शियम खून का थक्का बनाने, नस की संचारण व्यवस्था तथा मांस की सुकड़न के कार्य करने में सहायक होता है। मनुष्य का शरीर खून में कैल्शियम की मात्रा को नियंत्रित करता है और आवश्यकतानुसार हड्डी से उपलब्ध कराता है।

कैल्शियम कई प्रकार के खाद्य पदार्थों में पाया जाता है। दुग्ध शाला में बने पदार्थ विशेषकर दूध में पर्याप्त मात्रा में होता है। हरी पत्ती वाली सब्जी, फूलगोभी, करमसाग, सार्दिन, सोया मिल्क, संतरे का रस, दाल, धान, चावल, गुड़, उड़द, मूंगफली की खली जैसे खाद्य पदार्थों में भी कैल्शियम पाया जाता है। कैल्शियम शरीर में समरस होने के लिए विटामिन डी आवश्यक है, जो कि सूर्य के प्रकाश-धूप से सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इसकी कमी भारत में कभी नहीं हो सकती है। इसके विपरीत उच्च रक्तचाप कैल्शियम के समरस होने में बाधक होता है। इस तथ्य को नजर अंदाज न करना ही उचित है।

खाद्य पदार्थों में कैल्शियम की उपलब्धता -

चरबी मुक्त सादा दही	एक कप	415 मि.ग्रा.
चरबी मुक्त फलदान दही	एक कप	354 मि.ग्रा.
रोमानो चीज	एक ओंस	300-400 मि.ग्रा.
चरबी मुक्त दूध	एक कप	300 मि.ग्रा.
चरबीवाला दूध (2 प्रतिशत)	एक कप	295 मि.ग्रा.
सम्पूर्ण दूध	एक कप	290 मि.ग्रा.
कैल्शियम फोर्टीफाइड रस	एक कप	290 मि.ग्रा.
केन्ड सारडीन्स बोन के साथ	3 ओंस	260 मि.ग्रा.

इनस्टैंड ओटमील	3 ओंस	165 मि.ग्रा.
ब्रोकोलो	एक कप	80 मि.ग्रा.
मुंगफली की खली	100 ग्राम	293 मि.ग्रा.
सहजन की पत्ती	100 ग्राम	440 मि.ग्रा.
चने का साग	100 ग्राम	395 मि.ग्रा.
मैथी का साग	100 ग्राम	395 मि.ग्रा.
गाजर की पत्ती	100 ग्राम	340 मि.ग्रा.
उडद की छिलके युक्त दाल	100 ग्राम	154 मि.ग्रा.
भुने हुए चने	100 ग्राम	58 मि.ग्रा.

गुड़ में शकर की तुलना में केलशियम की मात्रा कई गुना अधिक होती है।

वैसे तो आस्टीयोपेरोसीस का कोई उपचार नहीं है, किंतु भोज में केलशियम की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता-रक्तचाप तथा मधुमेह का नियंत्रण तथा आवश्यक व्यायाम से इस रोग के प्रारंभ में विलंब हो सकता है। पैदल सैर तथा सायकल चलाना जैसे व्यायाम से हड्डी के कमजोर होने से बचाया जा सकता है। उचित होगा कि शारीरिक व्यायाम चिकित्सक द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन पर आधारित हो, ताकि सुखद परिणाम प्राप्त हो सके, जो हमारी अपेक्षा है।

वैकल्पिक चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद से भी इस रोग का उपचार किया जाता है - इस प्रणाली से शत-प्रतिशत सफलता का दावा तो नहीं किया जाता, किंतु रोग के निराकरण में सहायता अवश्य मिल सकती है। केलशियम के अतिरिक्त दूध, दूध से बने पदार्थ तथा तेल मालीश की पैरवी यह चिकित्सा प्रणाली करती है। मालीश करते समय सावधानी आवश्यक है, अन्यथा निराकरण के बजाए टूटी हड्डी प्राप्त होगी, जो न तो उपचार का लक्ष्य है, न उद्देश्य।

वृद्धावस्था के रोग - ध्यान दीजिये

डॉ. एम.सी. नाहटा

चिकित्सकीय प्रयास, सामाजिक एवं आर्थिक विकास तथा विज्ञान के प्रयासों के परिणामस्वरूप मानवीय औसत आयु में उत्साहवर्धक वृद्धि हुई है—अनुभव का अपार समूह पूरे विश्व में उपलब्ध है। 60 वर्ष से अधिक आयु वर्ग की संख्या वर्तमान में 416 मिलीयन है और 2020 में यह संख्या पूरी जनसंख्या का 11.9 प्रतिशत होना संभावित है—भारतवर्ष में यह वर्ग सम्पूर्ण जनसंख्या का 7.5 प्रतिशत है जो चीन के बाद दूसरे स्थान पर है।

इस वर्ग की प्राथमिकता के आधार पर सामाजिक, आर्थिक तथा स्वास्थ्य से संबंधित आवश्यकताएँ हैं। अतः इस वर्ग में होने वाले रोगों से हम समाज को अवगत कराएं तथा उनकी रोकथाम एवं उपचार संबंधी उपायों पर विचार करें।

वृद्धावस्था में अलझाइमर्स रोग, मानसिक बिमारी, आर्थराइटिस एवं आस्टीयोपरोसिस रक्तचाप, हृदयरोग, कैंसर, मधुमेह, गुर्दा, क्षय तथा नेत्र रोग एवं ओरल हेल्थ प्राथमिकता की श्रेणी में है और स्वयंसेवी संगठनों, समाज तथा चिकित्सावर्ग से ध्यान देने की अपेक्षा करते हैं। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि एक बार रोग होने के पश्चात् उससे निजात पाने में कठिनाई होती है, समय भी लगता है और अनेक बार समस्या स्थायी रूप ले लेती है। अतः इनकी रोकथाम के प्रयासों की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

अलझाइमर्स रोग—मस्तिष्क के याददाश्त करने वाले भाग को प्रभावित करता है जो धीमे-धीमे आता है तथा धीमी गति से सतत बढ़ता है और मस्तिष्क के अन्य भागों को प्रभावित कर देता है जिससे बौद्धिक, भावात्मक एवं व्यावहारिक क्षमता प्रभावित होती है।

इस रोग का कारण अभी तक सुनिश्चित नहीं है—यह वृद्धावस्था का ही रोग है—60 वर्ष की आयु के पश्चात् 20 में से एक तथा 80 वर्ष की

आयु के बाद वाले वर्ग में 5 में से एक व्यक्ति को प्रभावित करता है। इस रोग को अपकर्षक (Degenerative) माना गया है।

इसकी रोकथाम योग, चिंतन, पढ़ने-लिखने, आपसी बातचीत, पौष्टिक विटामिन, मिनरल युक्त संतुलित भोजन तथा तम्बाकू एवं शराब को वर्जित मानने से संभव है।

मानसिक रोग—विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व की 25 प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी प्रकार के मानसिक रोग से पीड़ित है। विडम्बना है कि इतनी बड़ी जनसंख्या के 40 प्रतिशत भाग का ही निदान तथा उपचार हो पाता है। अनिदानित तथा उपचार विहीन व्यक्तियों में से लगभग 10 लाख व्यक्ति आत्महत्या कर लेते हैं। मानसिक रोगों में अवसाद सबसे अधिक मात्रा में पाया जाता है जो कि उदासिनता, भूख तथा निंद में परिवर्तन, थकान अकर्मण्यता, याददाश्त में कमी के रूप में देखा जाता है।

आर्थराइटिस तथा आस्टीयोपरोसिस—आर्थराइटिस विकलांगता के प्रमुख कारणों में है। इसका उपचार शारीरिक व्यायाम या शल्य चिकित्सा से संभव है।

आस्टीयोपरोसिस एक खामोश रोग है जिसमें हड्डियां कमजोर हो जाती है और हड्डी टूटने का कारण बन जाती है। प्रमुख रूप से कुल्हे, स्पाइन तथा कलाई प्रभावित होते हैं। निदान हेतु बोन डेंसिटी टेस्ट सहायक है। नियमित व्यायाम, घूमना, पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम तथा विटामिन-डी के सेवन तथा तम्बाकू एवं शराब को वर्जित मानना रोकथाम हेतु उपयुक्त हैं।

रक्तचाप—वयस्क व्यक्ति का रक्तचाप 120/80 मी.मी. होता है। 140/90 मी.मी. से ऊपर रक्तचाप असामान्य होता है। चूंकि उच्च रक्तचाप में बहुधा कोई लक्षण नहीं होता अतः यह बढ़ता रहता है—मुख्य रूप से

गुर्दा, हृदय तथा नेत्रों को प्रभावित करता है। उच्च रक्तचाप में निद्रालुता, अस्तव्यस्तता, सिरदर्द, जी मचलना तथा नेत्र ज्योति में कमी जैसे लक्षण होते हैं।

शारीरिक व्यायाम, योग, संतुलित शारीरिक वजन भोजन में फल, हरी सब्जी, चर्बी तथा कम नमक एवं शराब व तम्बाकू को वर्जित करने से रोकथाम हो सकती है।

हृदय रोग—विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में सन् 2006 में हृदय रोग से 30 लाख लोगों की मृत्यु होती थी। असामान्य भोजन, तनाव, तथा शारीरिक व्यायाम की कमी से हृदय रोग होते हैं।

हृदयाघात में सीने में दर्द तथा शरीर के ऊपरी भाग, हाथ, गरदन, कंधे एवं जबड़े तक दर्द फैलता है, सीने में दबाव, सांस लेने में कठिनाई, धड़कन, तीव्र नाड़ी गति, पसीना तथा थकान होते हैं।

रोकथाम नियंत्रित वजन, उपयुक्त स्वस्थ भोजन तथा जीवन शैली में परिवर्तन तथा शारीरिक व्यायाम से संभव है।

कैंसर—इस भयानक रोग की गंभीरता 2005 में 7.6 मिलीयन व्यक्तियों की मृत्यु संख्या से उजागर होती है। नियंत्रण के अभाव में अगले दस वर्षों में यह संख्या 84 मिलीयन हो जावेगी। कैंसर एक व्यापक शब्द है जिसमें 100 से अधिक रोगों का समावेश है। पुरुषों में प्रोस्टेट एवं कोलन तथा महिलाओं में स्तन कैंसर सर्वाधिक है। तम्बाकू, जंकफूड, फल तथा हरी सब्जियों के कम उपयोग, जीवन शैली, मोटापा इत्यादि कैंसर रोग में सहायक होते हैं।

भारत सरकार ने कैंसर की रोकथाम तथा प्राथमिक स्थिति में निदान हेतु राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम बनाया है तथा क्षेत्रीय केन्द्र भी स्थापित किये हैं।

मधुमेह-मृत्यु तथा विकलांगता के प्रमुख कारणों में से मधुमेह भी है। मधुमेह प्रभावित व्यक्तियों में 65% की मृत्यु हृदयरोग तथा हृदयघात से होती है।

मधुमेह एक मेटाबोलिक रोग है जिसमें शरीर में या तो इंसुलिन तत्व नहीं बनता है या उसका प्रभाव नहीं होता है। मधुमेह में अधिक भूख, प्यास, थकान, संक्रमण, वजन कम होना जी मचलाना, उल्टी, सांस में मीठी खुशबू आना, तथा बार-बार पेशाब आना जैसे लक्षण होते हैं।

इस भयावह रोग को नियंत्रित करने हेतु एक राष्ट्रीय मधुमेह निमंत्रण कार्यक्रम केन्द्र सरकार ने बनाया है। स्मरण रहे इस रोग से मुक्ति नहीं मिल सकती है-इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

गुर्दारोग-प्रायः वंशानुगत होते हैं जो कि पैदायीशी हो सकते हैं या जन्म के बाद भी हो सकते हैं। गुर्दारोग प्रायः बड़ी आयु के लोगों में पाये जाते हैं और किडनी फेल्युअर या हृदय रोग के कारण बनते हैं। गुर्दारोगों से भारत में अनेकों लोग प्रतिवर्ष टर्मिनल पड़ाव पर चले जाते हैं या विभिन्न रूप में इससे प्रभावित होते हैं। इस पर रोकथाम हेतु एक स्वयंसेवी संगठन राष्ट्रीय किडनी फाउंडेशन बनाया गया है तथा सक्षमता से कार्य कर भी रहा है।

गुर्दारोगों की रोकथाम हेतु रक्तचाप, शारीरिक वजन को नियंत्रित रखना, भोजन में चर्बी की मात्रा स्वस्थ स्तर पर रखना तथा तम्बाकू एवं शराबका सेवन वर्जित माना जाता है।

क्षयरोग-क्षयरोग भी भारत में मृत्यु के कारणों में प्रमुख है। इसकी रोकथाम हेतु भी एक राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम उपलब्ध है। इस रोग का उपचार भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है तथा रोकथाम सामान्य क्रियाओं से संभव है जैसे-क्षय पीड़ित व्यक्ति जिसे खांसी होती हो के पास रहने के बाद हाथ बार-बार धोये जावे, प्रतिवर्ष छाती का एक्सरे तथा

परीक्षण किया जावे, ताजी हवा में रहे और विटामिन, मिनरल युक्त भोजन करें—केल्शियम प्रोटीन्स के उपयोग भी रोकथाम में सहायक होते हैं।

नेत्ररोग—वृद्धावस्था में प्रमुख रूप से मोतिया बिन्द, मेक्युलर डीजनरेशन डायबिटीक रेटिनोपेथी तथा कांच बिंद रोग होते हैं। वर्तमान में पूरे देश में मोतीयाबिंद के उपचार की समूचित व्यवस्था है—किन्तु मधुमेह के कारण डायबीटीक रेटिनोपेथी तथा मेक्युलर डिजनरेशन के उपचार की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। इस और ध्यान देना आवश्यक है (इसकी चर्चा अलग से करना चाहूँगा)।

वृद्धजनों की शारीरिक स्थिति, साधनों की कमी तथा रोगों की अप्रत्याशित संख्या एवं शासकीय प्रयासों में गंभीरता तथा इमानदारी के अभाव के कारण इस क्षेत्र के स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र के संगठनों की संख्या अधिक नहीं तो कम भी नहीं है—कमी है रचनात्मक उचित दृष्टिकोण तथा दिशा की—कतिपय संगठन तो केवल प्रचार-प्रसार हेतु ही गठित हैं—यह निंदनीय है। मेरा अनुरोध है कि जीवन के इस मोड़ पर इस क्षेत्र में बगैर किसी लालच के क्षेत्र में काम करना ही लक्ष्य होना चाहिये और यही हमारा उद्देश्य भी होना आवश्यक है—इस अपेक्षा के साथ सादर समर्पित।

Help Line Project for Disabled

(Comprehensive project with special emphasis on income generation Rehabilitation and Financial assistance-Loan)

Dr. M.C. Nahata

Aim : To provides respectable life to every disabled requiring our help.

Who requires such help?

Any Disabled person who is unable to sustain himself independently Without special care/attention.

This is a group with diverse Disabilities, except the common factor that they are unable to earn livelihood without support from the family, community or state. However, these Disabled persons have the capacity to work and earn about which they are not aware. Disabilities as classified in P.W.D. Act :

A. Physical

1. Blindness
2. Low Vision
3. Leprosy cured
4. Hearing impairment
5. Locomotor Disability

The physical Disability may be the result of crippling systemic diseases like Leprosy, Tuberculosis, and malnutrition and thus makes a person incapable of working with full capacity.

B. Mentally Impaired

1. Mental Retardation
2. Mental Illness

The most vulnerable group is :

1. Women
2. Residents of Rural Segment
3. Illiterate with poor awareness
4. Under privileged
5. People from distant & difficult terrains.
6. Scheduled caste, Schedule tribes and O.B.C.

As per convention right to survival includes :

1. Right to life
2. Right to good standard of health
3. Nutrition
4. Good standard of living

Thus unless a compassionate attitude is adopted and comprehensive care is exercised, it will not be possible to pull and draw these unfortunate victims of vagaries of nature or atrocities of human beings into the national main stream and convert them into useful, resourceful, productive citizens.

This comprises of a "Cradle to Grave" service rendered by the more fortunate members of the society as opposed to "Hire and Fire" policy of the transnational companies. Thus a million Dollar question arises-What Help is required?

1. Advice to beneficiaries regarding :
Basic infrastructure knowledge and specific information regarding his own Disability.
2. Enabling the caretakers/guardians/parents to extend :
Better care of the sufferers, their training both academic and vocational, employment, Marriage, Rehabilitation.

3. Employment in the Govt. Sector, Private Sector or self Employment.
4. Training pertaining to skill, which can be basic i.e. before the job.
During the period of the job- to enhance the proficiency of the skill.
5. Securing a family life and training for the care of the offspring's.
6. Old age rehabilitation—by way of making provisions for benefits Including facilities in destitute homes.
7. Social security—by making provision for Health Insurance Gratuity and home service.

Who is to provide the requisite information?

Various aspects of the narrated problems can be effectively dealt with by way of establishing—Help Line—initially in the metropolitan towns and at Divisional Head Quarters.

What Help?

Special emphasis will have to be laid on schemes of Income generation : Since we are targeting Disabled population who are incapable of adequate response, it will be more rewarding if they are Clubbed together by way of making Self Help Groups of the same geographic area and supporting such groups for better results Without any consideration for age, sex, caste, creed religion etc. Thus Emphasis has to be made on neighbour hood and nothing else.

Help Line

This can be worked as a pilot project and may be parallel to Child Help Line or Aids Help Line. In the

proposed Help Line we need to Establish a "Consoling Cell" with two consolers-one male & one female who will function through :

1. Personal Consoling and/or
2. Telephonic Consoling

After it starts functioning will and fully established a computerized self-replying system may be introduced to provide round the clock service to all the people near and at far distance.

The Consolers will be required to be trained for a period of about 2 months.

Estimated Expenditure : Please refer to Annexure I.

One Time Expenditure Rs. 05 Lacs

Recurring Expenditure per year Rs. 05 Lacs

There are 580 Districts in the country and as such there may be 125 Divisional Head Quarters. Thus it will involve an expenditure of Around 6 cores for the Non recurring and similar sum for the recurring expenditure.

Priority should be given to states where work in the field of Disability is less and considered to be backward like—J & K, Uttar Pradesh Uttaranchal, Bihar, Jharkhand, Madhya Pradesh, Chhastisgarh, Orissa and Rajasthan.

Income Generation Scheme :

These can be implemented through small help groups as referred Earlier. The members of these groups will be sponsored by village Panchayats or/and neighbourhood committees of the neighbouring Urban areas. (Population of nearly 3000) A short exposure of the members to the proposed activity can be organized through Govt. or Govt. supported institutions and also through National Institutes-if possible. This will provide a better lifetime commitment

towards trade. This group will concentrate on cheap and locally available raw Material and a profitable local market—Govt. Institutions, Panchayats and other local bodies can be a good market for them—If necessary a suitable legislation can be introduced for this work.

Financial Support :

The initial input can be made through Soft Loans repayable in a period of 10 years (Guarantee to be provided by Local Panchayat or neighbouring committee of the parents/Guardians) a part of the loan should be treated as Grant in Aid.

The National Handicapped Finance and Development corporation should undertake this work so that information about availability of Loans, procedure to obtain such Loan, repayment of the loan and even assistance in disbursing the Loans. However, it is mandatory the Red tapes be avoided else the sole purpose will be defeated.

Appendix I

Details of Expenditure of Help Line Project

1. One time investment :

- a. Establishment of a Consoling centre including telephone

Expenditure (Free to the caller) Rs.
2.0 Lacs

- b. Self replying computerized telephone system
..... Rs. 3.0 Lacs

(Can be established after a period of 2 years)

2. Recurring Annual expenditure :

- a. Pay for two consolders Rs. 1.5 Lacs
(Rs. 6000/- per month per person)

b. Contingency Expenditure	Rs. 0.5 Lacs
Telephone Services	Rs. 15000.00
Electricity	Rs. 15000.00
Overheads	Rs. 20000.00
3. Training for the trainers	Rs. 0.5 Lacs
4. Publicity, Printing, stationary etc.	Rs. 1.5 Lacs
5. Supervisory & others	Rs. 1.5 Lacs
Total	Rs. 5.0 Lacs

श्रवण बाधिता - मानवीय समस्या

डॉ. एम.सी. नाहटा

श्रवण बाधिता एक विकराल मानवीय समस्या है। प्रति 12 व्यक्तियों में एक इस व्याधि से पीड़ित है। प्रतिवर्ष 25000 बच्चे श्रवण बाधित शिशु जन्म लेते हैं। इस प्रकार देश की आबादी का 63 प्रतिशत श्रवण बाधित है। इस अनुमान से देश में 20 लाख इस विकलांगता से प्रभावित हैं। ग्रामिण क्षेत्र में प्रति दस लाख में 25000 तथा शहरी क्षेत्र में यह संख्या प्रति दस लाख के 7000 के लगभग होती है।

अतः आवश्यक है कि हम इसके कारण तथा निराकरण के उपाय के बारे में जाने तथा इस मानवीय समस्या के उन्मुलन हेतु प्रयास करें। इस हेतु भारत सरकार ने प्रायोगिक तौर पर 12 प्रदेशों के 25 जिलों में एक राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाया है।

श्रवण दोष के कारण

श्रवण दोष के अनेक कारण हो सकते हैं जिसमें से कुछ इस प्रकार हैं—
जन्म के पहले—

1. वंशानुगत दोष।
2. निकट रक्त संबन्धों में विवाह।
3. रक्त वर्ग की विषमतायें।
4. संक्रामक रोग या गर्भावस्था में बीमारी जैसे—सिफलिस, ज्वर, गलग्रंथि आदि।
5. माता की अत्यधिक शारीरिक अक्षमता।
6. माता द्वारा मादक पदार्थों का सेवन।
7. रोग प्रतिरोधक दवाओं का अधिक सेवन।
8. अधिक मात्रा में एक्स-रे का प्रयोग।

जन्म के समय—

1. समय से पूर्व प्रसव या शल्य क्रिया द्वारा प्रसव।
2. प्रसव के समय आक्सीजन की कमी।

3. नवजात शिशु का जन्म के समय हल्का रदन।
4. शिशु का जन्म के समय 1200 ग्राम से कम वजन।

जन्म के बाद—

1. कान, नाक, चेहरा और गले की विकलांगता।
2. पीलिया, उच्च रक्तदाव और जन्म के तुरन्त बाद ऐठन।
3. संक्रामक रोग जैसे काली खांसी, गलग्रंथी संबन्धी रोग, खसरा, सिफलिस, मस्तिष्क ज्वर, वायरल ज्वर और संपेक्षिक।
4. रोग प्रतिरोधक दवाओं का अधिक समय तक सेवन।
5. कान में चोट लगना।
6. तीव्र ध्वनि द्वारा आघात।
7. कानों की नस ग्रंथियों में विकृति।
8. कान में मैल की उपेक्षा।

निराकरण के उपाय

1. निकट रक्त संबन्धों में विवाह न करना।
2. गर्भवती माता की स्वास्थ्य सुरक्षा एवं समय-समय पर परीक्षण।
3. प्रशिक्षित नर्स द्वारा प्रसूति।
4. बच्चे का संक्रामक रोगाणुओं से बचाव।
5. श्रवण अंग की उचित देखभाल।
6. तीव्र ध्वनि से बचाव।
7. शोरगुल वाले क्षेत्रों में कार्य करते समय कान में सुरक्षा उपकरणों का प्रयोग।
8. चिकित्सक की सलाह के बिना औषधियों का सेवन न करना।

यद्यपि श्रवण रोग के बहुत से कारणों का नियन्त्रण पूर्णरूप से सम्भव नहीं है किन्तु इस दिशा में ज्ञान इसकी रोकथाम के लिये और श्रवण दोष पहचानने के लिए आवश्यक है।

यह भी उत्साहवर्धक है कि रोटरी अन्तराष्ट्रीय संस्था भी इस विकलांगता से निराकरण हेतु सहायता देती है। संस्था की स्थानिय इकाइयों को इस कार्यक्रम से लाभ जनजन तक पहुंचाकर मानवीय सेवा का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये।

विमोचन



डॉ. नाहटा के जीवन पर लिखित पुस्तक 'अनमोल माणिक' का विमोचन करते हुए भारत के उप-राष्ट्रपति श्री भैरोसिंहजी शेखावत, साथ में है तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री डॉ. सत्यनारायणजी जटिया, पुस्तक के लेखक डॉ. कनूभाई टेलर तथा डॉ. एम.सी. नाहटा।

नागरिक अभिनंदन



गंजबारासोदा, जिला विदिशा में नेत्र शिविर के अवसर पर नागरिक अभिनंदन।

लेखक परिचय



78 वर्षीय डॉ. एम.सी. नाहटा का जन्म 24 जुलाई 1931 को ग्राम रामपुरा, जिला नीमच के एक भद्र परिवार में हुआ था। स्कूली जीवन के समय 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में प्रमुखता से भाग लिया तथा 13 वर्ष की आयु में तत्कालिन होलकर राज्य प्रजामंडल के वार्षिक अधिवेशन के समय पूरी सक्रियता से भागीदारी की थी।

डॉ. नाहटा ने दृष्टिहीनता की रोकथाम, दृष्टिहीनों के कल्याण तथा पुर्नवसन के अतिरिक्त विकलांगता के क्षेत्र में अनेक कार्यक्रमों की नींव डाली तथा वे आज केवल देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी उच्चस्तरीय प्रशासकीय क्षमता एवम समाज सेवा के किये गये कार्यों के लिये प्रतिष्ठित हुए हैं।

डॉ. नाहटा महात्मा गांधी स्मृति चिकित्सालय में नेत्र विभाग के विभागाध्यक्ष, जी.आर मेडीकल कालेज के अधिष्ठाता तथा म.प्र. लोक सेवा आयोग के सदस्य रहे हैं। उन्होंने अपनी पहचान एक लोकप्रिय शिक्षक, चिकित्सक तथा प्रशासक के रूप में विकसित की। डॉ. नाहटा ने 1970 में लंदन के प्रसिद्ध मूरफील्डस चिकित्सालय में 'रेटीना' पर विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा अनेक बार नेत्र विशेषज्ञों के सम्मेलनों में भागीदारी हेतु विदेश यात्राएँ कर अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये तथा संगोष्ठी में अध्यक्षता की। डॉ. नाहटा विजीटिंग प्रोफेसर के रूप में पोलैंड तथा जापान आमंत्रित किये गये। लंदन से बी.बी.सी. द्वारा डॉ. नाहटा का साक्षात्कार प्रमुखता से प्रसारित किया जाना देश के लिये गौरव की बात है।

वे अमेरिका के दो स्वयंसेवी संगठनों के सलाहकार मंडल के सदस्य के रूप में मनोनित किये गये तथा प्राग, बर्लिन विश्वविद्यालय द्वारा गेस्ट लेक्चर हेतु आमंत्रित किये गये। बंगलादेश नेत्र चिकित्सालय संघ ने भी आपको अल्प दृष्टि समस्या पर लेक्चर देने हेतु आमंत्रित किया था। डॉ. नाहटा न्यूयॉर्क, अमेरिका के एक अन्य संगठन के भारत में अवैतनिक कार्यक्रम संचालक के रूप में अपनी सेवाएँ दे चुके हैं।

डॉ. नाहटा ने 700 से अधिक निःशुल्क नेत्र शिविरों के माध्यम से 2 लाख के लगभग नेत्र रोगियों की निःशुल्क नेत्र चिकित्सा कर एक कीर्तिमान स्थापित किया।

डॉ. नाहटा को भारत सरकार के सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय ने 1998 में राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया। नेशनल एसोसिएशन फॉर दी ब्लाईंड, मुम्बई, रोटरी अंतर्राष्ट्रीय मंडल 3040, नेशनल एसोसिएशन फॉर प्रिवेशन ऑफ ब्लाईंडनेस नई दिल्ली के अतिरिक्त अनेक संस्थाएँ आपको सम्मानित कर चुकी हैं। डॉ. नाहटा के नाम से डॉ. एम.सी. नाहटा राष्ट्रीय नेत्र सुरक्षा पुरस्कार-राष्ट्रीय नेत्र सुरक्षा संस्था इन्दौर ने 2005 में स्थापित किया है।

वे एक कुशल लेखक भी हैं। और वर्तमान में इंडीयन सोसायटी ऑफ आथर्स के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष भी हैं।

सौच



डॉ. एम.सी. नाहटा

उपलब्धियाँ



केन्द्रीय सामाजिक, न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित करते हुए पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी साथ में है पूर्व मंत्री श्रीमती मेनका गांधी ।



राष्ट्रीय नेत्र सुरक्षा संस्था, नई दिल्ली द्वारा सम्मानित करते हुए पूर्व केन्द्रीय स्वास्थ्य राज्यमंत्री श्रीमती पनबाका लक्ष्मी ।

सोच

"If you would not be forgotten as soon as you are dead and rotten, either write things worth reading or do things worth writing"

Benjamin Franklin

डॉ. एम.सी. नाहटा

दो शब्द

सोच एक बौद्धिक कार्य है और उसी के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है दिशा बदल सकती है, सुधार एवं विकास सम्भव होता है। सोच के माध्यम से ही समाज तथा राष्ट्र में परिवर्तन हो सकता है। यह सोच ही है जिसके परिणामस्वरूप विकासशील देश विकसित देश की श्रेणी में आये है। बुद्धिजीवी वर्ग इसी सोच के फलस्वरूप नये-नये आविष्कार कर पाया है जिसका सुखद फल मानव जाति को प्राप्त हुआ है। डॉ. नाहटा जो पेशे से नेत्र चिकित्सक है ने यह जिम्मेदारी महसूस कर नये सोच से नई दिशा देने का प्रयास किया है तथा इस पुस्तक के माध्यम से नया सोच प्रस्तुत कर एक प्रशंसनीय कार्य किया है। एक ख्यातिनाम अन्तर्राष्ट्रीय रूप से प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक ने अपने लम्बे जीवन में प्राप्त अनुभवों तथा नये-नये सोच के आधार पर न केवल इस क्षेत्र की वरन् सामाजिक समस्याओं को भी जाना है तथा खामियाँ, कमियाँ, अंधविश्वास, भ्रान्तियों को इस लेखन द्वारा उजागर कर नई दिशा रेखांकित की है।

डॉ. नाहटा की इस पुस्तक में चार खंड है सामाजिक सरोकार, नेत्र चिकित्सा, चिकित्सा शिक्षा व विकलांगता।

आश्चर्य है कि चिकित्सा क्षेत्र से लम्बे समय तक जुड़े रहने के बाद भी सामाजिक, राजनैतिक, संवैधानिक विषयों पर भी डॉ. नाहटा की पकड़ इतनी मजबूत है। भ्रष्टाचार हमें कहां ले जावेगा, कितनी मंहगी है हमारी विधायिका, छद्म मुद्दे, झूठे वादे, नारे, भ्रमित मतदाता जैसे विषयों पर उनकी व्यथा स्पष्ट झलकती है तो पानी की समस्या, बालश्रम, विश्व मानक दिवस, मृत्युदंड, जनसंख्या वृद्धि नहीं संतुलन की आवश्यकता है। कन्या भ्रूण हत्या - समस्या की विकरालता निराकरण क्या सम्भव है। लिंग आधारित असमानता समाप्ति आवश्यक, महिला जगत प्रगति की ओर आदि

में उनकी समाज के प्रति दायित्व की भावना परिलक्षित होती है। बड़े चुटीले प्रश्न है, गहरी चिंतारें हैं।

महावीर के अनुपम उपदेश व महावीर के सिद्धांतों की प्रासंगिकता उनकी आध्यात्मिक सोच में गहरी पेठ के उदाहरण है।

नेत्र चिकित्सा क्षेत्र में नेत्रों की प्रमुख बीमारी मोतियाबिंद, नेत्र रोगों के बारे में, नेत्र रोगों के क्षेत्र में फैली भ्रांतियों का खुलासा, दृष्टिहीनता की रोकथाम आदि और विशेषज्ञ के रूप में उपाय आदि जन-जन के जानने व करने की आवश्यकता है।

चिकित्सा शिक्षा से लम्बे समय तक जुड़े रहने के कारण उनकी कमियों व सुधारों का एक खजाना सा है इस पुस्तक में।

विकलांगता के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा गठित उच्च शक्ति प्राप्त समिति के अध्यक्ष होने के नाते पूरे देश की संस्थाओं के निरीक्षण व अध्ययन का सार इन लेखों में है। विकलांगों के कल्याण हेतु चार सूत्रीय विकलांग कार्यक्रम तथा इसी वर्ग हेतु हेल्प लाइन योजना प्रस्तुत करने का अभिनव प्रयास भी डॉ. नाहटा ने किया है और उसका प्रस्तुतिकरण कर केन्द्र सरकार को एक नया सोच दिया है। भारत सरकार द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय पुरस्कार भी इसी क्षेत्र में मिला है। उनके अनुभवों की प्रामाणिकता भी इसी से सिद्ध होती है।

कुल मिलाकर पुस्तक न केवल चिकित्सकों, समाज सेवकों के लिये वरन समस्त समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये एक अनुपम भेंट है। समाज इससे अवश्य लाभान्वित होगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। मेरी ओर से डॉ. नाहटा को इस प्रयास के लिये बधाई व इसके व्यापक प्रचार-प्रसार के लिये शुभकामनाएँ।

सुन्दरलाल पटवा

पूर्व मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

पूर्व केन्द्रीय मंत्री

आभार

1. भारतीय लेखक संघ इन्दौर के संरक्षक एवं प्रसिद्ध समाजसेवी श्री अजीतकुमारसिंग जी कासलीवाल का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्येक प्रकार की सहायता तथा सहयोग देकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया।
2. मैं भारतीय लेखक संघ इन्दौर के अन्य संरक्षक तथा चिन्तक डॉ. नरेन्द्र सचदेव के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने मुझे मार्ग दर्शन तथा सहयोग प्रदान किया।
3. मैं आभारी हूँ भारतीय लेखक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री दिनेश मिश्रा का जो मुझे इस कार्य को सम्पादित करने हेतु सदैव प्रेरित करते रहे।
4. मैं भारतीय लेखक संघ के समस्त सदस्यों को उनके सहयोग तथा प्रेरणा के लिये आभार व्यक्त करता हूँ।
5. मैं आभारी हूँ मेरी पत्नि डॉ. प्रेमकुमारी नाहटा, पुत्र, पुत्रवधु, पुत्री एवम् दामाद का जो प्रतिक्षण मुझे प्रोत्साहित करते रहे।
6. मैं आभारी हूँ इस पुस्तक के मुद्रक सुगन ग्राफिक्स, इन्दौर के श्री अनिल टोंग्या का जिन्होंने इस गुरुतम कार्य को पूरा किया।

भूमिका

भारत के वर्तमान परिदृश्य के कारण तथा परिणाम हमारे सामने हैं। इसने मुझे बहुत चिंतित तथा आंदोलित किया। मैं चाहता हूँ कि स्थिति विस्फोटक होने के पूर्व बदले और सुखद परिणाम सामने आवे। यह नये सोच के माध्यम से ही सम्भव है। एक ऐसा रचनात्मक सोच विकसित हो जो नैतिक मूल्यों पर आधारित हो।

इस प्रयास में मैंने सतत् अध्ययन किया और ऐसा सोच प्रस्तुत करने का प्रयास किया जिसके माध्यम से समाज चिंतन करे। समाज के विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग के सम्मुख सामाजिक सरोकार, चिकित्सा शिक्षा एवं व्यवस्था, नेत्र चिकित्सा तथा विकलांगता जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार प्रस्तुत कर यह अपेक्षा की कि सकारात्मक दिशा में गहन विचार विमर्श हो और ऐसा सोच विकसित हो जो समाज को नई दिशा दे सके।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक **सोच** इस दिशा में रचनात्मक, सार्थक एवं यथार्थ की ओर ले जाने में सहायक होगी।

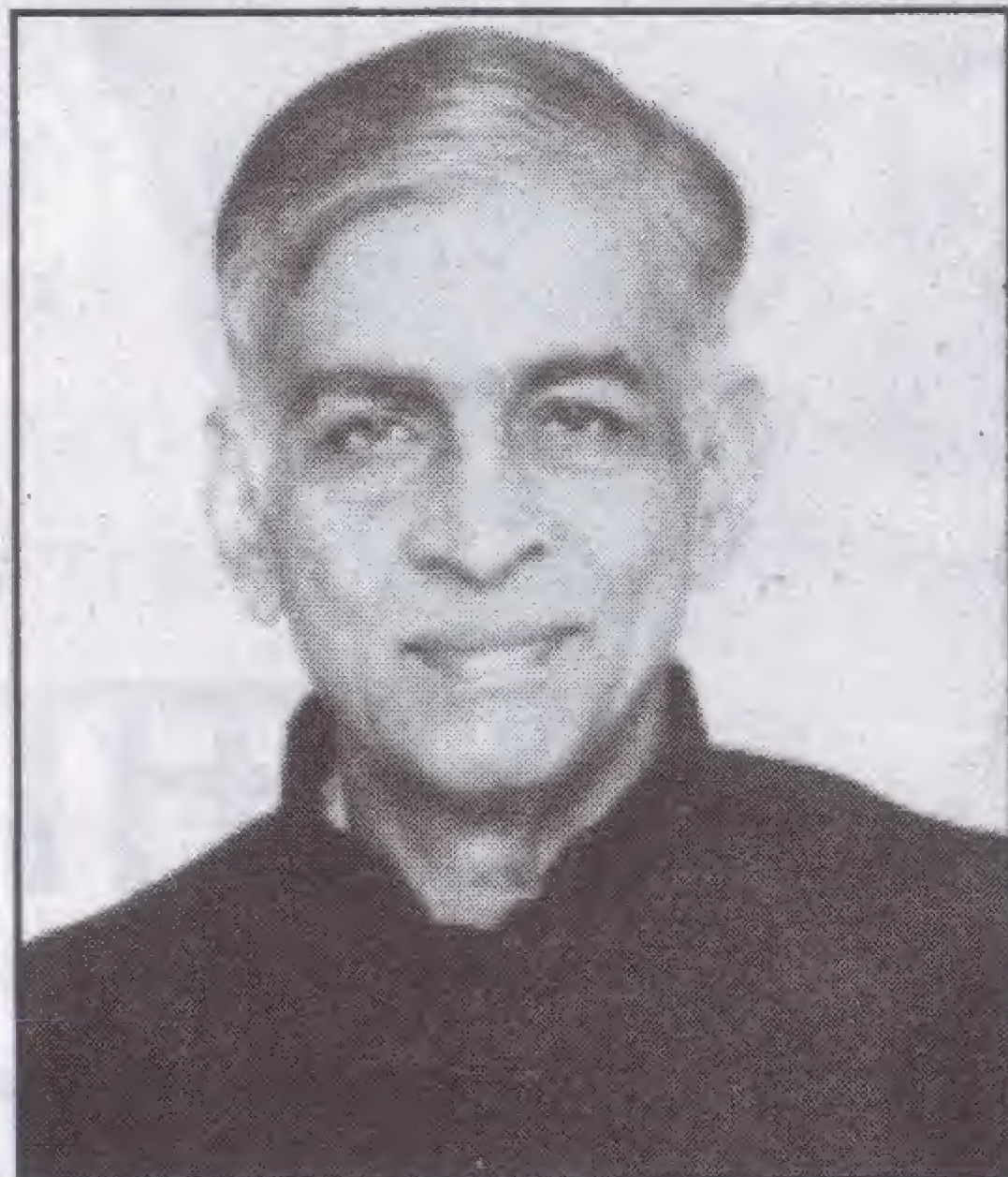
मैं सब सहयोगियों का जिन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया तथा मार्गदर्शन दिया के प्रति आदरपूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. एम.सी. नाहटा

समर्पण



मेरे स्व. पिताजी श्रद्धेय श्री राजमलजी नाहटा को जिनके मार्गदर्शन, प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद के परिणामस्वरूप मैं आज इस मुकाम पर पहुँचा हूँ।



मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्व. श्री भँवरलालजी नाहटा को जिनके आदर्श, गांधीवादी विचारधारा, स्नेह तथा सहयोग ने मुझे सफलता के मार्ग पर प्रशस्त किया।